

3L H
PRE V.5



120449
LBSNAA

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी

री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी

Academy of Administration

मसूरी

MUSSOORIE

पुस्तकालय

LIBRARY

120449

16052

अवाप्ति संख्या

Accession No.

वर्ग संख्या

Class No.

पुस्तक संख्या

Book No.

प्रेस्मच PRE

भाग 5

मानसरोवर

(भाग ५)

लेखक
प्रेमचन्द

सरस्वती प्रेस, बनारस

यहला संस्करण : १६४६

जुसरा संस्करण : १६४८

तीसरा संस्करण : १६५०

चौथा संस्करण : १६५२

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
श्रीपतिराज
सरस्वती प्रेस, बनारस

विषय-सूची

१ मन्दिर	९
२ निमन्त्रण	१०
३ रामलीला	३२
४ मन्त्र	४०
५ कामना-तरु	५७
६ सती	६६
७ हिंसा परमो धर्मः	८२
८ बहिष्कार	८२
९ चोरी	१०७
१० लाञ्छन	११६
११ कजाकी	१४५
१२ आंसुओं की होली			१५८
१३ अग्नि-समाधि			१६६
१४ सुजान भगत	१७८
१५ पियनहरी का कुआँ	१८१
१६ सोहाग का शब	२०३
१७ आत्म-संगीत	२२८
१८ ऐक्ट्रेस	२३२
१९ ईश्वरी न्याय	२४४
२० ममता	२६५
२१ मन्त्र	२८०
२२ प्रायश्चित्त	२८४
२३ कसान साहब	३०८
२४ इस्तीफा	३१७

मन्दिर

(१)

मातृ-प्रेम तुझे धन्य है ! संसार में और जो कुछ है, मिथ्या है, निस्सार है। मातृ-प्रेम ही सत्य है, अद्वय है, अनश्वर है। तीन दिन से मुखिया के मुँह में न अब का एक दाना गया था, न पानी की एक चूँद। सामने पुआल पर माता का नन्हा-सा लाल पड़ा कराह रहा था। आज तीन दिन से उसने आँखें न खोली थीं। कभी उसे गोद में उठा लेती, कभी पुआल पर मुला देती। हँसते-खेलते बालक को अचानक क्या हो गया, यह कोई नहीं बताता। ऐसी दशा में माता को भूल और प्यास कहाँ ? एक बार पानी का एक घूँट मुँह में लिया था; पर कहउ के नीचे न ले जा सकी। इस दुखिया की विपत्ति का वारपार न था। साल भर के भोतर दो बालक गंगा की गोद में सौंप चुकी थीं। पतिदेव पहले ही सिधार चुके थे। अब उस अमागिनी के जीवन का आधार, अवलम्ब, जो कुछ था, यही बालक था। हाय ! क्या ईश्वर इसे भी उसकी गोद से छोन लेना चाहते हैं ?—यह कल्पना करने ही माता की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगते थे। इस बालक को वह एक लग्ज-भर के जिए भी अकेला न छोड़ती थी। उसे साथ लेकर वास छोलने जाती। वास बेचने बाजार जाती, तो बालक गोद में होता। उसके लिए उसने नन्हीं-सी खुरपी और नन्हीं-सी खाँची बनवा दी थी। जियावन माता के साथ वास छोलता और गर्व से कहता—अम्माँ, हमें भी बड़ा-सी खुरपी बनवा दो, हम बढ़ुत-सी वास छोलेंगे; तुम द्वारे मानी पर बैठी रहना, अम्माँ; मैं वास बेच लाऊँगा। मैं पूछती—हमारे लिए क्या-क्या लाओगे, बेटा ? जियावन लाल-लाल साड़ियाँ का वादा करता। अपने लिए बहुत-सा गुड़ लाना चाहता था। वे ही भोली-भोली बातें इस समय याद आ-आकर माता के दृद्य को शूल के समान बेघ रही थीं। जो बालक को देखता, यही कहता कि किसी की डीठ है; पर किसकी डीठ है ? इस विधवा का भी संसार में कोई वैरी है ? अगर उसका नाम मालूम हो जाता, तो सुखिया आकर उसके चरणों पर गिर पड़ती और बालक को उसकी गोद में रख देती।

क्या उसका हृदय दया से न पिंगल जाता ? पर नाम कोई नहीं बताता । हाय !
किससे पूछें, क्या करे ?

(२)

तीन पहर रात बीत चुकी थी । सुखिया का चिन्ता-न्यथित चक्कल मन कोठे-कोठे दौड़ रहा था । किस देवी की शरण जाय, किस देवता की मनौती करे, इसी सोच में पढ़े-पढ़े उसे एक भयकी आ गयी । क्या देखती है कि उसका स्वामी आकर बालक के सिरहने खड़ा हो जाता है और बालक के सिर पर हाथ केरकर कहता है—रो मत, सुखिया ! तेरा बालक अच्छा हो जायगा । कल ठाकुरजी की पूजा कर दे, वही तेरे सहायक होंगे । यह कहकर वह चला गया । सुखिया की आँख खुल गयी । अवश्य ही उसके पतिदेव आये थे । इसमें सुखिया को जरा भी संदेह न हुआ । उन्हें अब भी मेरी सुधि है, यह सोचकर उसका हृदय आशा से पारऱ्लावित हो उठा । पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम से उसको आँखें सजल हो गयीं । उसने बालक को गोद में उठा लिया और आकाश की ओर ताकती हुई बाली—भगवान् ! मेरा बालक अच्छा हो जाय, तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगी । अनाथ विधवा पर दया करो ।

उसी समय जियावन की आँखें खुल गयीं । उसने पानी माँगा । माता ने दौड़कर कट्टेरे में पानी लिया और बच्चे को पिला दिया ।

जियावन ने पानी पीकर कहा—अम्माँ, रात है कि दिन ?

सुखिया—अभी तो रात है, बेया, तुम्हारा जी कैसा है ?

जियावन—अच्छा है अम्माँ ! अब मैं अच्छा हो गया ।

सुखिया—तुम्हारे मुँह में धो-शक्कर, बेया; भगवान् करे तुम जल्द अच्छे हो जाओ ! कुछ खाने को जी नाहता है ?

जियावन—हाँ अम्माँ, योड़ा-सा गुड़ दे दो ।

सुखिया—गुड़ मत खाओ भैया, अवगुन करेगा । कहो तो खिन्डी बना दूँ ।

जियावन—नहीं मेरी अम्माँ, जरा-सा गुड़ दे दो, तो तेरे पैरों पढ़ूँ ।

माता इस आग्रह को न याल सकी । उसने योड़ा-सा गुड़ निकालकर जियावन के हाथ में रख दिया और हाँड़ी का दबकन लगाने जा रही थी कि किसी ने बाहर से आवाज दी । हाँड़ी वहीं छोड़कर वह किवाड़ खोलने चली

गयी। जियावन ने गुड़ की दो पिंडियाँ निकाल लीं और जलदी-जलदी चढ़ कर गया।

(३)

दिन-भर जियावन की तबीयत अच्छी रही। उसने योड़ी-सी लिंचडी खायी, दो-एक बार धीरे-धीरे द्वार पर भी आया और हमजोलियाँ के साथ खेल न सकने पर भी उन्हें खेलते देखकर उसका जी बहल गया। सुखिया ने समाज, बच्चा अच्छा हो गया। दो-एक दिन में जब पैसे हाथ में आ जायेंगे, तो वह एक दिन ठाकुरजी की पूजा करने चली जायगी। जाडे के दिन भाइ-बहारु, नहाने-धोने और खाने-पीने में कट गये; मगर जब सन्ध्या समय किर जियावन का जी भारी हो गया, तब सुखिया ध्वरा उठी। तुरन्त मन में शंका उत्पन्न हुई कि पूजा में विलम्ब करने से ही बालक किर मुरझा गया है। अभी योड़ा-सादिन बाकी था। बच्चे को लेटाकर वह पूजा का सामान तैयार करने लगी। फूल तो जर्मीदार के बगीचे में मिल गये। तुलसीदल द्वार ही पर था; पर ठाकुरजी के भोग के लिए कुछ मिठाज तो चाहिए; नहीं तो गाँव वालों को बाँटेगी क्या! चढ़ाने के लिए कम-से-कम एक आना तो चाहिए ही। सारा गाँव छान आयी, कहीं पैसे उधार न मिले। तब वह हताश हो गयी। हाय रे अदिन! कोई नार आने पैसे भी नहीं देता। आखिर उसने अपने हाँथों के चाँदी के कड़े उतारे और दौड़ी हुई बनिये की दुकान पर गयी, कड़े गिरां रखे, बतासे लिये और दौड़ी हुई घर आयी। पूजा का सामान तैयार हो गया, तो उसने बालक को गोद में उठाया और दूसरे हाथ में पूजा को याली लिये मन्दिर की ओर चली।

मन्दिर में आरती का घण्टा बज रहा था। दस-पाँच भक्तजन लड़े सुन्ति कर रहे थे। इतने में सुखिया जाकर मन्दिर के सामने खड़ी हो गयी।

पुजारी ने पूछा—क्या है रे? क्या करने आयी है?

सुखिया चबूतरे पर आकर बोली—ठाकुरजी की मनाँती की थी, महाराज, पूजा करने आयी हूँ।

पुजारीजी दिन-भर जर्मीदार के असामियों की पूजा किया करते थे; और शाम-सबेरे ठाकुरजी की। रात को मन्दिर ही में सोते थे, मन्दिर ही में आपका भोजन भी बनता था, जिससे ठाकुरद्वारे की सारी अस्तरकारी काली पड़ गयी।

यी। स्वभाव के बड़े दयालु थे, निष्ठावान् ऐसे कि चाहे कितनी ही ठगड़ पड़े, कितनी ही ठण्डी हवा चले, बिना स्नान किये मुँह में पानी तक न ढालते थे। अगर इसपर उनके हाथों और पैरों में मैल की मोटी तह जमी हुई थी, तो इसमें उनका कोई दोष न था ! बोले—तो क्या भीतर चली आयेगी ? हो तो चुकी पूजा। यहाँ आकर भरभट्ट करेगी ?

एक भक्तजन ने कहा—ठाकुरजी को पवित्र करने आयी है ?

सुखिया ने बड़ी दीनता से कहा—ठाकुरजी के चरन छूने आयी हैं, सरकार ! पूजा की सब सामग्री लायी हैं।

पुजारी—कैसे वेसमझी की बात करती है रे, कुछ पगली तो नहीं हो गयी है ? भला तू ठाकुरजी को कैसे छुयेगी ?

सुखिया को अबतक कभी ठाकुरद्वारे में आने का अवसर न मिला था। आश्रन्य से बोली—सरकार, वह तो संसार के मालिक हैं। उनके दरसन से तो पापी भी तर जाता है, मेरे छूने से उन्हें कैसे छूत लग जायगी ?

पुजारी—अरे, तू नमारिन है कि नहीं रे ?

सुखिया—तो क्या भगवान् ने नमारों को नहीं सिरजा है ? नमारों का भगवान् कोई और है ? इस बच्चे की मनौती है, सरकार !

इसपर वही भक्त महोदय, जो अब सुनि समाप्त कर चुके थे, डपटकर जोले—मार के भगा दो चुड़ैल को। भरभट्ट करने आयी है, फेंक दो धाली-वाली। संसार में तो आप ही आग लगी हुई है, चमार भी ठाकुरजी की पूजा करने लगेंगे, तो पिरथी रहेही कि रसातल को चली जायगी ?

दूसरे भक्त महाशय बोले—अब बेचारे ठाकुरजी को भी नमारों के हाथ का भोजन करना पड़ेगा। अब परलय होने में कुछ कसर नहों है।

ठगड़ पड़ रही थी; सुखिया लड़ी कौप रही थी और यहाँ धर्म के ठेकेदार लोग समय की गांत पर आलोचनाएँ कर रहे थे। बच्चा मारे ठगड़ के उसकी छाती में उसा जाता था; किन्तु सुखिया वहाँ से हटने का नाम न लेती थी। ऐसा मालूम होता था कि उसके दोनों पाँव भूमि में गड़ गये हैं। रह-रहकर उसके हृदय में ऐसा उद्गार उठता था कि जाकर ठाकुरजी के चरणों पर गिर पड़े। ठाकुरजी क्या इन्हीं के हैं, हम गरीबों का उनसे कोई नाता ! नहीं है,

ये लोग होते हैं कौन रोकनेवाले; पर यह भय होता या कि इन लागों ने कहीं सचमुच याली-बाली फेंक दी तो क्या करूँगी ! दिल में ऐंठकर रह जाती थी। सहसा उसे एक बात सभी ; वह वहाँ से कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे आँधेरे में छिपकर इन भक्तजनों के जाने की राह देखने लगी ।

(४)

आरती और सुति के पश्चात् भक्तजन बड़ी देर तक श्रीमद्भागवत का पाठ करते रहे । उधर पुजारी ने चूल्हा जलाया और खाना पकाने लगे । चूल्हे के सामने बैठे हुए 'हूँ-हूँ' करते जाते थे और बोन-बीच में डिप्पिणियाँ भी करते जाते थे । दस बजे राज तक कथा-वार्ता हाती रही और सुखिया वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में खड़ी रही ।

सारे भक्त लागों ने एक-एक करके घर की राह ली । पुजारीजी अकेले रह गये । अब सुखिया आकर मन्दिर के बरामदे के सामने खड़ी हो गयी, जहाँ पुजारीजी आसन जमाये बढ़लोई का जुधावदक मधुर संगीत मुनने में मन थे । पुजारीजी ने आहट पाकर गरदन उठायी, तो सुखिया को खड़ी देखा । चिढ़कर बोले—क्यों रे, तू अभी तक खड़ी हैं !

सुखिया ने थाली जमीन पर रख दी और एक हाथ फैलाकर भिज्ञा-प्रायंना करती हुई बोली— महाराजजी, मैं अभार्गनी हूँ । यही बालक मेरे जीवन का अलम है, सुझपर दया करो । तीन दिन में इसने सिर नहीं उठाया । तुम्हें बड़ा जस होगा, महाराजजी ?

यह कहते-कहते सुखिया रोने लगी । पुजारीजी दयालु तो थे, पर चमारिन को ठाकुरजी के सभीप जाने देने का अशु तपूर्व घोर पातक वह कैसे कर सकते थे ? न-जाने ठाकुरजी इसका क्या दण्ड दें । आखिर उनके भी बाल-बच्चे थे । कहीं ठाकुरजी कुपित होकर गौव का सर्वनाश कर दें, तो ? बोले—घर जाकर भगवान् का नाम ले, तेरा बालक अच्छा हो जायगा । मैं यह तुलसीदल देता हूँ, बच्चे को खिला दे, चरणामृत उसकी आँखों में लगा दे । भगवान् चाहेगे तो सब अच्छा ही होगा ।

सुखिया—ठाकुरजी के चरणों पर गिरने न दोगे महाराजजी ? बड़ी दुखिया हूँ, उधार काढ़कर पूजा की सामग्री जुटायी है । मैंने कल सपना देखा था, महाराजजी

कि ठाकुरजी की पूजा कर, तेरा बालक अच्छा हो जायगा । तभी दौकी आयी हूँ । मेरे पास एक रुपया है । वह मुझसे ले लो; पर मुझे एक छुन-भर ठाकुरजी के चरनों पर गिर लेने दो ।

इस प्रलोभन ने परिणतजी को एक ज्ञान के लिए विचलित कर दिया; किन्तु मूर्खना के कारण ईश्वर का भय उनके मन में कुछ-कुछ बाकी था । सँभल कर बोले—आरी पगली, ठाकुरजी भक्तों के मन का भाव देखते हैं कि चरन पर गिरना देखते हैं । नुना नहीं है—‘मन चंगा कठौती में गंगा ।’ मन में भक्ति न हो, तो लाल्ह कोड़े भगवान् के चरनों पर गिरे, कुछ न होगा । मेरे पास एक जन्तर है । दाम तो उसका बहुत है; पर तुझे एक ही रुपये में दे दूँगा । उसे बच्चे के गले में बांध देना । बस, कल बच्चा खेलने लगेगा ।

मुखिया—ठाकुरजी की पूजा न करने दोगे ?

पुजारी—नेरे लिए इननी ही पूजा बहुत है । जो बात कभी नहीं हुई, वह आज मैं कर दूँ आर गाँव पर कोइ आफत-विषय आ पड़े, तो क्या हो, इसे भी तो सांच ! तू यह जन्तर लेजा, भगवान् चाहेंगे, तो रात ही भर में बच्चे का क्लेश कट जायगा । किसी की दीठ पड़ गयी है । है भी तो चांचाल । मालूम होता है, क्लृती बंस है ।

मुखिया—जबसे इसे ज्वर है, मेरे प्रान नहां में समाये हुए हैं ।

पुजारी—बड़ा हांनहार बालक है । भगवान् जिला दें, तो तेरे सारे सङ्कट हर लेगा । यहाँ तो बहुत खेलने आया करता था । इधर दो-तीन दिन से नहीं देखा था ।

मुखिया—तो जन्तर को कैसे बौधूँगी, महाराज ?

पुजारी—मैं कपड़े में बधिकर देता हूँ । बस गले में पहना देना । अब तू इस बेला नवीन बस्तर कहाँ लोजने जायगा ।

मुखिया ने दो रुपये पर कड़े गिरां रखे थे । एक पहले ही भॅंज चुका था । दूसरा पुजारीजी को भेंट किया और जन्तर लेकर मन को समझाती हुई घर लौट आयी ।

(५)

मुखिया ने घर पहुँचकर बालक के गले में यन्त्र बौध दिया; पर ज्यो-ज्यों

रात गुजरती थी, उसका ज्वर भी बढ़ता जाता था, यहाँ तक कि तीन बजते-बजते उसके हाथ-पाँव शीतल होने लगे ! तब वह घबड़ा उठी और सोचने लगी—हाय ! मैं व्यर्थ ही संकोच में पड़ी रही और बिना ठाकुरजी के दर्शन किये चली आयी । अगर मैं अन्दर चली जाती और भगवान् के चरणों पर गिर पड़ती, तो कोई मेरा क्या कर लेता ? यही न होता कि लोग मुझे धक्के देकर निकाल देते, शायद मारते भी, पर मेरा मनोरथ तो पूरा हो जाता । यदि मैं ठाकुरजी के चरणों को अपने आँसुओं से भिंगो देती और बन्धे को उनके नरणों में सुला देती, तो क्या उन्हें दया न आती ? वह तो दयामय भगवान् हैं, दीनों की रक्षा करते हैं, क्या मुझपर दया न करते ? यह सोचकर मुखिया का मन अधीर हो उठा । नहीं, अब विलम्ब करने का समय न था । वह अवश्य जायगी और ठाकुरजी के चरणों पर गिरकर रोयेगी । उस अबला के आशंकित हृदय को अब इसके सिवा और कोई अवलम्ब, कोई आसरा न था । मन्दिर के द्वार बन्द होंगे, तो वह ताले ताङ डालेगी । ठाकुरजी क्या किसी के हाथों बिक गये हैं कि कोई उन्हें बन्द कर रखे ।

रात के तीन बज गये थे । मुखिया ने बालक को कम्बल से ढाँपकर गोद में उठाया, एक हाथ में थाली उडायी और मन्दिर की ओर चली । घर से बाहर निकलते ही शीतल वायु के झोंका से उसका कलेजा कौपने लगा । शीत से पाँव शिथिल हुए जाते थे । उमपर चारां और अन्धकार ल्याया हुआ था । रास्ता दो फरलाँग से कम न था । पगड़ण्डी बृक्षों के नीचे-नीचे गयी थी । कुछ दूर दाहिनी ओर एक पोखरा था, कुछ दूर बौस की कोटियाँ । पोखरे में एक धोबी मर गया था और बौस की कोटियों में चुड़ैलों का अड़ा था । बाईं ओर हरे-भरे खेत थे । चारों ओर सन-सन हो रहा था, अन्धकार सौँय-सौँ : कर रहा था । सहसा गीदड़ों ने कर्कश स्वर से हुआँ-हुआँ करना शुरू किया । हाय ! अगर कोई उसे एक लाल रुपये देता, तो भी इस समय वह यहाँ न आती; पर बालक की ममता सारी शंकाओं को दबाये हुए थी । ‘हे भगवान् ! अब तुम्हारा ही आसरा है !’ यही जपती वह मन्दिर की ओर चली जा रही थी ।

मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर मुखिया ने जड़ोर ट्योलकर देखी । ताला पड़ा हुआ था । पुजारीजी बरामदे से मिली हुई कोठरी में किवाड़ बन्द किये सो रहे-

ये। चारों ओर औंचेरा क्षाया हुआ था। मुखिया चबूतरे के नीचे से एक इंट उठा लायी और जोर-जोर से ताले पर पटकने लगी। उसके हाथों में न जाने इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी थी। दो ही तीन चौड़ीं में ताला और इंट दोनों टूटकर चौलट पर गिर पड़े। मुखिया ने द्वार खोल दिया और अन्दर जाना ही चाहती थी कि पुजारी किवाड़ खोलकर हड्डियाँ हुए बाहर निकल आये और 'चार, चार !' का गुल मचाते गाँव की ओर दौड़े। जाड़ों में प्रायः पहर रात रहे ही लोगों की नींद खुल जाती है। यह शार मुनते ही कई आदमी इधर-उधर से जालटेने लिये हुए निकल पड़े और पूछने लगे—कहाँ है, कहाँ है ? किथर गया ?

पुजारी—मन्दिर का द्वार खुल पड़ा है। मैंने खड़खड़ की आवाज सुनी।

सहमा मुखिया बरामदे से निकलकर चबूतरे पर आयी और बोली—चोर नहीं है, मैं हूँ; ठाकुरजी की पूजा करने आयी थी। अभी तो अन्दर गयी भी नहीं, मार हल्ला मचा दिया।

पुजारी ने कहा—अब अनर्थ हो गया। मुखिया मन्दिर में जाकर ठाकुरजी भ्रष्ट कर आयी !

फिर क्या था, कई आदमी झल्लाये हुए लपके और मुखिया पर लातों और बूँसों का मार पड़ने लगा। मुखिया एक हाथ से बच्चे का पकड़े हुए था और दूसरे हाथ से उसकी रक्खा कर रही थी। एकाएक एक बलिष्ठ ठाकुर ने उसे इतनी जार से धक्का दिया कि बालक उसके हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़ा; मगर वह न रोया, न बोला न सामंजी, मुखिया भी गिर पड़ी थी। सँभलकर बच्चे का उठाने लगी, तो उसके मुख पर नजर पड़ी। ऐसा जान पड़ा, मानो पानी में परल्हाइ हो। उसके मुँह से एक चीख निकल गयी। बच्चे का माथा छूकर देखा। यारों देह ठण्डी हो गयी थी। एक लम्बो सौंस खींचकर वह उठ खड़ो हुई। उसको आँखा में आँखून आये। उसका मुख कोध की ज्वाला से तमतमा उठा, आँखों से अंगारे बरसने लगे। दोनों मुटियाँ बँध गयीं। दाँत पासकर बोली—यापियों, मेरे बच्चे के प्राण लेकर अब दूर क्यों खड़े हो ? मुझे भी क्यों नहीं उसी के साथ मार डालते ? मेरे छू लेने से ठाकुरजी को छूत लग गयी। पारस को छूकर लोहा सोना हो-जाता है, पारस लोहा नहीं हो

मन्दिर

सुकता ! मेरे छूने से ठाकुरजी अपवित्र हो जायेंगे ! मुझे बनाया, तो छूत नहीं
लगी ? लो, अब कभी ठाकुरजी को छूने नहीं आऊँगी । ताले में बन्द रखो,
पहरा बैठा दो । हाय, तुम्हे दया छू भी नहीं गयी ! तुम इतने कठोर हो !
बाल-बन्धे बाले होकर भी तुम्हें एक अभागिनी माता पर दया न आयी ! तिस-
पर धरम के ठेकेदार बनते हो ! तुम सब-के-सब हत्यारे हो, निपट हत्यारे हो ।
ढरो मत, मैं थाना-पुलिस नहीं जाऊँगी, मेरा न्याय भगवान् करेंगे, अब उन्हीं
के दरबार में फरियाद करूँगी ।

किसी ने चूँ न की, कोई मिनमिनागात्तक नहीं । पाण्य-मूर्तियों की भाँति
सब-के-सब सिर झुकाये खड़े रहे ।

इतनी देर में सारा गाँव जमा हो गया था । सुखिया ने एक बार फिर
बालक के मुँह की ओर देखा । मुँह से निकला—हाय मेरे लाल ! फिर वह
मूर्ढ्युत होकर गिर पड़ी । प्राण निकल गये । बन्धे के लिए प्राण दे दिये ।

माता, तू धन्य है ! तुम्ह-जैसी निष्ठा, तुम्ह-जैसी श्रद्धा, तुम्ह-जैसा विश्वासः
देवताओं को भी दुर्लभ है !

निमन्त्रण

परिणित मोटेराम शास्त्री ने अन्दर जाकर अपने विशाल उदर पर हाथ केरते हुए यह पद पञ्चम स्वर में गाया—

अबगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम,

दास मलूका कह गये, सबके दाता राम !

सोना ने प्रफुल्लित होकर पूछा—कोई मीठी ताजी खबर है क्या ?

शास्त्राजी ने पैंतरे बदलकर कहा—मार लिया आज । ऐसा ताककर मारा कि चारों खाने चित्त । सारे घर का नेवता ! सारे घर का ! वह बढ़-बढ़कर हाथ मारूँगा कि देखने वाले दंग रह जायेंगे । उदर महाराज अभी से अधीर हो रहे हैं ।

सोना—कहीं पहले की भाँति अब की भी धोखा न हो । पक्का-पोड़ा कर लिया है न ?

मोटेराम ने मूँछुँ एँठते हुए कहा—ऐसा असगुन मुँह से न निकालो । बड़े अप-तप के बाद यह शुभ दिन आया है । जो तैयारियाँ करनी हों, कर लो ।

सोना—वह तो करूँगी ही । क्या इतना भी नहीं जानती ? जन्म-भर धास योँहे ही खादती रही हूँ; मगर है घर-भर का न ?

मोटेराम—अब और कैसे कहूँ; पूरे घर-भर का है । इसका अर्थ समझ में न आया हो, तो मुझसे पूछो । विद्रानों की बात समझना सब का काम नहीं । अगर उनकी बात सभी समझ लें, तो उनकी विद्रोह का महत्व ही क्या रहे । बताओ, क्या समझों ? मैं इस समय बहुत ही सरल भाषा में बोल रहा हूँ; मगर तुम नहीं समझ सकों । बताओ, ‘विद्रोह’ किसे कहते हैं ? ‘महस्त’ ही का अर्थ बताओ । घर-भर का निमन्त्रण देना क्या दिल्लगी है ! हाँ, ऐसे अवसर पर विद्रान् लोग राजनीति से काम लेते हैं और उसका वही आशय निकालते हैं, जो अपने अनुकूल हों । मुरादपुर की रानी साहब सात ब्राह्मणों को इच्छापूर्ण भोजन कराना चाहती है । कौन-कौन महाशय मेरे साथ जायेंगे, यह निश्चय करना मेरा काम है । अलगूराम शास्त्री, बेनीराम शास्त्री, छुदीराम शास्त्री, भवानीराम शास्त्री, फेझराम शास्त्री, मोटेराम शास्त्री, आदि जब इतने आदमी

अपने घर ही में हैं, तब बाहर कौन ब्राह्मणों को खोजने जाय ।

सोना—और सातवों कौन है ?

मोटे०—बुद्धि को दैषाओं ।

सोना—एक पतल घर लेते आना ।

मोटे०—फिर यही बात कही, जिसमें बदनामी हो । छः छः ! पतल घर लाऊँ । उस पतल में वह स्वाद कहाँ, जो वजमान के घर बैठकर भोजन करने में है । सुनो, सातवें महाशय है—परिदृत सोनाराम शाढ़ी ।

सोना—चलो, दिल्ली करते हो । भला, मैं कैसे जाऊँगी ?

मोटे०—ऐसे ही कठिन अवसरों पर तो विद्या की आवश्यकता पड़ती है । विद्वान् आदमी अवसर को अपना सेवक बना लेता है, मूर्ख अपने भाग्य को रोता है । सोनादेवी और सोनाराम शाढ़ी में क्या अंतर है, जानती हो ? केवल परिधान का । परिधान का अर्थ समझती हो ? परिधान ‘पहनाव’ को कहते हैं । इसी साड़ी को मेरी तरह बौध लो, मेरी भिरजई पहन लो, ऊपर से चादर ओढ़ लो । पगड़ी मैं बौध दूँगा । फिर कौन पहचान सकता है ?

सोना ने हँसकर कहा—मुझे तो लाज लगेगी ।

मोटे०—तुम्हें करना ही क्या है ? बातें तो हम करेंगे ।

सोना ने मन-ही-मन आनेवाले पदार्थों का आनन्द लेकर कहा—बड़ा मजा होगा !

मोटे०—बस, अब विलम्ब न करो । तैयारी करो, चलो ।

सोना—कितनी फँकी बना लूँ ?

मोटे०—यह मैं नहीं जानता । बस, यही अर्द्धश सामने रखो कि अधिक-से-अधिक लाभ हो ।

सहसा सोनादेवी को एक बात याद आ गई । बोली—अच्छा, इन बिछुओं को क्या करूँगी ?

मोटेराम ने ल्योरी चढ़ाकर कहा—इन्हें उठाकर रख देना, और क्या करोगी ?

सोना—हाँ जी, क्यों नहीं । उतारकर रख क्यों न दूँगी ?

मोटे०—तो क्या तुम्हारे बिछुए पहनने ही से मैं जी रहा हूँ ? जीता हूँ पौष्टिक पदार्थों के सेवन से । तुम्हारे बिछुओं के पुण्य से नहीं जीता ।

सोना—नहीं भाई, मैं बिछुए न उतारूँगी ।

मोटेराम ने सोचकर कहा—अच्छा, पहने चलो । कोई हानि नहीं । गोवर्द्धनधारी यह बाथा भी हर लेंगे । बस, पौंछ में बहुत-से कपड़े लपेट लेना । मैं कह दूँगा, इन परिडतजी को पीलपौंछ हो गया है । क्यों, कैसी सूझी ?

परिडताइन ने पतिदेव को प्रशंसा-सूचक नेत्रों से देखकर कहा—जन्म-भर पढ़ा नहीं है ?

(२)

सन्ध्या-समय परिडतजी ने पौंछों पुत्रों को बुलाया और उपदेश देने लगे—पुत्रों, कोई काम करने के पहले खूब सोच-समझ लेना चाहिए कि कैसे क्या होगा । मान लो, रानी साहब ने तुम लोगों का पता-ठिकाना पूछना आरम्भ किया, तो तुम लोग क्या उत्तर देगे ? यह तो महान् मूर्खता होगी कि तुम सब मेरा नाम लो । सोचो, कितने कलंक और लज्जा की बात होगी कि मुझ-जैसा विद्वान् केवल भाजन के लिए इतना बड़ा कुचक रखे । इश्लिए तुम सब योड़ी देर के लिए भूल जाओ कि मेरे पुत्र हो । कोई मेरा नाम न बतलाये । खंसार में नामों की कमी नहीं, कोई अच्छा-सा नाम चुनकर बता देना । पिता का नाम बदल देने मेरे कोई गाली नहीं लगती । यह कोई अपराध नहीं ।

अलगू—आप ही न बता दीजिए ।

मोटे०—अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है । हाँ, इतने महत्व का काम मुझे स्वयं करना चाहिए । अच्छा सुनो—अलगूराम के पिता का नाम है परिडत केशव पौंडे, खूब याद कर लो । बेनीराम के पिता का नाम है परिडत मँगसु श्रीमाना, खूब याद रखना । छेदीराम के पिता हैं परिडत दमझी तिवारी, भूलना नहीं । भवानी, तुम गंगू पौंडे बतलाना, खूब याद कर लो । अब रहे फेझराम, तुम बेदा बतलाना सेतूराम पाठक । हो गये सब ! हो गया सब का नाम-करण ! अच्छा अब मैं परीक्षा लूँगा । होशियार रहना । बोलो अलगू, तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

अलगू—परिडत केशव पौंडे ।

‘बेनीराम, तुम बताओ ।’

‘दमझी तिवारी ।’

छेदी—यह तो मेरे पिता का नाम है ।

बेनी—मैं तो भूल गया ।

मोटे०—भूल गये ! पश्चिम के पुत्र होकर तुम एक नाम भी नहीं याद कर सकते । बड़े दुःख की बात है ? मुझे पैंचों नाम याद हैं, तुम्हें एक नाम भी याद नहीं ? मुनो, तुम्हारे पिता का नाम है पश्चिम मंगल ओमा ।

पश्चिमजी लड़कों की परीक्षा ले ही रहे थे कि उनके परम मित्र पश्चिम चिन्तामणि जी ने द्वार पर आवाज दी । पश्चिम भोटेराम ऐसे घबराये कि सिर-पैर की सुधि न रही । लड़कों की भगाना ही चाहते थे कि पश्चिम चिन्तामणि अन्दर चले आये । दानों सज्जनों में बचपन में गाढ़ी मैत्री थी । दोनों बहुधा साथ-साथ भोजन करने जाया करते थे, और यदि पश्चिम भोटेराम अवृत्त रहते, तो पश्चिम चिन्तामणि के द्वितीय पद में कोई बाधक न हो सकता था; पर आज भोटेरामजी अपने मित्र को साथ नहीं ले जाना चाहते थे । उनको साथ ले जाना, अपने घरवालों में से किसी एक को छोड़ देना था और इतना महान् आत्मत्याग करने के लिए वे तैयार न थे ।

चिन्तामणि ने यह समारोह देखा, तो प्रसन्न होकर बोले—क्यों भाई, अकेले-ही-अकेले ! मालूम होता है, आज कहाँ गहरा हाथ मारा है ।

भोटेराम ने मुँह लटकाकर कहा—कैसी बातें करते हों, मित्र ! ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि मुझे कोई अवसर मिला हो और मैंने तुम्हें सूक्तना न दी हूँ । कदाचित् कुछ समय ही बदल गया, या किसी ग्रह का फेर है । कोई भू॒ठ को भी नहीं बुलाता ।

पश्चिम चिन्तामणि ने अविश्वास के भाव से कहा—कोई-न-कोई बात तो मित्र अवश्य है, नहीं तो ये बालक क्यों जमा हैं ?

मोटे०—तुम्हारी इन्हीं बातों पर मुझे कोध आता है । लड़कों की परीक्षा ले रहा हूँ । ब्राह्मण के लड़के हैं, चाह अद्वार पढ़े बिना इनको कौन पूछेगा ?

चिन्तामणि को अब भी विश्वास न आया । उन्होंने सोचा—लड़कों से ही इस बात का पता लग सकता है । फेहराम सबसे छोटा था । उसी से पूछा—क्या पढ़ रहे हो बेटा ! हमें भी सुनाओ ।

भोटेराम ने फेहराम को बोलने का अवसर न दिया । डरे कि यह तो सारा

भरहा कोड देगा। बोले—आ भी यह बयां पढ़ेगा। दिन भर खेलता है। फेक्ट्राम 'इतना बड़ा अपराध अपने नन्हें से सिर पर ब्यां लेता। बाल मुलाम गर्व से बोला—हमको तो याद है, पणिडत सेतूराम पाठक। हम बाद भी कर लें, तिसपर भी कहते हैं, हरदम खेलता है!

यह कहते हुए रोना शुरू किया।

चिन्तामणि ने बालक को गले लगा लिया और बोले—नहीं बेटा, तुमने अपना पाठ सुना दिया है। तुम खूब पढ़ते हो। यह सेतूराम पाठक कौन हैं, बेटा?

मोटेराम ने बिगड़कर कहा—तुम भी लड़कों की बातों में आते हो। सुन लिया होंगा किसी का नाम। (फेक्ट्र से) जा, बाहर खेल।

चिन्तामणि अपने मित्र की घबराहट देखकर समझ गये कि कोई-न-कोई रहस्य अवश्य है। बहुत दिमाग लड़ाने पर भी सेतूराम पाठक का आशय उनकी समझ में न आया। अपने परम मित्र की इस कुर्दिलता पर मन में दुखित हो कर बोले—अच्छा, आप पाठ पढ़ाएं और परीक्षा लीजिए। मैं जाता हूँ। तुम इतने स्वार्थी हो, इसका मुझे गुमान तक न था। आज तुम्हारी मित्रता की परीक्षा हो गयी।

पणिडत चिन्तामणि बाहर चले गये। मोटेरामजी के पास उन्हें मनाने के लिए समय न था। फिर परीक्षा लेने लगे।

साना ने कहा—मना लो, मना लो। स्थे जाते हैं। फिर परीक्षा ले लेना।

माटे०—जब कोई काम पढ़ेगा, मना लूँगा। निमन्त्रण की सुचना पाते ही इनका सारा क्रोध शान्त हो जायगा! हाँ भवानी, तुम्हारे पिता का बया नाम है, बालो!

भवानी—गंगू पाँडे।

माटे०—आं तुम्हारे पिता का नाम, फेक्ट्र!

फेक्ट्र—बता तो दिया, उस पर कहते हैं, पढ़ता नहीं!

माटे०—हमें भी बता दो।

फेक्ट्र—सेतूराम पाठक तो है!

मोटे०—बहुत ठीक, हमारा लड़का बड़ा राजा है। आज तुम्हें आगे साय बैठायेंगे और सबसे अच्छा माल तुम्हीं को खिलायेंगे।

सोना—हमें भी कोई नाम बता दो।

मोटेराम ने रसिकता से मुस्कराकर कहा—तुम्हारा नाम है परिषद शोहन-सरूप सुकुल।

सोनादेवी ने लजाकर सिर झुका दिया।

(३)

सोनादेवी तो लड़कों को कपड़े पहनाने लीरी। उधर केहुँ आनन्द की उमंग में घर से बाहर निकला। परिषद चिन्तामणि रुठ कर तो चले थे; पर कुतूहलवश अभी तक द्वार पर दबके लड़े थे। इन बातों की भनक इतनी देर में उनके कानों में पड़ी, उससे यह तो जात हो गया कि कहीं निमन्त्रण है; पर कहाँ है, कौनकौन से लोग निमन्त्रित हैं, यह कुछ जात न हुआ था। इतने में केहुँ बाहर निकला, तो उन्होंने उसे गोद में उठा लिया और बाले—कहाँ नेबता है, बेटा?

अपनी जान में तो उन्होंने बहुत धारे से पूछा था; पर न-जाने कैसे परिषद मोटेराम के कान में भनक पढ़ गयी। तुरन्त बाहर निकल आये। देखा, तो चिन्तामणिजी केहुँ को गोद में लिये कुछ पूछ रहे हैं। लशकर लड़के का हाथ पकड़ लिया और चाहा कि उसे अग्ने मिश्र को गोद से छोन लें; मगर चिन्तामणिजो को अभी अग्ने प्रश्न का उत्तर न मिजा था। अतएव वे लड़के का हाथ लुड़ाकर उसे लिये हुए चरने घर की आर भागे। मोटेराम भी यह कहते हुए उनके पीछे दौड़े—उसे क्यां लिये जाते हाँ? धूत कहीं का, दुष्ट! चिन्तामणि, मैं कहे देता हूँ, इसका नवीजा अच्छा न होगा; फिर कभी किसी निमन्त्रण में न ले जाऊँगा। भला चाहते हो, तो उसे उतार दो...। मगर चिन्तामणि ने एक न सुनी। भागते ही चले गये। उनकी देह अभी सँभाल के बाहर न हुई थी, दौड़ सकते थे; मगर मोटेरामजी को एक-एक पग आगे बढ़ता दुस्तर हा रहा था। मैंसे को भाँति हाँफते थे और नाना प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करते दुलकी चाल से चले जाते थे। और यथापि प्रतिक्षण अन्तर बढ़ता जाता था; और पोक्ता न छाड़ते थे। अच्छा तुझदोड़ थी। नगर के दो महात्मा दोड़ते हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानो दा गेंडे चिङ्गे-वर से भाग आये हाँ। से कहाँ

आदमी तमाशा देखने लगे । कितने ही बालक उनके पीछे तालियाँ बजाते हुए दौड़े । कदाचित् यह दौड़ पश्चिम चिन्तामणि के घर ही पर समाप्त होती; पर पश्चिम मोटेराम धोती के दीली हा जाने के कारण उलझकर गिर पड़े । चिन्तामणि ने पीछे फिर कर यह दृश्य देखा, तो वह गये औंर फेकूराम से पूछा—क्यां बेटा, कहाँ नेवता है?

फेकू—बता दें, तो हमें भिड़ाई दोगे न?

चिन्ता०—हाँ, दँगा; बताओ।

फेकू—रानी के यहाँ।

चिन्ता०—कहाँ की रानी?

फेकू—यह मैं नहीं जानता । कोई बड़ी रानी है।

नगर में कई बड़ी-बड़ी रानियाँ थीं । पश्चिमतजी ने सोचा, सभी रानियाँ के द्वार पर चबकर लगाऊँगा । जहाँ भोज होगा, वहाँ कुछ भीड़-भाड़ होगी ही, पता चल जायगा । वह निश्चय करके वे लौट पड़े । सहानुभूति प्रकट करने में अब कोई बाधा न थी । मोटेरामजी के पास आये, तो देखा कि वे पड़े कराह रहे हैं । उठने का नाम नहीं लेते । घबराकर पूछा—गिर कैसे पड़े मित्र, यहाँ कहीं गढ़ा भी तो नहीं है!

मोटे०—तुमसे क्या मतलब! तुम लड़के को ले जाओ, जो कुछ पूछना चाहो, पूछो।

चिन्ता—मैं यह अपन-अपवहार नहीं करता । दिल्ली की थी, तुम दुरा मान गये । ले उठ तो बैठ राम का नाम लेके । मैं सच कहता हूँ, मैंने कुछ नहीं पूछा ।

मोटे०—चल भूठा!

चिन्ता०—जनेऊ हाथ में लेकर कहता हूँ ।

मोटे०—तुम्हारी शपथ का विश्वास नहीं ।

चिन्ता०—तुम मुझे इतना धूर्त समझते हो?

मोटे०—इससे कहीं अधिक । तुम गंगा में छबकर शपथ खाओ, तो भी मुझे विश्वास न आये ।

चिन्ता०—दूसरा यह बात कहता, तो मूँछ उखाड़ लेता ।

मोटे०—तो फिर आ जाओ !

चिन्ता०—पहले परिषद्याहन से पूछ आओ ।

मोटेराम वह भस्मक व्यंग्य न सह सके । चट उठ बैठे और परिषद्याहन की स्थुति का हाथ पकड़ लिया । दोनों भिन्नों में मल्ल-युद्ध होने लगा । दोनों हनुमानजी की स्थुति कर रहे थे और इतने जोर से गरज-गरजकर मानों सिह दहाड़ रहे हैं । बस, ऐसा जान पढ़ता था, मानो दो पीपे आपस में टकरा रहे हैं ।

मोटे—महाबली बिकम बजरंगी ।

चिन्ता०—भूत-पिशाच निकट नहिं आवे ।

मोटे०—जय-जय-जय हनुमान गुसाई ।

चिन्ता०—प्रभु, रखिए लाज हमारी ।

मोटे०—(बिगड़कर) यह हनुमान-चालीसा में नहीं है ।

चिन्ता—यह हमने स्वयं रचा है । क्या तुम्हारी तरह की यह रटन्त विद्या है ! जितना कहाँ, उतना रच दें ।

मोटे०—अबे, हम रचने पर आ जायें तां एक दिन में एक लाख स्थुतियाँ रच डालें; किन्तु इतना अवकाश किसे है ।

दोनों महात्मा अलग खड़े हांकर अपने-अपने रचना-काँशल की ढींगें मार रहे थे । मल्ल-युद्ध शास्त्रार्थ का रूप धारण करने लगा, जो विद्वानों के लिए उचित है । इतने में किसी ने चिन्तामणि के घर जाकर कह दिया कि परिषद्याहन मोटेराम और चिन्तामणिजी में बड़ी लडाई हो रही है । चिन्तामणिजी तीन नहिलांगों के स्वामी थे । कुलीन ब्राह्मण थे, पूरे बीस बिस्वे । उस पर विद्वान् भी उच्चकोटि के, दूर-दूर तक यजमानी थी । ऐसे पुरुषों को सब अधिकार है । कन्या के साथ-साथ जब प्रचुर दक्षिणा भी मिलती हो, तब कैसे इनकार किया जाय । इन तीनों महिलाओं का सारे मुहल्ले में आतंक छाया हुआ था । परिषद्याहन ने उनके नाम बहुत ही रसीते रखे थे । बड़ी छोटी को ‘अमिरती, मँझली को ‘गुलाबजामुन’ और छोटी को ‘मोहनभोग’ कहते थे; पर मुहल्ले बालों के लिए तीनों महिलाएँ त्रयताप से कम न थीं । घर में नित्य और मुश्वरों की नदी रहती रहती—खून की नदी तो परिषद्याहन भी कभी नहीं बहायी,

आधिक-से-आधिक शब्दों की ही नदी बहायी थी; घर मजाल न थी कि बाहर का आदमी किसी को कुछ कह जाय। संकट के समय तीनों एक हो जाती थीं। यह परिष्ठितजी के नीति-चातुर्थ का सुफल था। ज्योही खबर मिली कि परिष्ठित चिन्तामणि पर संकट पड़ा हुआ है, तीनों चिरोष की भाँति कुपित होकर घर से निकलीं और उनमें जो अन्य दोनों-जैसी मोटी नहीं थीं, सबसे पहल समर-भूमि में जा पहुँचीं। परिष्ठित मोटेरामजी ने उसे आते देखा, तो समझ गये कि अब कुशल नहीं। अपना हाथ छुड़ाकर बगड़ भागे, पीछे फिरकर भी न देखा। चिन्तामणिजी ने बहुत ललकारा; पर मोटेराम के कदम न रुके।

निता०—अब्जी, भागे क्यों? ठहरो, कुछ मजा तो चखते जाओ।

मोट०—मैं हार गया, भाई, हार गया।

निता०—अब्जी, कुछ दक्षिणा तो लते जाओ।

मोटेराम ने भागते हुए कहा—दया करो, भाई, दया करो।

(४)

आठ बजते-बजते परिष्ठित मोटेराम ने स्नान और पूजा करके कहा—अब विलम्ब नहीं करना चाहिए, फँसी तैयार है न?

सोना—फँकी लिये तो कबसे बैठी हूँ, तुम्हें तो जैसे किसी बात की सुधि ही नहीं रहती। रात को कौन देखता है कि कितनी देर तक पूजा करते हो।

मोटे—मैं तुमसे एक नहीं, हजार बार कह चुका कि मेरे कामों में मत बोला करो। तुम नहीं समझ सकती कि मैंने इतना विलम्ब क्यों किया। तुम्हें ईश्वर ने इतनी बुद्धि ही नहीं दी। जल्दी जाने से अपमान होता है। यजमान समझता है, लोभी है, भुक्खाहूँ है। इसलिए चतुर लोग विलम्ब किया करते हैं, जिसमें यजमान समझे कि परिष्ठितजी को इसकी सुधि ही नहीं है, भूल गये होंगे। बुलाने को आदमी भेजें। इस प्रकार जाने में जो मान-महत्व है, वह मरमुखों की तरह जाने में क्या कभी हो सकता है? मैं बुलावे की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कोई-न-कोई आता ही होगा। लाशों योझी फँकी। बालकों को खिला दी है न?

सोना—उन्हें तो मैंने सौंभर ही को खिला दी थी।

मोट०—कोई सोया तो नहीं?

सोना—आज भला कौन सोयेगा? सब भूख-भूख चिल्ला रहे थे, तो मैंने

एक पेसे का चबेना मँगवा दिया। सब-के-सब ऊपर बैठे ला रहे हैं। सुनते नहीं हां, मार-पीट हो रही है।

मोटेराम ने दौँत पीसकर कहा—जो चाहता है कि तुम्हारी गरदन पकड़-
कर ऐंठ दूँ। भला, इस बेला चबेना मँगाने का क्या काम था? चबेना खाले
लेंगे, तो वहाँ क्या तुम्हारा सिर खायेंगे? छिः-छिः! जरा भी बुद्धि नहीं!

साना ने अग्राह स्वोकार करते हुए कहा—हाँ, भूज तो हुई; पर सब-के-
सब इतना कोलाहल मचाये हुए थे कि सुना नहीं जाता था।

मोटे०—रोते ही थे न, रोने देतो। रोने से उनका पेट न भरता; बल्कि
और भूख खुल जाती।

सहसा एक आदमी ने बाहर से आवाज दी—पंडितजी, महारानी बुला-
रही हैं, और लोगों को लेकर जल्दी चलो?

पंडितजी ने पक्की की ओर गर्व से देखकर कहा—देखा, इसे निमन्त्रण
कहते हैं। अब तैयारी करनी चाहिए।

बाहर आकर पंडितजी ने उस आदमी से कहा—तुम एक दण और ना
आते, तो मैं कथा सुनाने चला गया होता। मुझे बिलकुल याद न थी। चलो,
हम बहुत शीघ्र आते हैं।

(५)

नौ बजते-बजते पंडित मोटेराम बाल-नोपाल सहित रानी साहब के द्वार
पर जा पहुँचे। रानी बड़ी विशालकाय एवं तेजस्विनी महिला थी। इस समय
वे कारचोबीदार तकिया लगाये तख्त पर बैठी हुई थी। दो आदमी हाय बौंचे
पीछे लड़े थे। बिजली का पंखा चल रहा था। पंडितजी को देखते ही रानी ने
तख्त से उठकर चरण-स्पर्श किया, और इस बालक-मंडली को देखकर मुस-
कराती हुई बोली—इन बच्चों को आप कहाँ से पकड़ लाये?

मोटे०—करता क्या? सारा नगर छान मारा; किसी पंडित ने आनं
स्वीकार न किया। कोई किसी के यहाँ निमान्त्रत हैं, कोई किसी के यहाँ। तब
तो मैं बहुत चकराया। अन्त में मैंने उनसे कहा—अच्छा, आप नहीं चलते तो
हारि इच्छा; लेकिन ऐसा कीजिए कि मुझे लजित न होना पढ़े; तब जबरदस्ती

प्रत्येक के घर से जो बालक मिला, उसे पकड़ लाना पड़ा। क्यों फेंकूराम, तुम्हारे पिताजी का क्या नाम है ?

फेंकूराम ने गर्व से कहा—पंडित सेतुराम पाठक ।

रानी—बालक तो बड़ा होनहार है ।

और बालकों को भी उत्कंठा हो रही थी कि हमारी भी परीक्षा ली जाय; लेकिन जब पंडितजी ने उससे कोई प्रश्न न किया, और उधर रानी ने फेंकूराम की प्रशंसा कर दी, तब तो वे अधीर हो उठे। भवानी बोला—मेरे पिता का नाम है पंडित गंगू पौड़े ।

छेदी बोला—मेरे पिता का नाम है दमझी तिवारी ।

बेनीराम ने कहा—मेरे पिता का नाम है परिण्डत मँगरू ओझा ।

अलगूराम समझदार था। चुपचाप खड़ा रहा। रानी ने उससे पूछा—तुम्हारे पिता का क्या नाम है, जी ?

अलगूराम को इस बक्त पिता का निर्दिष्ट नाम याद नआया। न यही मूर्ख कि कोई और नाम ले ले। हतबुद्धि-सा खड़ा रहा। परिण्डत मोटेराम ने जब उसकी ओर दौंत वीसकर देखा, तब रहा-सहा हवास भी गायब हो गया।

फेंकूराम ने कहा—हम बता दें। मैंया भूल गये ।

रानी ने आशनर्य से पूछा—क्या अपने पिता का नाम भूल गया ? यह तो विचित्र बात देखी ।

मोटेराम ने अलगूराम के पास जाकर कहा—कैसे है । अलगूराम बोल उठा—केशव पौड़े ।

रानी—तो अब तक क्यों चुप था ?

मोटेराम—कुछ ऊँचा सुनता है, सरकार ।

रानी—मैंने सामान तो बहुत-सा मँगवा रखा है। सब खराब होगा। लड़के क्या खायेंगे !

मोटेराम—सरकार इन्हें बालक न समझें। इनमें जो सबसे छोटा है, वह दो पत्तल खाकर उठेगा।

(६)

जब सामने पत्तलें पड़ गयीं और भरहारी चौंदी की थालों में एक-से-एक

उत्तम पदार्थ ला-ल्लाकर परसने लगा, तब परिणत मोटेरायर्जी की ब्रॉड्सें खुल गयीं। उन्हें आये-दिन निमन्त्रण मिलते रहते थे। पर ऐसे अनुपम पदार्थ कभी सामने न आये थे। वी की ऐसी सौंधी सुगन्ध उन्हें कभी न मिली थी। प्रत्येक वस्तु से केवल और गुलाब की लपटें उड़ रहीं थीं; वी उपक रहा था। परिणत-जी ने सोचा—ऐसे पदार्थों से कभी पेट भर सकता है! मनों खा जाऊँ, किरंजी और खाने का जी चाहे। देवतागण इनसे उत्तम और कौन-से पदार्थ खाते होंगे? इनसे उत्तम पदार्थों की तो कल्पना भी नहीं हो सकती।

परिणतजी का इस वक्त अपने परमित्र परिणत चिंतामणि की याद आयी। अगर वे होंते, तो रंग जम जाता। उसकं बिना रंग कीका रहेगा। यहाँ दूसरा कौन है, जिससे लाग-डाट करूँ। लड़के दो-दो पत्तलों में चैं बोल जायेंगे। सोना कुछ साथ देगी; मगर कब तक? चिंतामणि के बिना रंग न गठेगा। वे नुक्के लजकारंगे, मैं उन्हें लजाकूरूँगा। उस उमंग में पत्तलां की कौन गिनती। हमारी देखा-देखी लड़के भी डट जायेंगे। ओह, बड़ी भूल हो गयी। यह खयाल नुक्के पहले न आया। रानी साहब से कहूँ, बुरा तो न मानेंगी। उँह! जो कुछ हो, एक बार जोर तो लगाना ही चाहिए। तुरन्त खड़े होकर रानी साहब से बोले—सरकार! आशा हो, तो कुछ कहूँ।

रानी—कहिए, कहिए महाराज, क्या किसी वस्तु की कमी है?

मोटे०—नहीं सरकार, किसी बात की नहीं। ऐसे उत्तम पदार्थ तो मैंने कभी देखे भी न थे। सारे नगर में आपकी कीर्ति फैल जायगी। मेरे एक परम मित्र परिणत चिंतामणिजी हैं, आज्ञा हों तो उन्हें भी बुला लूँ। बड़े विद्वान् कर्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं। उनकं जोड़ का इस नगर में दूसरा नहीं है। मैं उन्हें निमन्त्रण देना भूल गया। अभी सुधि आयी।

रानी—आपको इच्छा हो, तो ला लीजिए; मगर आने-जाने में देर होंगी और भोजन परोस दिया गया है।

मो०—अभी आता हूँ, सरकार; दौड़ता हुआ जाऊँगा।

रानी—मेरी मोटर ले लीजिए।

जब परिणतजी चलने को तैयार हुए, तब सोना ने कहा—तुम्हें आज क्या हो गय है, जी। उसे क्यों बुला रहे हो?

मोटे०—कोई साथ देनेवाला भी तो चाहिए !

सोना०—मैं क्या तुम से दब जाती ?

परिणतजी ने मुस्कराकर कहा—तुम जानती नहीं, घर की बात और है; दङ्गल की बात और। पुराना खिलाड़ी भैदान में जाकर जितना नाम करेगा, उतना नया पट्ठा नहीं कर सकता। वहाँ बल का काम नहीं, साहस का काम है। बस, यहाँ भी वही हाल समझो। आज भंडे गाढ़ दूँगा। समझ लेना।

सोना—कहीं लड़के सो जायें तो ?

मोटे०—आर भूख खुल जायगी। जगा तो मैं लूँगा।

सोना—देख लेना, आज वह तुम्हें पछाड़ेगा। उसके पेट में तो शनीचर है।

मोटे०—बुद्धि की सर्वत्र प्रधानता रहती है। यह न समझो कि भोजन करने की कोई विश्वा ही नहीं। इसका भी एक शास्त्र है, जिसे मथुरा के शनीचरानन्द महाराज ने रचा है। चतुर आदमी योद्धी-सी जगह में गृहस्थी का सब सामान रख देता है। अनाहटी बहुत-सी जगह में भी यही सोचता रहता है कि कौन वस्तु कहाँ रखूँ। गँवार आदमी पहले से ही हबक-हबककर खाने लगता है और चट एक लोग पानी पीकर अफर जाता है। चतुर आदमी बड़ी सावधानी से खाता है, उसको कोर नोचे उतारने के लिए पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती। देर तक भाजन करते रहने से वह सुपान्य भी हो जाता है। चिन्तामणि मेरे सामने क्या ठहरेगा !

(७)

चिन्तामणिजी अपने आँगन में उदास बैठे हुए थे। जिस प्राणी को वह अपना परमहितैरी समझते थे, जिसके लिए वे अपने प्राण तक देने को तैयार रहते थे, उसी ने आज उनके साथ बेवफाई की। बेवफाई ही नहीं की, उन्हें उठाकर दे मीरा। परिणत मोटेराम के घर से तो कुछ जाता न था। अगर वे चिन्तामणिजी को भी साथ लेते जाते, तो क्या रानी साहब उन्हें दुत्कार देती ? स्वार्थ के आगे कौन किसका पूछता है ? उन अमूल्य पदार्थों की कल्पना करके चिन्तामणि के मुँह से लार टपकी पड़ती थी। अब सामने पतल आ गयी होगी ! अब यालों में अमिरतियाँ लिये भरडारीजी आये होंगे ! ओहो, कितनी सुन्दर, कोमल, कुरकुरी, रसीली, अमिरतियाँ होंगी ! अब बेसन के लड्डू:

आये होंगे । ओहो, किनने सुडौल, मेवां से भरे हुए, वी से तरातर लड्डू होंगे, मुँह में रखते-ही-रखते धुल जाते होंगे, जीभ भी न खुलानी पड़ती होगी । अहा ! अब मोहन-भोग आया होगा ! हाय रे दुर्माण्य ! मैं यहाँ पड़ा सङ रहा हूँ और वहाँ यह बहार ! बड़े निर्दयी हो मोटेराम, तुमसे इस निष्ठुरता की आशा न थी ।

अमिरतीदेवी बोली—तुम इतना दिल छोटा क्यों करते हो ? पिनृपन्ह तो आ ही रहा है, ऐसे-ऐसे न-जाने किनने नेवते आयेंगे ।

चिन्तामणि—आज किसी अभागे का मुँह देखकर उंठा था । लाओ तो पता, देखूँ, कैसा मुहर्त है । अब नहीं रहा जाता । सारा नगर छान डालूँगा, कहीं तो पता चलेगा, नासिका तो दाहिनी चल रही है ।

एकाएक मोटर की आवाज आई । उनके प्रकाश से पड़ित जी का सारा घर जगमगा उठा । वे लिखकी से भाँकने लगे, तो मोटेराम को मोटर से उतरते देखा । एक लम्बी सौंस लेकर चारपाई पर गिर पड़े । मन में कहा कि हुष्ट भोजन करके अब यहाँ मुझसे बलान करने आया है ।

अमिरतीदेवी ने पूछा—कौन है डाढ़ीजार, इतनी रात को जगावत है ?
मोटे०—हम हैं हम ! गाली न दो ।

अमिरती—अरे दुर मुँहभाँसे, तैं कौन है ! कहते हैं, हम हैं हम ! को जाने, तैं कौन है ?

मोटे०—अरे, हमारी बोली नहीं पहचानती हो ? खूब पहचान लो । हम हैं, तुम्हारे देवर ।

अमिरती—ऐ, दुर, तोरे मुँह में का लागे । तोर लहास उठे । हमार देवर बनत हैं, डाढ़ीजार ।

मोटे०—अरे, हम हैं मोटेराम शास्त्री । क्या इतना भी नहीं पहचानती ?
चिन्तामणि घर में है ?

अमिरती ने केवाक खोल दिया और तिरस्कार-भाव से बोली—अरे तुम ये । तो नाम क्यों नहीं बताते ये ? जब इतनी गलियाँ खा लीं, तो बोल निकला । क्या है, क्या ?

मोटे०—कुछ नहीं; चिन्तामणिजो को शुभ-संबाद देने आया हूँ। रानी साहब ने उन्हें याद किया है।

अमिरती—भोजन के बाद बुलाकर क्या करेंगी?

माटे०—अभी भाजन कहाँ हुआ है! मैंने जब इनको विद्या, कर्मनिष्ठा, सद्विचार की प्रशंसा की, तब मुझ्य हा गयीं। मुझ से कहा कि उन्हें मोटर पर लाओ। क्या सांग गये?

चिन्तामणि चारपाई पर पड़े-पड़े मुन रहे थे। जो में आता था, चलकर माटेराम के चरणों पर गिर पड़ूँ। उनके विषय में अब तक जितने कुसित विचार उठे थे, सब लुप्त हो गये। ग्लानि का आविर्भाव हुआ। रोने लगे।

‘अरे भाई, आते हो या सोते ही रहोगे?’—पह कहते हुए मोटेराम उनके मामने जाकर खड़े हो गये।

चिन्ता०—तब क्यों न ले गये? जब इतनी दुर्दशा कर लिए, तब आये। अभी तक पीठ में दर्द हो रहा है।

माटे०—अजो, वह तर माल खिलाऊँगा नि सारा दर्द-वर्द भाग जायगा, तुम्हारे यजमानों को भी ऐसे पदार्थ मयस्सर न हुए हागे! आज तुम्हें बदकर पछाड़ूँगा!

चिन्ता०—तुम बेचारे मुझे क्या पछाड़ांगे। सारे शहर में तो कोई ऐसा माई का लाल दिलायी नहीं देता। हमें शनीचर का इष्ट है।

माटे०—अजो, यहाँ बरसां तपस्या की है। भण्डारे का भण्डारा साफ कर दें और इच्छा ज्यां-की-र्यां बनी रहे। बस, यही समझ लो कि भोजन करके हम खड़े नहीं हो सकते। चलना तो दूसरी बात है। गाड़ी पर लदकर आते हैं।

चिन्ता०—तो यह कौन बड़ी बात है। यहाँ तो टिकटी पर उठाकर लाये जाते हैं। ऐसी-ऐसी डकारे लेते हैं कि जान पड़ता है, बम-गोला छूट रहा है। एक बार खोपिया पुलिस ने बम-गोले के सन्देह में घर की तलाशी तक ली थी।

मोटे०—झूट बालते हो। कोई इस तरह नहीं डकार सकता।

चिन्ता०—अच्छा, तो आकर मुन लेना। डरकर भाग न जाओ, तो सही।

एक ज्ञान में दोनों मित्र मोटर पर बैठे और मोटर चली।

(=)

रास्ते में परिडत चिन्तामणि को शंका हुई कि कहीं ऐसा न हो कि मैं परिडत मोटेराम का पिछलमू समझा जाऊँ और मेरा यथेष्ट सम्मान न हो। उधर पंडित मोटेराम को भी भय हुआ कि कहीं ये महाशय मेरे प्रतिद्वन्द्वी न बन जायँ और रानी साहब पर अपना रङ्ग जमा लें।

दोनों अपने-अपने मंसुदे बौंधने लगे। ज्योही मोटर रानी के भवन में पहुँची, दोनों महाशय उतरे। अब मोटेराम चाहते थे कि पहले मैं रानी के पास पहुँच जाऊँ और कह दूँ कि परिडत को ले आया, और चिन्तामणि चाहते थे कि पहले मैं रानी के पास पहुँचूँ और अपना रंग जमा दूँ। दोनों कदम बढ़ाने लगे। चिन्तामणि हल्के होने के कारण जरा आगे बढ़ गये, तो परिडत मोटेराम दौड़ने लगे। चिन्तामणि भी दौड़ पड़े। शुड़दौड़-सी होने लगी। मालूम होता था कि दो बैंडे भागे जा रहे हैं। अन्त को मोटेराम ने हाँफते हुए कहा—
राजसभा में दौड़ते हुए जाना उचित नहीं।

चिन्ता०—तो तुम धीरे-धीरे आओ न, दौड़ने को कौन कहता है।

मोटे०—जरा रुक जाओ, मेरे पैर में कौश गड़ गया है।

चिन्ता०—तो निकाल लो, तब तक मैं चलता हूँ।

* मोटे०—मैं न कहता, तो रानी तुम्हें पूछती भी न !

मोटेराम ने बहुत बहाने किये; पर चिन्तामणि ने एक न सुना। भवन में हुँचे। रानी साहब बैठी कुछ लिख रही थीं और रह-रहकर द्वार की ओर ताक लेती थीं कि सहसा परिडत चिन्तामणि उनके सामने आ लड़े हुए और यों सुनि करने लगे—

‘हे हे यशोदे, तू बालकेशव, मुरारनामा ..’

रानी—क्या मतलब है ? अपना मतलब कहो ?

चिन्ता—सरकार को आशीर्वाद देता हूँ। सरकार ने इस दास चिन्तामणि को निमन्त्रित करके जितना अनुग्रहित (अनुग्रहीत) किया है, उसका बखान शेषनाम अपनी सहज जिम्मा द्वारा भी नहीं कर सकते।

रानी—तुम्हारा ही नाम चिन्तामणि है ? वे कहाँ रह गये—परिडत मोटेराम शास्त्री ?

चिन्ता०—योछु आ रहा है, सरकार ! मेरे बराबर आ सकता है, भला !
मेरा तो शिष्य है ।

रानी—अच्छा, तो वे आपके शिष्य हैं !

चिन्ता०—मैं अपने मुँह से अपनी बड़ाई नहीं करना चाहता, सरकार !
विद्वानों को नम्र होना चाहिए; पर जो यथार्थ है, वह तो संसार जानता है ।
सरकार, मैं किसी से वाद-विवाद नहीं करता; यह मेरा अनुशीलन (अभीष्ट)
नहीं । मेरे शिष्य भी बुधा मेरे गुह बन जाते हैं; पर मैं किसी से कुछ नहीं
कहता । जो सत्य है, वह सभी जानते हैं ।

इतने में परिणाम भोटेराम भी गिरते-गढ़ते हॉफ्टे हुए आ पहुँचे और यह
देखकर कि चिन्तामणि भद्रता और सम्भता की मूर्ति बने लड़े हैं, वे देवोपम
शान्ति के साथ लड़े हो गये ।

रानी—परिणाम चिन्तामणि बड़े साधु प्रकृति एवं विद्वान् हैं । आप उनके
शिष्य हैं, किर भी वे आपको अपना शिष्य नहीं कहते ।

मोटे०—सरकार, मैं इनका दासानुदास हूँ ।

चिन्ता०—जगतारिणी, मैं इनका चरण-रज हूँ ।

मोटे०—रिपुदलसंहारिणी, मैं इनके द्वार का कूकर हूँ ।

रानी—आप दोनों सज्जन पूज्य हैं । एक-से-एक बड़े हुए । चैलिए,
भोजन कीजिए ।

(६)

सोनारानी बैठी परिणाम मोटेराम की राह देख रही थीं । पति की इस
मित्र-भक्ति पर उन्हें बड़ा कांध आ रहा था । बड़े लड़कों के विषय में तो कोई
चिन्ता न थी; लेकिन छोटे बच्चों के सो जाने का भय था । उन्हें किससे-कहानियाँ
मुना-मुनाकर बहला रही थीं कि भण्डारी ने आकर कहा—महाराज, चलो,
दोनों परिणामी आसन पर बैठ गये । फिर क्या था, बच्चे कूद-कूदकर
भोजनशाला में जा पहुँचे । देखा, तो दोनों परिणाम दो बीरों की भाँति आमने-
सामने डटे बैठे हैं । दोनों अपना-अपना पुरुषार्थ दिखाने के लिए अधीर हो रहे थे ।

चिन्ता०—भण्डारीजी, तुम परोसने में बड़ा विलम्ब करते हो ! क्या भीतर
जाकर सोने लगते हो ?

भएडारी—चुपाई भारे बैठे रहो, जौन कुछ होई, सब आय जाई । परबढ़ाये का नहीं होता । तुम्हारे चिवाय और कोई जिवैया नहीं बैठा है ।

मोटे०—मैया, भोजन करने के पहले कुछ देर सुगन्ध का स्वाद तो लो ।

चिन्ता०—अब्जी, सुगन्ध गया चूलहे में, सुगन्ध देखता लोग लेते हैं । अपने लोग तो भोजन करते हैं ।

मोटे०—अब्जा बताओ, पहले किस चीज पर हाथ करोगे ?

चिन्ता०—मैं जाता हूँ, भीतर से सब चीजें एक साथ लिये आता हूँ ।

मोटे०—धोरज धरो मैया, सब पदार्थों को आ जाने दो । ठाकुरजी का भोग तो लग जाय ।

चिन्ता०—तो बैठे क्यों हो, तबतक भोग ही लगाओ । एक बाधा तो मिटे । नहीं तो लाओ, मैं चटपट भोग लगा दूँ । व्यर्थ देर करोगे ।

इतने में रानी आ गयीं । चिन्तामणि सावधान हो गये । रामायण की चौपाईयों का पाठ करने लगे—

‘रहा एक दिन अवधि अधारा । समुभृत मन दुख भयउ अपारा ॥

कौशलेश दशरथ के जाये । हम पितु बचन मानि बन आये ॥

उलटि पलटि लङ्घा कपि जारी । कूद पड़ा तब सिन्धु मँझारी ॥

जेहि पर जाकर सत्य सनेहू । तो तेहिं मिले न कल्पु सदेहू ॥

जामवन्त के बचन सुहाए । सुनि हृतुमान हृदय अति भाए ॥’

परिंदत मोटेराम ने देखा कि चिन्तामणि का रंग जमता जाता है, तो उसे भी अपनी विद्वत्ता प्रगट करने को व्याकुल हो गये । बहुत दिमाग लड़ाया; पर कोई श्लोक, कोई मन्त्र, कोई कवित याद न आया । तब उन्होंने सीधे-सीधे राम-नाम का पाठ आरम्भ कर दिया—

‘राम भज, राम भज, राम भज रे मन’—इन्होंने इतने ऊँचे स्वर से जाप करना शुरू किया कि चिन्तामणि को भी अपना स्वर ऊँचा करना पड़ा । मोटे-राम और जोर से गरजने लगे । इतने में भएडारीजी ने कहा—महाराज, अब भोग लगा॒ए । यह सुनकर उस प्रतिष्पर्द्धा का अन्त हुआ । भोग की तैयारी हुई । बालवृन्द सजग हो गया । किसी ने धण्ड लिया, किसी ने घडियाल, किसीने शश्व,

किसी ने करताल और चिन्तामणि ने आरती उठा ली । मोटेराम मन में ऐंठकर रह गये । रानी के समीप जाने का यह अवसर उनके हाथ से निकल गया ।

पर यह किसे मालूम था कि विधि-वाम उधर कुछ और ही कुटिल कीड़ा कर रहा है ? आरती समाप्त हो गयी थी, भोजन शुरू होने को ही था कि एक कुत्ता न-जाने किधर से आ निकला । पणिडत चिन्तामणि के हाथ से लड्ढ़ याल में गिर पड़ा । पणिडत मोटेराम अकनकाकर रह गये । सर्वनाश !

चिन्तामणि ने मोटेराम से इशारे में कहा—अब क्या कहते हों, मित्र ? कोई उपाय निकालो, यहाँ तो कमर टूट गयी ।

मोटेराम ने लम्बी सौंस लींचकर कहा—अब क्या हो सकता है ? यह समुर आया किधर से ?

रानी पास ही खड़ी थीं, उन्होंने कहा—अंर, कुत्ता किधर से आ गया ? यह रोज बँधा रहता था, आज कैसे छूट गया ? अब तो रसोई भ्रष्ट हो गयी :

चिन्ता०—सरकार, आनायों ने इस विषय में...

मोटे०—कोई हर्ज नहीं है, सरकार, कोई हर्ज नहीं है !

सोना—भाग्य फूट गया । जाहत-जाहत आशीरात बीत गयी, तब ही विरह काढ परी ।

चिन्ता०—सरकार, स्वान के मुख में अमृत...

मोटे०—तो अब आशा हो तो चलें ।

रानी—हाँ, और क्या । मुझे बड़ा दुःख है कि इस कुत्ते ने आज इतना बड़ा अनर्थ कर डाला । तुम बड़े गुस्ताल हो गये, यामी । भएडारी, ये पतल छठाकर मेहतर को दे दो ।

चिन्ता—(सोना से) छाती फटी जानी है ।

सोना को बालकों पर दिया आयी । बेचारे इतनी देर देवोपम धैर्य के साथ बैठे थे । बस चलता, तो कुत्ते का गला धोंग देती । बोली—लरकन का तो दोष नहीं परत है । इन्हें काहे नहीं खवाय देत कोऊ ।

चिन्ता०—मोटेराम महादुष्ट है । इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है ।

सोना—ऐसे तो बड़े विदान् बनते रहे । अब काहे नाहीं बोलत बनत । मुँह में दही जम गया, जीभै नहीं खुलत है ।

चिन्ता०—सत्य कहता हूँ, रानी को चक्रमा दे देता। इस दुष्ट के मारे सब खेल बिगड़ गया। सारी अभिलाषाएँ मन में रह गयीं। ऐसे पदार्थ अब कहाँ मिल सकते हैं?

सोना—सारी मनुसई निकल गयी। शर ही में गरजै के सेर हैं।

रानी ने भण्डारी को बुलाकर कहा—इन छोटे-छोटे तीनों बच्चों को खिलड़ दो। ये बेचारे क्यों भूलों मरें। क्यों फेकूराम, मिठाई खाओगे!

फेकू—इसीलिये तो आये हैं।

रानी—कितनी मिठाई खाओगे?

फेकू—बहुत-सी (हाथों से बताकर) इतनी!

रानी—अच्छी बात है। जितनी खाओगे उतनी मिलेगी; पर जो बात मैं पूछूँ, वह बतानी पड़ेगी। बताओगे न?

फेकू—हाँ बताऊँगा, पूछिये!

रानी—भूठ बाले, तो एक मिठाई न मिलेगी। समझ गये।

फेकू—मत दोजियेगा। मैं भूठ बोलूँगा ही नहीं।

रानी—अपने पिता का नाम बताओ।

मंटे०—बालकों को हरदम सब बातें स्मरण नहीं रहतीं। उसने तो आते-ही-आते बता दिया था।

रानी—मैं फिर पूछती हूँ, इसमें आपकी क्या हानि है?

चिन्ता—नाम पूछने में कोई हर्ज नहीं।

मंटे०—तुम चुप रहो चिन्तामणि, नहीं तो ठीक न होगा। मेरे क्रोध को अभी तुम नहीं जानते। दबा भैरूँगा, तो रोते भागोगे।

रानी—आप तो व्यर्थ इतना क्रोध कर रहे हैं। बोलो फेकूराम, चुप क्यों हों, फिर मिठाई न पाओगे।

चिन्ता०—महारानी की इतनी दया-दृष्टि तुम्हारे ऊपर है, बता दो बेटा।

मंटे०—चिन्तामणि जी, मैं देख रहा हूँ, तुम्हारे अदिन आये हैं। वह नहीं बताता, तुम्हारा साक्षा—आये वहों से बड़े खैरख्वाह बन के।

सोना—अरे हाँ, लरकन से इं सब पैवारा से का मतलब। तुमका धरम

परे मिठाई देव, न धरम परे न देव । ई का कि बाप का नाम बताओ तब
मिठाई देब ।

फेकूराम ने धीरे से कोई नाम लिया । इस पर परिणतजी ने उसे इतने
जोर से डाँग कि उसकी आधी बात मुँह में ही रह गयी ।

रानी—क्यों डाटते हो, उसे बोलने क्यों नहीं देते ? बोलो बेटा !

मोटे०—आप हमें अपने द्वार पर बुलाकर हमारा अपमान कर रही हैं ।

चिन्ता०—इसमें अपमान की तो कोई बात नहीं है, भाई !

मोटे०—अब हम इस द्वार पर कभी न आयेंगे । यहाँ सत्पुरुषों का अपमान
किया जाता है ।

अलग०—कहिये तो मैं चिन्तामणि को एक पटकन दूँ ।

मोटे०—नहीं बेटा, दुश्मों को परमात्मा स्वयं दरड देता है । चलो, यहाँ से
चलें । अब बुलाकर यहाँ न आयेंगे । लिलाना न पिलाना, द्वार पर बुलाकर
ब्राह्मणों का अपमान करना । तभी तो देश में आग लगी हुई है ।

चिन्ता०—मोटेराम, महारानी के सामने तुम्हें इतनी कटु बातें न करनी
चाहिये ।

मोटे०—बस चुप ही रहना, नहीं तो सारा क्रोध तुम्हारे ही सिर जायगा ।
माता-पिता का पता नहीं, ब्राह्मण बनने चले हैं । तुम्हें कौन कहता है ब्राह्मण ?

चिन्ता०—जो कुछ मन चाहे, कह लो । चन्द्रमा पर थूकने से थूक अपने
ही मुँह पर पड़ता है । जब तुम धर्म का एक लक्षण नहीं जानते, तब तुमसे क्या
चांत करूँ ? ब्राह्मण को धैर्य रखना चाहिये ।

मोटे०—ऐ के गुलाम हो । ठकरसाहाती कर रहे हो कि एकाघ पशल
मिल जाय । यहाँ मर्यादा का पालन करते हैं ।

चिन्ता०—कह तो दिया भाई कि तुम बड़े, मैं छोटा, अब और क्या कहूँ ।
तुम सत्य कहते होगे, मैं ब्राह्मण नहीं शुद्ध हूँ ।

रानी—ऐसा न कहिये चिन्तामणिजी, इसका बदला न लिया तो कहना !

यह कहते हुए परिणत मोटेराम बालक-बृन्द के साथ बाहर चले आये और
भाग्य को कोसते हुये घर को चले । बार-बार पछता रहे थे कि दुष्ट चिन्तामणि
को भयों बुला लाया ।

सोना ने कहा—भयडा फूट-फूट बच गया । फेकुआ नाँव बताव देन ।
काहे रे, अपने बाप केर नाँव बताय देते !

फेक—आँर क्या । वे तो सन्सच पूछती थीं !

मोटे०—चिन्तामणि ने रंग जमा लिया, अब आनन्द से मोजन करेगा ।

सोना—तुम्हार एको विद्या काम न आयी । ऊँ तीन बाजी मार लैगा ।

मोटे०—मैं तो जानता हूँ, रानी ने जान-बूझकर कुत्ते को बुला लिया ।

सोना—मैं तो श्रोका भूँह देखत ताङ गयी कि हमका पहचान गयी ।

इधर तो ये लोग पछताते चले जाते थे, उधर चिन्तामणि की पाँचों
अँगुली थी में थी । आसन मारे भोजन कर रहे थे । रानी अपने हाथों से
मिठाइयाँ परोस रही थीं; वार्तालाल भी होता जाता था ।

रानी—बड़ा धूर्त है ! मैं बालकों को देखते ही समझ गयी । अपनी स्त्री
को भेष बदलकर लाते उसे लजा न आयी ।

चिन्ता०—मुझे कोस रहे होंगे ।

रानी—मुझसे उड़ने नला था । मैंने भी कहा था—बचा, तुमका ऐसी
शिक्षा दूँगी कि उम्र-भर याद करोगे । यामी को बुला लिया ।

चिन्ता—सरकार की बुद्धि को धन्य है !

रामलीला

इधर एक मुहूर्त से रामलीला देखने नहीं गया। बन्दरों के भद्रे चेहरे लगाये, आधी टाँगों का पाजामा और काला रंग का ऊँचा कुरता पहने आदमियों को दौड़ते, हूँ-हूँ करते देखकर अब हँसी आती है; मजा नहीं आता। काशी की लीला जगद्विख्यात है। सुना है, लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं भी बड़े शौक से गया; पर मुझे तो वहाँ की लीला और किसी बज्र देहात की लीला में कोई अन्तर न दिखायी दिया। हाँ, रामनगर की लीला में कुछ साज-सामान अच्छे हैं। राज्ञियों और बन्दरों के चेहरे पीतल के हैं, गदाएँ भी पीतल की हैं; कदाचित् बनवासी भ्राताओं के मुकुट सब्जे काम के हाँ; लेकिन साज-सामान के सिवा वहाँ भी वही हूँ-हूँ के सिवा और कुछ नहीं। फिर भी लाखों आदमियों की भीड़ लगी रहती।

लेकिन एक जमाना वह था, जब मुझे भी रामलीला में आनन्द आता था। आनन्द तो बहुत हल्का-सा शब्द है। वह आनन्द उन्माद से कम न था। संयोगवश उन दिनों मेरे घर से बहुत याड़ी दूर पर रामलीला का मैदान था; और जिस घर में लीला-मात्राओं का रूप-रंग भरा जाता था, वह तो मेरे घर से चिलकुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से पात्रों की सजावट होने लगती थी। मैं दोपहर ही से वहाँ जा चैठता, और जिस उत्साह से दौड़-दौड़कर छोटे-मोटे काम करता, उस उत्साह से तो आज अपनी पेशन लेने भी नहीं जाता। एक कोठरी में राजकुमारों का शृंगार होता था। उनकी देह में रामरज पीसकर पोती जाती; मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल, हरे, नीले रंग की बुँदकियाँ लगायी जाती थीं। सारा माधा, भैंहें, गाल, ठोड़ी बुँदकियों से रच उठती थी। एक ही आदमी इस काम में कुशल था। वही बारी-बारी से तीनों पात्रों का शृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पंखा झलना मेरा काम था। अब इन तैयारियों के बाद विमान नेकलता, तो उस पर रामचन्द्रजी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व,

जो रोमाञ्च होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठकर भी नहीं होता। एक बार जब होम-मेम्बर साहब ने व्यवस्थापक-सभा मेंमेरे एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक्त मुझे कुछ उसी तरह का उल्लास, गर्व और रोमाञ्च हुआ था। हाँ, एक बार जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र नायब-तहसीलदारी में नामजद हुआ, तब भी ऐसो ही तरंगे मन में उठी थीं; पर इनमें और उस बाल-विहळता में बड़ा अंतर है। तब ऐसा मालूम होता था कि मैं स्वर्ण में वैया हूँ।

निषाद-नौका-लीला का दिन था। मैं दो-त्राव लड़कों के बहकाने में आकर गुल्ली-डण्डा खेलने लगा था। आज शुद्धार देखने न गया। विमान भी निकला; पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाँव लेना था। अपना दाँव छोड़ने के लिए उससे कहीं बढ़कर आत्मत्याग की जरूरत थी, जितना मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता तो मैं कब का भाग खड़ा होता; लेकिन पदाने में कुछ और ही बात होता है। खैर, दाँव पूरा हुआ। अगर मैं चाहता, तो धौंशली करके दस-पाँच मिनट और पदा सकता था, इसकी काफी गुजाराई थी; लेकिन अब इसका मौका न था। मैं सीधे नाले की तरफ दौड़ा। विमान जल-तट पर पहुँच चुका था। मैंने दूर से देखा—मल्लाह किश्ती लिये आ रहा है। दौड़ा, लेकिन आर्द्धमिंयों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आखिर जब मैं भीड़ हटाता, प्राण-प्रण से आगे बढ़ता थाट पर पहुँचा, तो निषाद अपनी नौका खोल चुका था। रामचन्द्र पर मेरी कितनी भ्रद्वा थी! अपने पाठ की चिन्ता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिसमें वह फेल न हो जायें। मुझसे उम्र ज्यादा होने पर भी वह नीची कहाँ में पढ़ते थे। लेकिन वही रामचन्द्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानो मुझसे जान-पहचान ही नहीं। नकल में भी असल की कुछ-न-कुछ बूँ आ ही जाती है। भक्तों पर जिनकी निगाह सदा ही तीखी रही है, वह मुझे क्यां उबारते? मैं विकल होकर उस बछड़े की भाँति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ रखा गया हो। कभी लपककर नाले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ दौड़ता, पर सब-के-सब, अपनी धुन में मस्त थे; मेरी चौख-पुकार किसी के कानों तक न पहुँची। तबसे बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ फैलीं; पर उस समय जितना दुःख हुआ, उतना फिर कभी न हुआ।

मैंने निश्चय किया था कि अब रामचन्द्र से न कभी बोलूँगा, न कभी खाने की कोई चीज ही दूँगा; लेकिन ज्योही नाले को पार करके वह पुल की ओर लोटे, मैं दाढ़कर विमान पर चढ़ गया, और ऐसा खुश हुआ, मानो कोई बात ही न हुई थी।

(२)

रामलीला समाप्त हो गयी थी। राजगद्वी होनेवाली थी; पर न-जाने क्यों देर हो रही थी। शायद चन्द्रा कम वसूल हुआ था। रामचन्द्र की इन दिनों कोई बात भी न पूछता था। न घर ही जाने की लुटी मिलती थी, न भोजन का ही प्रबन्ध होता था। चौधरी साहब के यहाँ से एक सीधा कोई तीन बजे दिन को मिलता था। बाकी सारे दिन कोई पानी को भी नहीं पूछता। लेकिन मेरी श्रद्धा अभी तक ज्यां की-न्यां थी। मेरी दृष्टि में वह अब भी रामचन्द्र ही थे। घर पर मुझे खाने की कोई चोज मिलती, वह लेकर रामचन्द्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनन्द मिलता था, उतना आप खा जाने में कभी न मिलता। कोइ मिठाई या फल पाते ही मैं बेतहासा चौपाल की ओर दौड़ता। अगर रामचन्द्र वहाँ न मिलते तो उन्हें चारों ओर तलाश करता, और जब तक वह नीज उन्हें न खिला लेता, मुझे चैन न आता था।

तैर, राजगद्वी का दिन आया। रामलीला के मैदान में एक बड़ा-सा शामियाना ताना गया। उसको खूब सजावट की गयी। वेश्याओं के दल भी आ पहुँचे। शाम को रामचन्द्र की सवारी निकली, और प्रत्येक द्वार पर उनकी आरती उतारी गयी। श्रद्धानुसार किसी ने रुपये दिये, किसी ने पैसे। मेरे पिता पुलिस के आदमी थे; इसलिए उन्होंने बिना कुछ दिये ही आरती उतारी। उस वक्त मुझे जितनी लज्जा आयी, उसे बयान नहीं कर सकता। मेरे पास उस वक्त संयोग से एक रुपया था। मेरे मामाजी दशहरे के पहले आये थे और मुझे एक रुपया दे गये थे। उस रुपये को मैंने रख छोड़ा था। दशहरे के दिन भी उसे खर्च न कर सका। मैंने तुरन्त वह रुपया लाकर आरती की याली में डाल दिया। पिताजी मेरी ओर कुपित-नेत्रों से देखकर रह गये। उन्होंने कुछ कहा तो नहीं; लेकिन मुँह ऐसा बना लिया, जिससे प्रकट होता था कि मेरी इस धृष्टता से उनके रोब में बद्ध लग गया। यत के दस बजते-बजते यह परिकमा पूरी

हुई । आरती की याली रूपयों और पैसों से भरी हुई थी । ठीक तो नहीं कह सकता; मगर अब ऐसा अनुभान होता है कि चार-पाँच सौ रुपयों से कम न थे । चौधरी साहब इनसे कुछ ज्यादा ही खर्च कर चुके थे । उन्हें इसकी बड़ी फिक्र हुई कि किसी तरह कम-से-कम दो सौ रुपये और वसूल हो जायें । और इसकी सब से अच्छी तरकीब उन्हें यही मालूम हुई कि वेश्याओं-द्वारा महफिल में वसूली हो । जब लोग आकर बैठ जायें, और महफिल का रंग जम जाय, तो अबादीजान रसिकजनों की कलाइयों पकड़-पकड़कर ऐसे हँव-भाव दिखायें कि नोग शरमाते-शरमाते भी कुछ-न-कुछ दे ही मरे । अबादीजान और चौधरी साहब में सलाह हाने लगी । मैं संयोग से उन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहा था । चौधरी साहब ने समझा होगा, यह लौंडा क्या मतलब समझेगा । पर यहाँ ईश्वर की दया से अङ्क के पुतले थे । सारी दास्तान समझ में आती जाती थी ।

चौधरी—मुनो आबादीजान, यह तुम्हारी ज्यादती है । हमारा और तुम्हारा कोई पहला साबिका तो है नहीं । ईश्वर ने चाहा, तो यहाँ हमेशा तुम्हारा आना-जाना लगा रहेगा । अब की चन्दा बहुत कम आया, नहीं तो मैं तुमसे इतना इसरार न करता ।

आबादी०—आप मुझ से भी जर्मीदारी चालें चलते हैं, क्यों? मगर यहाँ हुजूर की दाल न गलेगी । वाह! रुपये तो मैं वसूल करूँ, और मँड़ों पर ताव आप दें । कमाई का यह अच्छा ढंग निकाला है । इस कमाई से तो बाकई आप याके दिनों में राजा हो जायेंगे । उस के सामने जर्मीदारी भक्त मारेगी ! बस, कल ही से एक चक्कला खाल दीजिए । खुदा की कंसम, माला-माल हो जाइएगा ।

चौधरी—तुम दिल्लिगी करतो हो, और यहाँ काफिया तंग हो रहा है ।

आबादी०—तो आप भी तो मुझी से उस्तादी करते हैं । यहाँ आप-जैसे कौदियों का राज डॅगलियों पर नाचाती हूँ ।

चौधरी—आखिर तुम्हारी मंशा क्या है?

आबादी०—जो कुछ वसूल करूँ, उसमें आधा मेरा आधा आपका । लाइए, हाथ मारिए ।

चौधरी—बही सही ।

आबादी—अच्छा, तो पहले मेरे सौ रुपये गिन दीजिये। पीछे से आप अलसेट करने लगेंगे।

चौधरी—वाह! वह भी लोगी और यह भी।

आबादी—अच्छा! तो क्या आप समझते थे कि अपनी उजरत छोड़ दूँगी? वाह री आपकी समझ! खूब; क्यां न हो। दीवाना बकारे ख्वेश हुशियार।

चौधरी—तो क्या तुमने दोहरी फीस लेने की ठानी है?

आबादी—आगर आप को सौ दफे गरज हो, तो। बरना मेरे सौ रुपये तो कहीं गये ही नहीं। मुझे क्या कुत्ते ने काया है, जो लोगों की जेब में हाथ डालती फिरूँ?

चौधरी की एक न चली। आबादी के सामने दबना पड़ा। नाच शुरू हुआ। आबादीजान बला की शोख औरत थी। एक तो कमसिन, उस पर हसीन। और उसकी अदाएँ तो इस गजब की थीं कि मेरी तर्कियत भी मस्त हुई जाती थी। आदमियों के पहचानने का गुण भी उसमें कुछ कम न था। जिसके सामने बैठ गयी, उससे कुछ-न-कुछ ले ही लिया। पाँच रुपये से कम तो शायद ही किसी ने दिये हों। पिताजी के सामने भी वह बैठी। मैं मारे शर्म के गड़ गया। जब उसने उनकी कलाई पकड़ी, तब तो मैं सहम उठा। मुझे यकीन था कि पिताजी उसका हाय भट्टक देंगे और शायद दुत्कार भी दें, किन्तु यह क्या हा रहा है! ईश्वर! मेरी आँखें धोखा तो नहीं खा रही हैं! पिताजी मँझों में हँस रहे हैं। ऐसी मृदु-हँसी उनके चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी। उनकी आँखों से अनुराग टपका पड़ता था। उनका एक-एक रोम पुलाकित हो रहा था; मगर ईश्वर ने मेरी लाज रख ली। वह देखो, उन्होंने धीरे से आबादी के कामल हाथों से अपनी कलाई छुड़ा ली। अरे! यह किर क्या हुआ? आबादी तो उनके गले में बाँहें ढाले देती है। अब की पिताजी उसे जरूर पीड़ंगे। चुड़ैल को जरा भी शर्म नहीं।

एक महाशय ने मुसकराकर कहा— यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी, आबादी-जन! आंर दरखाजा देखो।

बात तो इन महाशय ने मेरे मन की कही, और बहुत ही उचित कहो; लेकिन न-जाने क्यों पिताजी ने उसकी ओर कुपित-नेत्रों से देखा, और मँझों पर

ताव दिया । मुँह से तो वह कुछ न बोले; पर उनके मुख की आकृति चिल्लाकर सरोष शब्दों में कह रही थी— तू बनिया, मुझे समझता क्या है ? यहाँ ऐसे अवसर पर जान तक निसार करने को तैयार हैं । रुपये की हकीकत ही क्या ! तेरा जी चाहे, आजमा ले । तुझसे दूनी रकम न दे डालूँ, तो मुँह न दिखाऊँ ! महान आश्र्य ! घोर अनर्थ ! अरे जमीन तू फट क्यों नहीं जाती ? आकाश, तू फट क्यों नहीं पड़ता ? अरे, मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती ! पिताजी जेब में हाथ डाल रहे हैं । वह कोई चीज निकाली, और सेठजी को दिखाकर आबादी-जान को दे डाली । आह ! यह तो अशर्पी है । चारं ओर तालियाँ बजने लगीं । सेठजी उल्लू बन गये । पिताजी ने भुँह की लायी, इसका निश्चय मैं नहीं कर सकता । मैंने केवल इतना देखा कि पिताजी ने एक अशर्पी निकालकर आबादीजान को दी । उनकी आँखों में इस समय इतना गर्वयुक्त उल्लास था, मानो उन्होंने हातिम की कब्र पर लात मारी हो । यही पिताजी हैं, जिन्होंने मुझे आरती में एक रुपया डालते देखकर मेरी ओर इस तरह से देखा था, मानो मुझे फाड़ ही लायेंगे । मेरे उस परमोच्चत व्यवहार से उनके रोब में फक्क आता था, और इस समय इस धृणित, कुर्सित और निंनदत व्यापार पर गर्व और आनन्द से फूले न समाते थे ।

आबादीजान ने एक मनोहर मुसकान के साथ पिताजी को सलाम किया और आगे बढ़ी; मगर मुझसे वहाँ न बैठा गया । मारे शर्म के मेरा मरतक मुक्ता जाता था; अगर मेरी आँखों-देखी बात न होती, तो मुझे इस पर कभी एतबार न होता । मैं बाहर जो कुछ देखता-मुनता था, उसकी रिपोर्ट अम्माँ से जरूर करता था । पर इस मामले को मैंने उनसे छिपा रखा । मैं जानता था, उन्हें यह बात सुनकर बड़ा दुःख होगा ।

रात-भर गाना होता रहा । तबले की धमक मेरे कानों में आ रही थी । जी चाहता था, चलकर देखँ; पर साहस न होता था । मैं किसी को मुँह कैसे दिखाऊँगा ? कहीं किसी ने पिताजी का जिक छेड़ दिया, तो मैं क्या करूँगा ?

प्रातःकाल रामचन्द्र की बिदाई होनेवाली थी । मैं चारपाई से उठते ही आँखें मलता हुआ चौपाल की ओर भागा । डर रहा था कि कहीं रामचन्द्र चले न गये हों । पहुँचा, तो देखा—तवायफों की सवारियाँ जाने को तैयार

है। बीमों आदमी हसरतनाक मुँह बनाये उन्हें घेरे लड़े हैं। मैंने उनकी ओर आँख तक न उठायी। सीधा रामचन्द्र के पास पहुँचा। लद्धण और सीता बैठे रो रहे थे, और रामचन्द्र खड़े कौंधे पर लुटिया-डोर ढाले उन्हें समझ रहे थे। मेरे सिवा वहाँ और कोई न था। मैंने कुरिंठत-स्वर से रामचन्द्र से पूछा—क्या तुम्हारी बिदाई हो गयी?

रामचन्द्र—हाँ, हो तो गयी। हमारी बिदाई ही क्या? चौधरी साहब ने कह दिया—जाओ, चले जाते हैं।

‘क्या रुपये और कपड़े नहीं मिले?’

‘अभी नहीं मिले। चौधरी साहब कहते हैं—इस वक्त बचत में रुपये नहीं हैं। फिर आकर ले जाना।’

‘कुछ नहीं मिला?’

‘एक पेसा भी नहीं। कहते हैं, कुछ बचत नहीं हुई। मैंने सोचा था, कुछ रुपये फेल जायेंगे तो पढ़ने की किंतु ले लूँगा! सो कुछ न मिला। राहत्वर्च भी नहीं दिया। कहते हैं—कौन दूर है, पैदल चले जाओ!’

मुझे ऐसा कोष आया कि चलकर चौधरी को खूब आड़े हाथों लूँ। वेश्याओं के लिए रुपये, सवारियाँ सब कुछ; पर बेचारे रामचन्द्र और उनके सांप्रदायिनों के लिए कुछ भी नहीं! जिन लोगों ने रात को आबादीजान पर दस-दस, बीस-बीस रुपये न्योल्डावर किये थे, उनके पास क्या इनके लिए दो-दो, चार-चार आने पैसे भी नहीं। पिताजी ने भी तो आबादीजान को एक अशर्फां दी थी। देखें इनके नाम पर क्या देते हैं! मैं दौड़ा हुआ पिताजी के पास गया। वह कहीं न स्तीश पर जाने का तैयार लड़े थे। मुझे देखकर बोले—कहाँ घूम रहे हों? पढ़ने के वक्त तुम्हें घूमने की सूफ़ती है?

मैंने कहा—गथा था चांपाल। रामचन्द्र बिदा हो रहे थे। उन्हें चौधरी साहब ने कुछ नहीं दिया।

‘तो तुम्हें इसको क्या फ़िक्र पढ़ी है?’

‘वह जायेंगे कैसे? पास राहत्वर्च भी तो नहीं है!’

‘क्या कुछ खर्च भी नहीं दिया? यह चौधरी साहब की बेइंसाफ़ी है।’

‘आप अगर दो रुपया दे दें, तो मैं उन्हें दे आऊँ। इतने में शायद वह घर पहुँच जायें।’

पिताजी ने तीव्र दृष्टि से देखकर कहा—जाश्नो, अपनी किताब देखो। मेरे पास इपये नहीं हैं।

यह कहकर वह थोड़े पर सवार हो गये। उसी दिन से पिताजी पर से मेरी श्रद्धा उठ गयी। मैंने किर कभी उनकी डॉँड-डपट की परता नहीं की। मेरा दिल कहता—आपको मुझको उपदेश देने का चार्ड अधिकार नहीं है। मुझे उनको सूरत से निढ़ हो गयी। वह जो कहते, मैं टीक उसका उल्य करता। यथापि इससे मेरी हानि हुई; लेकिन मेरा अन्तःकरण उस समय विप्लवकारी विचारों से भरा हुआ था।

मेरे पास दो आने पैसे पढ़े हुये थे। मैंने पैसे उठा लिये और जाकर शरमाने-शरमाने रामनन्द को दे दिये; उन पैसों को देखकर रामनन्द को जितना हप्त हुआ, वह मेरे लिये आशातीत था। टूट पड़े, मानों प्यासे को पानी मिल गया।

यही दो आने पैसे लेकर तीनों मूर्तियों बिदा हुई। केवल मैं ही उनके साथ कस्बे के बाहर तक पहुँचाने आया।

उन्हें बिदा करके लौट, तो मेरी आँखें सजल थीं; पर हृदय आनन्द से उमड़ा हुआ था।

मन्त्र

परिंडत लीलाधर चौबे की जबान में जादू था । जिस वक्त वह मञ्च पर खड़े होकर अपनी बाणी की सुधा-वृद्धि करने नगते थे, श्रोताओं की आत्माएँ तृप्त हो जाती थीं, लोगों पर अनुराग का नशा छा जाता था । चौबेजो के व्याघ्यानों में तत्क्षण तो बहुत कम होता था, शब्द-प्रोजना भी बहुत सुन्दर न होती थी; लेकिन बार-बार दुहराने पर भी उसका असर कम न होता; बल्कि घन की चोटीं की भाँति और भी प्रभावोत्पादक हो जाता था । हमें तो विश्वास नहीं आता; किंतु मुननेवाले कहते हैं, उन्होंने केवल एक व्याख्यान रख रखा है ! और उसी को वह शब्दशः प्रत्येक सभा में एक नये अन्दाज में दुहराया करते हैं ! जातीय गौरव-गान उनके व्याख्यानों का प्रधान गुण था; मञ्च पर आते ही भारत के प्राचीन गौरव और पूर्वजों की श्रमरक्तिर्ति का राग छेड़कर सभा को मुग्ध कर देते थे । यथा—

‘मुजनो ! हमारी अधोगति की कथा मुनकर किसकी आँखों से अश्रुधारा न निकल पड़ेगी ? हमें प्राचीन गौरव को याद करके सन्देह होने लगता है कि हम वही हैं, या बदल गये । जिसने कल सिंह से पक्षा लिया, वह आज चूहे को देखकर चिल लोंज रहा है । इस पतन की भी सीमा है ? दूर क्यों जाइये, महाराज चन्द्रगुप्त के समय को ही ले लीजिये । यूनान का सुविज्ञ इतिहासकार लिखता है कि उस जमाने में यहाँ द्वार पर ताले न डाले जाते थे, चौरी कड़ी मुनने में न आती थी, व्यभिचार का नाम-निशान न था, दस्तावेजों का आविष्कार ही न हुआ था, पुर्जों पर लातों का लेन-देन हो जाता था, न्याय पद पर टैठे हुये कमचारी मान्यतायाँ मारा करते थे । सज्जनो ! उन दिनों कोई आशमी जवान न मरता था । (तालियाँ) हैं, उन दिनों कोई आदमी जवान न मरता था । बाप के सामने बेटे का अवसान हो जाना एक अभूतशूर्व—एक असम्भव—घटना थी । आज ऐसे कितने माता-पिता हैं, जिनके कलेजे पर जवान बेटों का दाग न हो ? वह भारत नहीं रहा, भारत गारत हो गया !’

यही चौबेजी की शैली थी। वह वर्तमान की अधोगति और दुर्दशा तथा भूत की समृद्धि और सुदशा का राग अलाप कर लोगों में जातीय स्वाभिमान को जाग्रत कर देते थे। इसी सिद्धि की बदौलत उनकी नेताओं में गणना होती थी। विशेषतः हिन्दू-सभा के तो वह कर्णधार ही समझे जाते थे। हिन्दू-सभा के उपासकों में कोई ऐसा उन्धार्ही, ऐसा दक्ष, ऐसा नीति-चतुर दूसरा न था। यों कहिए कि सभा के लिए उन्होंने अपना जीवन ही उत्सर्ग कर दिया था। धन तो उनके पास न था, कम संकम लोगों का विचार यही था; लेकिन साहस, धैर्य और तुष्टि-जैसे अमूल्य रत्न उनके पास अवश्य थे, और ये सभी सभा का अर्पण थे। ‘शुद्धि’ के तो मानो वह प्राण ही थे। हिन्दू-जाति का उत्थान और पतन, जीवन और मरण उनके विचार में इसी प्रश्न पर अवलम्बित था। शुद्धि के सिवा अब हिन्दू-जाति के पुनर्जीवन का और कोई उपाय न था। जाति की समस्त नैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक बांगारियों की दबा इसी आन्दोलन की सफलता में मर्यादित थी, और वह तन, मन से इसका उद्योग किया करते थे। चन्दे वसूल करने में चौबेजी सिद्ध-हस्त थे। ईश्वर ने उन्हें वह ‘गुन’ बता दिया था कि पश्यर से भी तेल निकाल सकते थे। कंजसूं को तो वह ऐसा उलटे कुरे से मूँझते थे कि उन महाशयों को सदा के लिए शिशा मिल जाती थी! इस विषय में परिणतजी साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारों नीतियों से काम लेते थे, यहाँ तक कि राष्ट्र-हित के लिए डाका और चोरी को भी ज्ञान समझते थे।

(२)

गरमी के दिन थे। लीलाघरजी किसी शीतल पार्वत्य-प्रदेश को जाने की तैयारियाँ कर रहे थे कि सैर-की-सैर हो जायगी, और बन पड़ा तो कुछ चन्दा भी वसूल कर लायेंगे। उनको जब भ्रमण की इच्छा होती, तो मित्रों के साथ एक डेपुटेशन के रूप में निकल लड़े होते; अगर एक हजार रुपये वसूल करके वह इसका आधा सैर-सपाठे में खच्च भी कर दे, तो किसी की क्या हानि? हिन्दू-सभा को तो कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था। वह न उद्योग करते, तो इतना भी तो न मिलता! परिणतजी ने अब की सपरिवार जाने का निश्चय किया था। जब से ‘शुद्धि’ का आविर्भाव हुआ था, उनकी आर्थिक दशा, जो पहले बहुत

ज्ञातनीय रहती थी, बहुत कुछ सम्हल गयी थी।

लेकिन जाति के उपासकों का ऐसा सौभाग्य कहाँ कि शान्ति-निवास का आनन्द उठा सकें ! उनका तो जन्म ही मारे-मारे फिरने के लिए होता । लबर आयी कि मद्रास-प्रान्त में तबलीगवालों ने तूफान मचा रखा है । हिन्दुओं के गाँव-केंगाँव मुसलमान होते जाते हैं । मुल्लाओं ने बड़े जोश से तबलीग का काम शुरू किया है; अगर हिन्दू-सभा ने इस प्रवाह को रोकने की आयोजना न की, तो साग प्रान्त हिन्दुओं से शून्य हो जायगा—किसी शिखाधारी की सूरत तक न नजर जायेगी ।

हिन्दू-सभा में खलबली मच गयी । तुरन्त एक विशेष अधिवेशन हुआ और नेताओं के सामने यह समस्या उपस्थित की गयी । बहुत सांच-विचार के बाद निश्चय हुआ कि चौबेजी पर इस कार्य का भार रखा जाय । उनसे प्रार्थना की जाय की वह तुरन्त मद्रास चले जायें, और धर्म-विमुख बन्धुओं का उदार करें । कहने ही की देर थी । चौबेजी तो हिन्दू-जाति की सेवा के लिए अपने को अर्पण ही कर चुके थे; पर्वत-यात्रा का विचार रोक दिया, और मद्रास जाने को दैयार हा गये । हिन्दू-सभा के मन्त्री ने औलों में आँख भरकर उनसे विनय की कि महाराज, यह बेड़ा आप ही उठा सकते हैं । आप ही को परमात्मा ने इतनी सामर्थ्य दी है । आपके सिवा ऐसा कोई दूसरा मनुष्य भारत वर्ष में नहीं है, जो इस घोर विपत्ति में काम आये । जाति को दीन-हीन दशा पर दया कीजिए । चौबेजी इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके । फौरन् सेवकों की एक मारडली बनी और परिणतजी के नेतृत्व में रवाना हुई । हिन्दू-सभा ने उसे बड़ी धूम से बिदाई का भोज दिया । एक उदार रईस ने चौबेजी को एक थैली भेंट की, और रेलवे-स्टेशन पर हजारों आदमी उन्हें बिदा करने आये ।

यात्रा का वृत्तान्त लिखने की जरूरत नहीं । हर एक बड़े स्टेशन पर सेवकों का सम्मानपूर्ण स्वागत हुआ । कई जगह थैलियाँ मिलीं । रत्नाम की रियासत ने एक शामियाना भेंट किया । बड़ौदा ने एक मोटर दी कि सेवकों को पैदल चलने का कष्ट न उठाना पड़े, यहाँ तक कि मद्रास पैरौचते-पैरौचते सेवा दल के पास एक मालूल रकम के अतिरिक्त जरूरत की कितनी चीजें जमा हो गयीं । वहाँ आबादी से दूर खुले हुए मैदान में हिन्दू-सभा का पक्काव पड़ा । शामियाने

पर राष्ट्रीय-भरणा लहराने लगा। सेवकों ने अपनी-अपनी बार्दियाँ और कार्ली, स्थानीय धन-कुवेरों ने दावत के समान भेजे, रावडियाँ पढ़ गयीं। चारों ओर ऐसी चहल-पहल हो गयी। मानो किसी राजा का कैम्प है।

(३)

रात के आठ बजे थे। अबूतों की एक बस्ती के समीप, सेवक-दल का कैम्प गैस के प्रकाश से जगमगा रहा था। कई हजार आदमियों का जमाव था, जिनमें अधिकांश अबूत ही थे। उनके लिए अलग टाट बिल्डिंग दिये गये थे। ऊँचे वर्ण के हिन्दू कालीनों पर वैठे हुए थे। पर्यटक लीलाघर का धुआओधर व्याख्यान हो रहा था—तुम उन्हीं प्रृथियों की सन्तान हो, जो आकाश के नीचे एक नयी सुषिठ की रचना कर सकते थे! जिनके न्याय, बुद्धि और विचार-शक्ति ते सामने आज सारा भूसार सिर मुक्त रहा है।

महसा एक बूढ़े अबूत ने उठकर पूछा—हम लोग भी उन्हीं प्रृथियों की सन्तान हैं?

लीलाघर—निस्सन्देह! तुम्हारी धमनियों में भी उन्हीं प्रृथियों का रक्त दौड़ रहा है और यत्पि आज वा निर्देशी, कठार, विचार-हीन और संकुचित हिन्दू-समाज तुम्हें अवैलेना की हाई ने देल रहा है; तथापि तुम किसी हिन्दू से नीच नहीं हो, नाहे वह अपने को कितना ही ऊँचा समझता हो।

बूढ़ा—तुम्हारी सभा हम लोगों की सुधि क्यों नहीं लेती?

लीलाघर—हिन्दू-सभा का जन्म अभी थोड़े ही दिन हुए हुआ है, और इस अल्पकाल में उसने जितने काम किये हैं, उनपर उसे अभिमान हो सकता है। हिन्दू-जाति शतानियों के बाद गहरी नीद से चौंकी है, और अब वह समय निकट है, जब भारतवर्ष में कोई हिन्दू किसी हिन्दू को नीच न समझेगा, जब वह सब एक दूसरे को माई समझेंगे। श्रीरामचन्द्र ने निशाद को छाती से लगाया था, शवरी के जूठे बेर लाये थे...।

बूढ़ा—आप जब इन्हीं महात्माओं की सन्तान हैं, तो फिर ऊँच-नीच में क्यों इतना भेद मानते हैं?

लीलाघर—इसलिए कि हम पतित हो गये हैं—अक्षय में पड़कर उन महात्माओं को भूल गये हैं।

बूढ़ा—अब तो आपकी निद्रा दूटी है, हमारे साथ भोजन करोगे ?

लीलाधर—मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।

बूढ़ा—मेरे लड़के से अपनी कन्या का विवाह कीजिएगा ?

लीलाधर—जब तक तुम्हारे जन्म-संस्कार न बदल जायें, जब तक तुम्हारे आहार-व्यवहार में परिवर्तन न हो जाय, हम तुमसे विवाह का सम्बन्ध नहीं कर सकते, मास खाना छोड़ो, मदिरा पीना छोड़ो, शिद्धा प्रहण करो, तभी तुम उच्च-वर्ण के हिन्दुओं में मिल सकते हो ।

बूढ़ा—हम कितने ही ऐसे कुलीन ब्राह्मणों को जानते हैं, जो रात-दिन नशे में ड्वे रहते हैं, मांस के बिना कौर नहीं उठाते; और कितने ही ऐसे हैं, जो एक अन्नर भी नहीं पढ़े हैं; पर आपको उनके साथ भोजन करते देखता हूँ । उनसे विवाह-सम्बन्ध करने में आपको कदाचित् इनकार न होगा । जब आप खुद अत्मान में पढ़े हुए हैं, तो हमारा उद्धार कैसे कर सकते हैं ? आपका हृदय अभी तक अभिमान से भरा हुआ है । जाइए, अभी कुछ दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए । हमारा उद्धार आपके किये न होगा । हिन्दू-समाज में रहकर हमारे माथे से नीचता का कलंक न मिटेगा । हम कितने ही विद्रान्, कितने ही आचारवान् हो जायें आप हमें यांही नीच समझते रहेंगे हिन्दुओं की आत्मा मर गयी है, और उसका स्थान अहंकार ने ले लिया है । हम अब उस देवता की शरण जा रहे हैं, जिनके माननेवाले हमसे गले मिलने को आज ही तैयार हैं । वे यह नहीं कहते कि तुम अपने संस्कार बदलकर आओ । हम अच्छे हैं या बुरे, वे इसी दशा में हमें अपने पास बुला रहे हैं । आप अगर ऊँचे हैं, तो ऊँचे बने रहिए । हमें उड़ना न पड़ेगा ।

लीलाधर—एक ऋषि-सन्तान के मुँह से ऐसी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है । वर्ण-भेद तो ऋषियां ही का किया हुआ है । उसे तुम कैसे मिटा सकते हो ?

बूढ़ा—ऋषियों को मत बदनाम कीजिए । यह सब पाखण्ड आप लोगों का रचा हुआ है । आप कहते हैं—तुम मदिरा पीते हो ; लेकिन आप मदिरा पीनेवालों की जूतियाँ चापते हैं । आप हमसे मांस खाने के कारण बिनाते हैं; लेकिन आप गो-मांस खानेवालों के सामने नाक रगड़ते हैं । इसीलिए न कि वे

आप से बलवान् हैं ! हम भी आज राजा हो जायें, तो आप हमारे सामने हाथ बांधे लड़े होगे । आपके धर्म में वही ऊँचा है, जो बलवान् है ; वही नीचा है, जो निर्बल है । यही आपका धर्म है !

यह कहकर बूढ़ा वहाँ से चला गया, और उसके साथ ही और लोग भी उठ खड़े हुए । केवल चाबेजो और उनके दलवाले मञ्च पर रह गये, मानो मंज-गान समाप्त हो जाने के बाद उसकी प्रतिध्वनि वायु में गूँज रही हो ।

(५)

तबलीगवालों ने जब से चौबेजी के आने की खबर सुनी थी, इस फिर में थे कि किसी उगाय से इन सबका यहाँ से दूर करना चाहए । चौबेजी का नाम दूर-दूर तक प्रसिद्ध था । जानते थे, यह यहाँ जम गया, तो हमारी सारी की-कराया मेहनत वर्थे हों जायगा । इसक कदम यहाँ जमने न पायें । मुल्लाओं ने उपाय सोचना शुरू किया । बहुत वाद-विवाद, हुज्जत और दलील के बाद निश्चय हुआ कि इस काफिर को कल कर दिया जाय । ऐसा सबाब लूटने के लिए आदामियों की क्या कमी ? उसक निए तो जनत का दरवाजा खुल जायगा, हूरें उसकी बलाएँ लेंगी, कृरिश्टे उसक कदमों का खाक का मुरमा बनायेंगे, रसूल उसक सर पर बरकत का हाथ रखेंगे, खुदावन्द-करीम उसे सीने से लगायेंगे आर कहेंगे—तू मेरा व्याया दांस्त है । दा हट्ट-कट्टे जवानों ने तुरन्त बीड़ा उठा लिया ।

रात क दस बज गये थे । हिन्दू समा के कैम्प में सन्नाय था । केवल चौबेजी अप गो रावण में बैठे हिन्दू-उन । ह मन्त्रा का पत्र । लख रहे थे—यहाँ सबस बड़ा आवश्यकता धन की ह । रुपया, रुपया, रुपया ! जेतना भेज सके, भेजिए । डे दुटेश । भेजकर वसूल नाजिय, माटे महाजनों की जेव यालिए, भिज्हा माँगोए । बिना धन क हन अभागा का उदार न होगा । जब तक काई पाठशाला न खुन, काई चिकित्सल । न स्थापेत हा, काई वाचनालय । हा, इन्हें कैस विश्वास आयेगा कि हिन्दू-उन । उनको हिताचेन्तक है । तबल गवाँह जिनना खच कर रहे हैं, उसका प्राय मा मुके मेल जाय, तो हिन्दू-उनमें भी पताका फहराने लगे । केवल व्याख्यान स काम न चलेगा । असोसा स काई जिन्दा नहीं रहता ।

सहसा किसी की आहट पाकर वह चौंक पड़े । श्रौतें ऊपर उठायीं तो देखा, दों आदमी सामने खड़े हैं । परिणतजी ने शंकित होकर पूछा—तुम कौन हो ? क्या काम है ?

उत्तर मिला—हम इजराईल के फूरिश्टे हैं । तुम्हारी रुह कब्ज करने आये हैं । इजराईल ने तुम्हें याद किया है ।

परिणतजा यां बहुत ही बलिष्ठ पुरुष थे, उन दोनों को एक धक्के में गिरा सकते थे । प्रातःकाल तीन पाव मोहनभोग और दो सेर दूध का नाश्ता करते थे । दोपहर के समय पाव भर श्री दाल में खाते, तीसरे पहर दूधिया भंग छानते, जिसमें सेर-भर मलाई और आध सेर बादाम मिली रहती । रात को छटकर ब्यालू करते ; क्योंकि प्रातःकाल तक फिर कुछ न खाते थे । इस पर तुर्रा यह पैदल पग-भर भी न चलते थे । पालकी मिले, तो पूछना ही क्या, जैसे घर का पलॅंग उड़ा जा रहा हो । कुछ न हो, तो इक्का तो था ही ; यद्यरे काशी में ही दोही-नाच इक्केवाले ऐसे थे जो उड़े देखकर कह न दें कि 'इसका लाली नहीं है ।' ऐसा मनुष्य नर्म आलाड़े में पट पड़कर ऊपरवाले पहलवान को थका सकता था, चुस्ती और कुर्ती के अवसर पर तो वह रेत पर निकला हुआ कल्पुआ था ।

परिणतजी ने एक बार कनकियां से दरवाजे की तरफ देखा । भागने का कोई भौका न था । तब उनमें साहस का संचार हुआ । भय की पराकाष्ठा ही साहम है । अपने सोटे की तरफ हाथ बढ़ाया और गरजकर बोले—निकल जाओ यहां से...!

बात मुँह से पूरी न निकली थी कि लाठियां का बार पड़ा । परिणतजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े । शत्रुघ्नि ने समीप में आकर देखा, जीवन का कोई लक्षण न था । समझ गये, काम तमाम हा गया । लूटने का तो विचार न था; पर जब कोई पूलनेवाला न हो, तो हाथ बढ़ाने में क्या हर्ज ? जो कुछ हाथ लगा, ले-देकर चलने बने ।

(५)

प्रातःकाल बूढ़ा भी उधर से निकला, तो सज्जाया छाया हुआ था—न आदमी, न आदमजाद । छोलदारियों भी गायब ! चकराया, यह माजरा क्या है ! रात

हो भर में अलादीन के महल की तरह सब कुछ गाथब हो गया । उन महात्माओं में से एक भी नजर नहीं आता, जो प्रातःकाल मोहनभोग उड़ाते और सन्ध्या समय में गाँव घोटते दिखायी देते थे । जरा और समीप जाकर परिणत लीलाधर की रायदी में भौंका, तो कलेजा सब से हो गया ! परिणतजी जमीन पर मुर्दे की तरह पड़े हुए थे । मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं । सिर के बालों में रक्त ऐसा जम गया था, जैसे किसी चिक्कार के ब्रश में रंग । सारे कपड़े लहू-लुहान हो रहे थे । समझ गया, परिणतजी के साथियों ने उन्हें मारकर आगे राह ली । सहसा परिणतजी के मुँह से कराहने की आवाज निकली । अभी जान बाकी थी । बूढ़ा तुरन्त दौड़ा हुआ गाँव में गया, और कई आदभियों का लाकर परिणतजी को अपने घर उठवा ले गया ।

मरहम-पट्टी होने लगी । बूढ़ा दिन-केन्द्रिन और रात-की-रात परिणतजी के पास बैठा रहता । उसके घरवाले उनको शुश्रूषा में लगे रहते । गाँववाले भी यथार्थक सहायता करते । इस बेचारे का यहाँ कौन अपना बैठा हुआ है ? अपने हैं तो हम, बेगाने हैं तो हम । हमारे ही उद्धार के लिए तो बेचारा यहाँ आया था, नहीं तो यहाँ उसे क्या आना था ? कई बार परिणतजी अपने घर पर बीमार पड़ चुके थे, पर उनके घरवालों ने इतनी तन्मयता से उनकी तीमारदारी न की थी । सारा घर, और घर ही नहीं, सारा गाँव उनका गुजाम बना हुआ था । अतिथि-सेवा उनके धर्म का एक अंग थी । सभ्य-स्वार्थ ने अभी उस भाव का गला नहीं छोंग था । साँप का मन्त्र जाननेवाला देहाती अब भी माघ-पूजा को अँखेरी मेघाच्छब्द रात्रि में मन्त्र भाइने के लिए दस-पाँच कोस पैदल दौड़ता हुआ चला जाता है । उसे डबल फीस और सवारी की जरूरत नहीं होती । बूढ़ा मल-मूत्र तक अपने हाथों उठाकर फेंकता, परिणतजी की शुद्धिक्षियाँ मुनता, सारे गाँव से दूध माँगकर उन्हें पिलाता । पर उसकी ल्योरियों कभी मैली न होतीं । अगर उसके कहीं चले जाने पर घरवाले लापरवाही करते तो आकर सबको डॉँटा ।

महीने-भर के बाद परिणतजी चलने-फिरने लगे, और अब उन्हें जात हुआ कि इन लोगों ने मेरे साथ कितना उपकार किया है । इन्हीं लोगों का काम या कि मुझे मौत के मुँह से निकाला, नहीं तो मरने में क्या कसर रह गयी थी ?

उन्हें अनुभव हआ कि मैं जिन लोगों को नीच समझता था, और जिनके उद्धार का बीड़ा उठाकर आया था, वे मुझसे कहीं ऊँचे हैं। मैं इस परिस्थित में कदाचित् रोगी को किसी अस्पताल भेजकर ही अपनी कर्तव्य-निष्ठा पर गर्व करता; समझता थैने दर्शीच और हरिश्चन्द्र का मुख उज्ज्वल कर दिया। उनके रोएँ-राएँ से इन देव-नुल्य प्राणियों के प्रात आशीर्वाद निकलने लगा।

(६)

तीन महीने गुजर गये। न तो हिन्दू-सभा ने परिषद्गती की खबर ली, और न घरवालों ने। सभा के मुख्य-पत्र में उनकी मृत्यु पर आँसू बहाये गये, उनके कामों की प्रशंसा की गयी, और उनका स्मारक बनाने के लए चम्दा खोल दिया गया। घरवाले भी रो-पीटकर बैठ रहे।

उधर परिषद्गती दूध और धीखाकर चौक-चौबन्द हो गये। चेहरे पर खून की सुर्खी ढोड़ गयी, देह भर आयी। देहात के जलवायु ने वह काम कर दिलाया जो कभी मलाई और मक्कल से न हुआ था। पहले की तरह तैयार तो वह न हुए; पर कुर्ती और चुम्ती दुगनी हो गयी। मोटाई का आलस्य अब नाम को भी न था। उनमें एक नये जीवन का संचार हो गया।

जाड़ा शुरू हो गया था। परिषद्गती घर लौटने की तैयारियों कर रहे थे। इतने में प्लेग का आकमण हुआ, और गाँव के तीन आदमी बीमार हो गये। चूढ़ा चांघरी भी उन्हीं में था। घरवाले इन रोगियों को छोड़कर भाग खड़े हुए। वहाँ का दम्भर या कि जिन बीमारियों को वे लोग दैनी कोप समझते थे, उनके रागिया का छोड़कर जले जाते थे। उन्हें बचाना देवताओं से बैर मोल लेना था, और देवताओं से बैर करके कहाँ जाते ? जिस प्राणी को देवताओं ने नुन लिया, उसे भला वे उसके हाथों से छीनने का साहस कैसे करते ? परिषद्गती को भी लोगों ने साथ ले जाना चाहा; किन्तु परिषद्गती न गये। उन्होंने गाँव में रहकर रागियों की रक्षा करने का निश्चय किया। जिस प्राणी ने उन्हें मौत के पछो से छुड़ाया था, उसे इस दशा में छोड़कर वह कैसे जाते ? लपकार ने उनकी आत्म का जगा दिया था। चूढ़े चौधरी ने तीसरे दिन होश आने पर जब उन्हें अपने पास खड़े देखा, तो बोला—महाराज, तुम यहाँ क्यों आ गये ? मेरे लिए

देवताओं का हुक्म आ गया है। अब मैं किसी तरह नहीं उक सकता। तुम क्यों अपनी जान जोखिम में डालते हो? मुझपर दया करो, चलं जाओ।

लेकिन पश्चिमतजी पर कोई असर न हुआ। वह बारी-बारी से तीनों रोगियों के पास जाते, और कभी उनकी गिरिधर्याँ सँकरते, कभी उन्हें पुराणों की कथाएँ सुनाते। शरों में नाज, बरतन आदि सब जयों के-त्यों रखे हुए थे। पश्चिमतजी पथ्य बनाकर रोगियों को खिलाते। रात को जब रोगी भी सो जाते और सारा गाँव भौंठ-भौंठ करने लगता, तो पश्चिमतजी को भयंकर जन्मु दिखाई देते। उनके कलेजे में धड़कन होने लगती; लेकिन वहाँ से टलने का नाम न लेते। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि या तो इन लोगों को बचा हो लूँगा, या इन पर अपने को बलिदान ही कर दूँगा।

जब तान दिन सँक-बौंध करने पर भी रोगियों की हालत न सेंभली, तो पश्चिमतजी को बड़ी चिन्ता हुई। शहर वहाँ से बीस मील पर था। रेल का कहीं पता नहीं, रास्ता बोहक और सवारी कोई नहीं। इधर यह भय कि अकेले रोगियों की न-जाने क्या दशा हो। बेचारे बड़े संकट में पड़े। अत को चौथे दिन, पहर रात रहे, वह अकेले शहर को चल दिये और दस बजते-बजते वहाँ जा पहुँचे। अस्पताल से दवा लेने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। गँवारों से अस्पतालवाले दवाओं का मनमाना दाम बसूल करते थे। पश्चिमतजी को मुफ्त क्यों देने लगे? डाक्टर के मुन्शी ने कहा—दवा तैयार नहीं है।

पश्चिमतजी ने गिरणिङ्कार कहा—सरकार बड़ी दूर से आया हूँ। कई आदमी बीमार पड़े हैं। दवा न मिलेगी, तो सब मर जायेंगे।

मुन्शी ने बिंगाकर कहा—क्यों सिर खाये जाते हो? कह तो दिया, दवा तैयार नहीं है, न तो इतनी जल्दी हो ही सकती है।

पश्चिमतजी अत्यन्त दीनभाव से बोले—सरकार ब्राह्मण हैं; आपके बाल-बच्चों को भगवान् चिरञ्जीवी करें; दया कीजिए। आपका अकबाल ज्ञमकता रहे।

रिश्वती कर्मचारी में दया कहाँ? ये तो रुपये के गुलाम हैं। ज्यो-ज्यो पश्चिमतजी उसकी खुशामद करते थे, वह और भी भक्षाना था। अपने जीवन में पश्चिमतजी ने कभी इतनी दीनता न प्रगट की थी। उनके पास इस बक्त एक खेला भी न था; अगर वह जानते कि दवा मिलने में इतनी दिक्कत होगी,

तो गाँववालों से ही कुछ मौँग-जौँचकर लाये होते। बेचारे हतबुद्धि-से खड़े सौन रहे थे कि अब क्या करना चाहिए? सहसा डाक्टर साहब स्वयं बँगले से निकल आये। पंडितजी लपकर उनके पैरों पर गिर पड़े और कशण-स्वर में बोले—दीनबन्धु, मेरे घर के तीन आदमी ताऊन में पड़े हुए हैं। बड़ा गरीब हूँ, सरकार, कोई दवा मिले।

डाक्टर साहब के पास ऐसे गरीब लोग नित्य आया करते थे। उनके चरण पर किसी का गिर पड़ता, उनके सामने पड़े हुए आर्तनाद करता, उनके लिए कुछ नयी बातें न थीं। अगर इस तरह वह दवा करने लगते तो दवा ही भर को होते; यह ठाट-बाट कहाँ से निभता? मगर दिल के चाहे कितने ही बुरे हों बातें मोटी-मोटी कहते थे। पैर हटाकर बोले—रोगी कहाँ है?

पंडितजी—सरकार, वे तो घर पर हैं। इतनी दूर कैसे लाता?

डाक्टर—रोगी घर, और तुम दवा लेने आया है? कितना मजे का बात है! रोगी को देखे बिना कैसे दवा दे सकता है?

पंडितजी को अपनी भूल मालूम हुई। वास्तव में बिना रोगी का देखे राग की पहचान कैसे हो सकती है; लेकिन त न-तीन रोगियां को इतनी दूर लाना आसान न था। अगर गाँववाले उनकी सहायता करते, तो डो़लंयों का प्रबन्ध हो सकता था; पर वहाँ तो सब-कुछ अपने ही भूते पर करना था, गाँववालों से इसमें सहायता मिलने की कोई आशा न थी। सहायता को कौन कहे, वे तो उनके शत्रु हो रहे थे। उन्हें भय होता था कि यह दुष्ट देवताओं से बैर बढ़ा-कर हम लंगों पर न-जाने क्या विपर्ति लायेगा। अगर कोई दूसरा आदमी होता, तो वह उस कब का मार कुकुर होते। परिषद्जी से उन्हें प्रेम हो गया था, इस-लिए छोड़ दिया था।

यह जनाब मुनकर परिषद्जी को कुछ बोलने का साहस तो न था; पर कलेजा मजबूत करके बाले—सरकार, अब कुछ नहीं हो सकता?

डाक्टर—अस्पताल से दवा नहीं मिल सकता। हम अपने पास से, दाम लेकर दवा दे सकता है।

पंडित—यह दवा कितने की होगी, सरकार?

डाक्टर साहब ने दवा का दाम १०) बतलाया, और यह भी कहा कि

इस दवा से जितना लाभ होगा, उतना अस्पताल की दवा से नहीं हो सकता । बोले—वहाँ पुरानी दवाई रखा रहता है । गरीब लोग आता है, दवाई ले जाता है; जिसका जीना होता है, जीता है; जिसे मरना होता है, मरता है; हमसे कुछ मतलब नहीं । हम तुमको जा दवा देगा, वह सच्चा दवा हागा ।

दस रुपये !—इस समय पश्चिमतजी को दस रुपये दस लाख जान पड़े । इतने रुपये वह एक दिन में भंग-चूटी में उड़ा दिया करते थे; पर इस समय तो खेले-खेले को मुहताज थे । किसी से उधार मिलने को आशा कहाँ । हाँ, समझ है, मिला माँगने से कुछ मिल जाय ; लेकिन इतना जल्द दस रुपये किसी भी उपाय से न मिल सकते थे । आध घण्टे तक वह इसी उखेड़-बुन में खड़ रहे । भिज्ञा के सिंचा दूसरा कोई उपाय न सूझता था, और भिज्ञा उन्होंने कभी माँगी न थी । वह चन्दे जमा कर चुके थे, एक-एक बार में हजार बसूल कर लेते थे; पर वह दूसरी बात थी । धर्म के रद्दक, जाति के संवेद और दलितों के उढ़ारक बनकर चन्दा लेने में एक गौरव था, चन्दा लेकर वह देनेवालों पर एहसान करते थे; पर यहाँ तो भिखारियों की तरह हाथ फैलाना, गिङ्गिङ्गाना और फक्कारं सहनी पड़ेगी । कोई कहेगा—इतने मांटे-ताजे तो हाँ, मिलनत क्यों नहीं करते, तुम्हें भी ख माँगते शर्म भी नहीं आती ? कोई कहेगा—धास स्वाद लाओ, मैं तुम्हें अच्छी मजदूरी दूँगा । किसी को उनके ब्राह्मण होने का विश्वास न आयेगा । अगर यहाँ उनका रेशमी अचक्कन और रेशमी शाफा हाता, केस-रिया रंगवाला दुरुष्टा ही मिल जाता, तो वह कोई स्वांग भर लेते ! ज्योतिशी बनकर वह किसी धनी सेठ को फौस सकते थे, और इस फन में वह उस्ताद भी थे; पर यहाँ वह सामान कहाँ—कपड़े-लत्ते तो सब लुँ चुरे थे । विषनि में कदा-चितू बुद्धि भा भ्रष्ट हो जाती है । अगर वह मैदान में खड़े होकर कोई मनोहर व्याख्यान दे देते, तो शायद उनके दस-पाँच भक्त पैदा हो जाते ; लेकिन इस तरफ उनका ध्यान ही न गया । वह सजे हुए पनडाल में, फूलों से मुसिजित मेज के सामने, मंच पर खड़े होकर अपनी वाणी का चमत्कार दिखला सकते थे । इस दुरवस्था में कौन उनका व्याख्यान सुनेगा ? लोग समझेंगे, कोई पागल बक बहा है ।

मगर दोपहर ढली जा रही थो, अधिक सोनच-विचार का अवकाश न था ।

यहीं संध्या हो गयी, तो रात को लौटना असम्भव हो जायगा। फिर रोगियों की न-जाने क्या दशा हो। वह अब इस अनिश्चित दशा में खड़े न रह सके, चाहे जितना तिरस्कार हो, कितना ही अपमान सहना पड़े, भिन्ना के सिवा और कोई उपाय न या।

वह बाजार में जाकर एक दूकान के सामने खड़े हो गये; पर कुछ मौगले की हिम्मत न पड़ी।

दूकानदार ने पूछा—क्या लोगे?

परिणतजी बोले—चावल का क्या भाव है?

मगर दूसरी दूकान पर पहुँचकर वह ज्यादा सावधान हो गये। सेठजी गहरी पर बैठे हुए थे। परिणतजी आकर उनके सामने खड़े हो गये और गीता का एक लोक पढ़ सुनाया। उनका शुद्ध उच्चरण और मधुर वाणी सुनकर सेठ जी चकित हो गये, पूछा—कहाँ स्थान है?

परिणतजी—काशी से आ रहा हूँ।

यह कहकर परिणतजी ने सेठजी को धर्म के दसोंलक्षण बतलाये और लोक की ऐसी अच्छी व्याख्या की कि वह मुख्य हो गये। बोले—महाराज, आज चल कर मेरे स्थान को पवित्र कीजिए।

कोई स्वार्थी आदमी होता, तो इस प्रस्ताव के सहर्ष स्वीकार कर लेता; लेकिन परिणतजी को लौटने की पड़ी थी। बोले—नहीं सेठजी, मुझे अवकाश नहीं है।

सेठ—महाराज, आपको हमारी इतनी लातिरी करनी पड़ेगी।

परिणतजी जब किसी तरह ठहरने पर राजी न हुए, तो सेठजी ने उदास होकर कहा—फिर हम आपकी क्या सेवा करें? कुछ आशा दीजिए। आपकी वाणी से तो तृप्ति नहीं हुई। फिर कभी इधर आना हो, तो अवश्य दर्शन दीजियेगा।

परिणतजी—आपकी इतनी श्रद्धा है तो अवश्य आऊँगा।

यह कहकर परिणतजी फिर उठ खड़े हुये। संकोच ने फिर उनकी जबान बन्द कर दी। यह आदर-सत्कार इसीलिये तो है कि मैं अपना स्वार्थ-भाव छिपाये हुए हूँ। कोई इच्छा प्रकट की, और इनकी आँखें बदलीं। सूखा जबाब

चाहे न मिले ; पर श्रद्धा न रहेगी । वह नीचे उतर गये और सड़क पर एक चूण के लिए, लड़े होकर सोचने लगे—अब कहाँ जाऊँ ? उधर जाड़े का दिन किसी विलासी के धन की भाँति भागा जला जाता था । वह आपने ही ऊपर झुँभला रहे थे—जब किसी से मौंगूँगा ही नहीं, तो कोई क्यों देने लगा ? कोई क्या मेरे मन का हाल जानता है ? वे दिन गये, जब धनी लोग ब्राह्मणों की पूजा किया करते थे । यह आशा क्षोड़ दो कि कोई महाशय आकर तुम्हारे हाथ में रुपये रख देंगे । वह धीरे-धीरे आगे बढ़े ।

सहसा सेठजी ने पीछे से पुकारा —परिणतजी, जरा ठड़रिए ।

परिणतजी ठहर गये । फिर धर चलने के लिए आग्रह करने आता होगा । यह तो न हुआ कि एक दस रुपये का नोट लाकर दे देता, मुझे धर ले जाकर न जाने क्या करेगा !

मगर जब सेठजी ने सन्चमुच एक गिनी निकालकर उनके पैरों पर रख दी, तो उनकी आँखों में एहसान के आँसू उछल आये । है ! अब भी सधे धर्मत्वा जीव संसार में हैं, नहीं तो यह पृथ्वी रसातल को न चली जाती ! अगर इस वक्त उन्हें सेठजी के कल्याण के लिए आपनी देह का सेर-आध सेर रक्त भी देना पड़ता, तो भी शौक से दे देते । गदगद-कण्ठ से बोले—इसका तो कुछ काम न या, सेठजी ! मैं भिन्नुक नहीं हूँ, आपका सेवक हूँ ।

सेठजी श्रद्धा-विनय-पूर्ण शब्दों में बोले—भगवन्, इसे स्वीकार भीजिए । यह दान नहीं, मैंट है । मैं भी आदमी पहचानता हूँ । बहुतेरे साधु-मन्त, योगी-यती, देश और धर्म के सेवक आते रहते हैं; पर न जाने क्यों किसी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती । उनसे किसी तरह पिण्ड कुड़ाने की पड़ जाती है । आपका संकोच देखकर मैं समझ गया कि आपका यह पेशा नहीं है । आप विद्वान् हैं, धर्मत्वा हैं; पर किसी संकट में पड़े हुए हैं । इस तुच्छ मैट को स्वीकार कीजिए आर मुझे आशीर्वाद दीजिए ।

(७)

परिणतजी दवाएँ लेकर धर चले, तो हर्ष, उल्लास और विजय से उनका हृदय उछला पड़ता था । हनुमानजी भी सजीवन-बूटी लाकर इतने प्रसन्न न हुए

होंगे । ऐसा सच्चा आनन्द उन्हें कभी प्राप्त न हुआ था । उनके हृदय में इतने पवित्र भावों का सज्जार कभी न हुआ था ।

दिन बहुत याड़ा रह गया था । सूर्यदेव अविरल गति से पश्चिम की ओर दौड़ते चले जाते थे । क्या उन्हें भी किसी रोगी को दवा देनी थी ? वह बड़े बेग से दौड़ते हुए पर्वत की ओर में छिप गये ! पण्डितजी और भी ऊर्ती से पाँच बढ़ाने लगे, माना उन्होंने सूर्यदेव को पकड़ लेने की ठानी है ।

देखते-देखते आँधेरा छा गया । आकाश से दा-एक तारे दिलायी देने लगे । अभी दस मील की मंजिल बाकी थी । जिस तरह काली धय को सिर पर मँझाराते देखकर यहिणी दौँड़-दौँड़कर सुखावन समेटने लगती है, उसी भाँति लीलाधर ने भी दौँड़ना शुरू किया । उन्हें अकेले पड़ जाने का भय था, भय या आँधेरे में राह भूल जाने का । दाहने-बायें बस्तियाँ छूटती जाती थीं । पण्डितजी को ये गाँव इस समय बहुत ही सुहावने मालूम होते थे । कितने आनन्द से लोग अलाव के सामने बैठे ताप रहे हैं !

सहसा उन्हें एक कुत्ता दिलायी दिया । न-जाने किधर से आकर वह उनके सामने पगड़एड़ो पर चलने लगा । पण्डितजी चौंक पड़े; पर एक क्षण में उन्होंने कुत्ते का पहचान लिया । वह चूड़े चोधरी का कुत्ता माती था । वह गौव छोड़-कर आज इश्वर इन्हीं दूर कैंप आ ने कूला ? क्या वह जानता था कि पण्डितजी दवा लेकर आ रहे होंगे, रुहीं राखता भूल जायें ? कौन जानता है ? पण्डितजी ने एक बार माता कहकर पुकारा, तो कुत्ते ने दुम हिलायी; पर रुका नहीं । वह इससे अर्धकपारचय देकर समय नष्ट न करना चाहता था । पण्डितजी को ज्ञात हुआ कि इश्वर में साय हैं, वही मेरी रक्षा कर रहे हैं । अब उन्हें कुशल से घर पहुँचने का विश्वास हो गया ।

दस बजते-बजते पण्डितजी घर पहुँच गये ।

#

*

*

रोग ग्रान्तक न था; पर यश पण्डितजी को बदा था । एक सप्ताह के बाद तीनों रोगी चंगे हो गये । पण्डितजी की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गयी । उन्होंने यम-देवता से घोर सग्राम करके इन आदमियों को बचा लिया था । उन्होंने देवताओं पर भी विजय पा ली थी—असम्भव को सम्भव कर दिलाया था । वह

साक्षात् भगवान् थे । उनके दर्शनों के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे; किन्तु पंडितजी को अपनी कीर्ति से इतना आनन्द न होता था, जितना रोगियों को चलते-फिरते देखकर ।

चाँधीरी ने कहा -- महाराज, तुम साक्षात् भगवान् हो । तुम न आ जाते, तो हम न बचते ।

पंडितजी बोले — मैंने कुछ नहीं किया । यह सब ईश्वर की दया है ।

चाँधीरी — अब हम तुम्हें कभी न जाने देंगे । जाकर अपने बाल-बच्चों को भी ले आओ ।

पंडितजी — हाँ मैं भी यही सोन रहा हूँ । तुमको छोड़कर अब नहीं जा सकता ।

(८)

मुल्लाओं ने मैदान खाली पाकर आस-पास के देहांतों में खूब जोर बांध रखा था । गाँव-कंगाँव मुसलमान होते जाते थे । उधर हिन्दू-सभा ने सजाया खोंच लिया था । किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि इधर आये । लोग दूर बैठे हुए मुसलमानों पर गाला-बारूद चला रहे थे । इस हत्या का बदला कैसे लिया जाय, यही उनके सामने सबसे बड़ी समस्या थी । अधिकारियों के पास बार-बार प्रार्थना-पत्र भेजे जा रहे थे कि इस मामले को छान-बीन की जाय, और बार-बार यही जवाब मिलता था कि हत्याकारियों का पता नहीं चलता । उधर पंडितजी के स्मारक के लिए नन्दा भी जमा किया जा रहा था ।

मगर इस नयी ज्योति ने मुल्लाओं का रङ्ग फीका कर दिया । वहाँ एक ऐसे देवता का अवतार हुआ था, जो मुदों को जिला देता था, जो अपने भक्तों के कल्पणा के लिए अपने प्राणों के बलिदान कर सकता था । मुल्लाओं के यहाँ यह सिद्धि कहाँ, यह विभूति कहाँ, यह चमत्कार कहाँ ? इस उत्तरान्त उपकार के सामने जनत और अखबूत (भ्रातृ-भाव) की कोरी दलीलें कब ठहर सकती थीं ? पंडितजी अब वह अपने ब्राह्मणत्व पर शम्भङ्करनेवाले पंडितजी न थे । उन्होंने शूद्रों और भीलों का आदर करना सीख लिया था । उन्हें छाती से लगाते हुए अब पंडितजी को धूणा न होती थी । अपना घर छँपेरा पाकर ही ये इसलामी दीपक की ओर झुके थे । जब अपने घर में सूर्य का प्रकाश हो गया, तो इन्हें दूसरों के यहाँ जाने की क्या जरूरत थी । सनातन-धर्म की विजय हो गयी ।

गौवगांव में मन्दिर बनने लगे और शाम-सबेरे मन्दिरों से शंख और छटे की धनि मुनायी देने लगी। लोगों के आचरण आप-ही-आप सुधरने लगे। पंडितजी ने किसी को शुद्ध नहीं किया। उन्हें अब शुद्धि का नाम लेते शर्म आती थी—मैं भला इन्हें क्या शुद्ध करूँगा, पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ। ऐसी निर्मल, एवं पवित्र आत्माओं को शुद्धि के दांग से अपमानित नहीं कर सकता।

यह मन्त्र था, जो उन्होंने उन चाणडालों से सीखा था; और इसी के बल में वह अपने धर्म की रक्षा करने में सफल हुए थे।

पंडितजी अभी जीवित हैं; पर अब सपरिवार उसी प्रान्त में, उन्हीं भीलों के साथ रहते हैं!

कामना-तरु

एजा इन्द्रनाय क। देहान्त हो जाने के बाद कुँवर राजनाय को शत्रुओं ने चारों ओर से ऐसा दबाया, जिसे उन्हें अपने प्राण लेकर एक पुराने सेवक की शरण जाना पड़ा, जो एक छाटे-से गाँव का जागीरदार था। कुँवर स्वभाव ही से शान्ति-प्रिय, रासक, हँस-खेलकर समय काटनेवाले युवक थे। रणजीत की अपेक्षा छावत्व के हेत्र में अपना चमत्कार दिखाना उन्हें आधिक प्रिय था। रसिकजनों के साथ, किसी वृक्ष के नीचे बैठे हुए, काव्य-चन्त्र करने में उन्हें जो आनन्द मिलता था, वह शिकार या राज-दरबार में नहीं। इस पर्वत-मालाओं से विरोद्ध हुए गाँव में आकर उन्हें जिस शान्ति और आनन्द का अनुभव हुआ, उसके बदले में वह ऐसे-ऐसे कई राज्य-न्याय कर सकते थे। यह पर्वत-मालाओं की मनोहर छुटा, यह नेत्ररंजक हरियाली, यह जल-प्रवाह की मधुर वीणा, यह पक्षियों की माठी बालियाँ, यह मृग-शावकों की छलोंगें। यह बछड़ों की कुलेलें, यह ग्राम-नवासियों की बालोचित सरलता, यह रमणियों की संकोच-मय चपलता ! ये सभी बातें उनके लिए नयी थीं, पर इन सबों से बढ़कर जो वस्तु उनकी आकर्षित करती थी, वह जागीरदार की युवती कन्या चन्दा थी।

चन्दा घर का सारा काम-काज आप ही करती थी। उसको माता की गोद में सेलना न सीब ही न हुआ था। पिता की सेवा ही में रत रहती थी। उसका विवाह इसी भाल होनेवाला था, कि इसी बीच में कुँवरजी ने आकर उसके बीचन में नवीन भावनाओं और नवीन आशाओं को अंकुरित कर दिया। उसने अपने पति का जो चित्र मन में खीच रखा था, वही मा गे रूप धारण करके उसके समुख आ गया। कुँवर की आदर्श रमणी भी चन्दा ही के रूप में अवर्तारत हो गयी; लेकिन कुँवर समझते थे—मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ? चन्दा भी समझती थी—कहाँ यह और कहाँ मैं !

(२)

दोषहर का समय या और जेठ का महीना। खपैल का घर भट्टी की भौंति

तपने लगा। खस की टट्टियाँ और तहलानों में रहने वाले राजकुमार का चित्त गरमी से हतना बेचैन हुआ कि वह बाहर निकल आये और सामने के बाग में जाकर एक धने वृक्ष की छाँह में बैठ गये। सहसा उन्होंने देखा—चन्दा नदी से जल की गागर लिए चली आ रही है। नीचे जलती हुई रेत थी, ऊपर जलता हुआ पूर्व। लू से देह मुलती जाती थीं। कदाचित् इस समय प्यास से तड़पते हुए, आदमी की भी नदी तक जाने की हिम्मत न पड़ती। चन्दा क्यों पानी लेने गयी थी? घर में पानी भरा हुआ है। फिर इस समय वह क्यों पानी लेने निकली?

कुँवर दौड़कर उसके पास पहुँचे और उसके हाथ से गागर छीन लेने की चेष्टा करते हुए बोले—मुझे दे दो और भागकर छाँह में चली जाओ। इस समय पानी का क्या काम था?

चन्दा ने गागर न छोड़ी। सिर से खिलका हुआ अञ्चल सँभालकर बोली तुम इस समय कैसे आ गये? शायद मारे गरमी के अन्दर न रह सके?

कुँवर—मुझे दे दो, नहीं तो मैं छीन लूँगा।

चन्दा ने मुसकिराकर कहा—राजकुमारों का गागर लेकर चलना शोभा नहीं देता।

कुँवर ने गागर का मुँह पकड़कर कहा—इस अपराध का बहुत दंड सह लुभा हूँ। चन्दा, अब तो अपने को राजकुमार कहने में भी लजा आती है।

चन्दा—देखो, धूप में खुद हैरान होते हो और मुझे भी हैरान करते हो। गागर छाँड़ दो। सच कहती हूँ, पूजा का जल है।

कुँवर—क्या मेरे ले जाने से पूजा का जल अपवित्र हो जायगा?

चन्दा—अच्छा भाई, नहीं मानते, तो तुम्हीं ले चलो। हाँ, नहीं तो।

कुँवर गागर लेकर आगे-आगे चले। चन्दा पीछे हो ली। बगीचे में पहुँचे, तो चन्दा एक छाँटे-से पांधे के पास रुककर बोली—इसी देवता की पूजा करनी है, गागर रख दो। कुँवर ने आश्वर्य से पूछा—यहाँ कौन देवता है, चन्दा? मुझे तो नहीं नजर आता।

चन्दा ने पांधे को सींचते हुए कहा—यहीं तो मेरा देवता है।

पानी पाकर पौधे की मुरझायी हुई पत्तियाँ हरी हो गयी, मानो उनकी आँखें खुल गयी हैं।

कुँवर ने गृष्णा—यह पौधा क्या तुमने लगाया है, चन्दा ?

चन्दा ने पौधे को एक सीधी लकड़ी से बांधते हुए कहा—हाँ, उसी दिन तो, जब तुम यहाँ आये। यहाँ पहले मेरी गुड़ियों का घरौंदा था। मैंने गुड़ियों पर छाँह करने के लिए एक अमोला लगा दिया था। फिर मुझे इसकी याद नहीं रही। धर के काम-धन्धे में भूल गई। जिस दिन तुम यहाँ आये, मुझे न-जाने क्यों इस पौधे की याद आ गयी। मैंने आकर देखा, तो वह सख गया था। मैंने तुरन्त पानी लाकर इसे सीचा, तो कुछ कुछ ताजा होने लगा। तब से इसे मींचती हूँ। देखो, कितना हरा-भरा हो गया है !

यह कहते-कहते उसने सिर उठाकर कुँवर की आरताकर्ते हुए कहा—ओर सब काम भूल जाऊँ; पर इस पौधे को पानी देना नहीं भूलती। तुम्हीं इसके प्राण-दाता हो। तुम्हीं ने आकर इसे जिजा दिया, नहीं तो बेचारा सूख गया होता। यह तुम्हारे शुभागमन का स्मृति-चिन्ह है। जरा इसे देखो। मालूम होता है, हँस रहा है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह मुझसे बोलता है। सब कहती हूँ, कभी यह रांता है, कभी हँसता है, कभी रुठता है; आज तुम्हारा लाया हुआ पानी पाकर यह फूला नहीं समाता। एक-एक पता तुम्हें धन्यवाद दे रहा है।

कुँवर को ऐसा जान पड़ा, मानों वह पौधा कोई नन्हा-सा कीड़ाशील बालक है। जैसे चुम्बन से प्रसन्न होकर बालक गोद में चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला देता है, उसी भाँति यह पौधा भी हाथ फैलाये जान पड़ा। उसके एक-एक अणु में चन्दा का प्रेम भलक रहा था।

चन्दा के धर में लेती के सभी आंजार थे। कुँवर एक फावड़ा उठा लाये और पौधे का एक थाल बनाकर चारों ओर ऊँची मँड उठा दी। फिर खुरपी लेकर अन्दर की मिट्टी को गांड दिया। पांधा आंर भी लहलहा उठा।

चन्दा बोली—कुछ सुनते हो, क्या कह रहा है ?

कुँवर ने मुसारिकाकर कहा—हाँ, कहता है—आम्माँ की गोद में बैठँगा।

चन्दा—नहीं, कह रहा है, इतना प्रेम करके फर भूल न जाना।

(३)

मगर कुँवर को अभी राज-पुत्र होने का दंड भोगना बाकी था। शत्रुघ्नी

को न-जाने कैसे उनकी टोह मिल गयी। इधर तो हितचिन्तकों के आग्रह से विवश होकर बूढ़ा कुवेरसिंह चन्दा और कुँवर के विवाह की तैयारियाँ कर रहा था, उधर शत्रुओं का एक दल सिर पर आ पहुँचा। कुँवर ने उस पौध के आसन्यास फूल-पते लगाकर एक फुलवाली-सी बना दी थी। पांधे को सींचना अब उनका काम था। प्रातःकाल वह कन्धे पर कौंवर रखे नदी से पानी ला रहे थे, कि दम-बारह आदमियाँ ने उन्हें रास्ते में घेर लिया। कुवेरसिंह तलवार लेकर दौड़ा; लोकन शत्रुओं ने उसे मार गिराया। अकेला अख्लाहीन कुँवर क्या करता? कन्धे पर कौंवर रखे हुए बोला—अब क्यों मेरे पीछे पड़े हो, भाई? मैंने तो सब-कुछ छोड़ दिया।

सरदार बोला—हमें आपको पकड़ ले जाने का हुक्म है।

‘तुम्हारा स्वामी मुझे इस दशा में भी नहीं देख सकता? लैर, अगर धर्म समझो तो कुवेरसिंह की तलवार मुझे दे दा। अपनी स्वाधानता के लिए लड़ कर प्राण दूँ।’

इसका उत्तर यही मिला कि सिपाहियाँ ने कुँवर को पकड़कर मुश्कें कस दी आर उँहें एक पांडे पर बड़ाकर घांड़ को भगा दिया। कौंवर वहाँ पड़ी रह गया।

उसा समय चन्दा धर से निकली। देखा—कौंवर पड़ी हुई है आर कुँवर को लाग घांड़ पर बिठाये लिए जा रहे हैं। चोट खाये हुये पढ़ी को माँति वह कई कदम दाढ़ी, किर भिर पड़ी। उसकी आँखों में अंधेया छु गया।

सहसा उसको दृष्टि पिता की लाश पर पड़ी। वह घबराकर न्डा अर लाश के पास जा पहुँचा। कुवर अभी मरा न था। प्राण आँखों में अटक हुए थे।

चन्दा का देखते ही क्षीण स्वर में बोला—बेटा...कुँवर! इसके आगे वह कुछ न कह सका। प्राण नेकल गये; पर इस शब्द—‘कुँवर’—ने उसका आशय प्रकट कर दिया।

(४)

बीस वर्ष बीत गये! कुँवर कैद से न छूट सके।

यह एक पहाड़ी किला था। जहाँ तक निगाह जाती, पहाड़ियाँ ही नजर आतीं। किले में उन्हें कोई कष्ट न था। नौकर-चाकर, भोजन-बज्ज, सैर-शिकार,

किसी बात की कमी न थी। पर, उस वियोगाग्नि को कौन शान्त करता, जो नित्य कुँवर के हृदय में जला करती थी। जीवन में अब उनके लिए कोई आशा न थी, कोई प्रकाश न था। अगर कोई इच्छा थी, तो यही कि एक बार उस प्रेमतीर्थ की यात्रा कर ले, जहाँ उन्हें वह सब कुछ मिला, जो मनुष्य को मिल सकता है। हाँ, उनके मन में एकमात्र यही अभिलाषा थी कि उस पर्वत स्मृतियों से रजित भूमि के दर्शन करके जीवन का उसी नदी के तट पर अन्त कर दें। वही नदी का किनारा, वही बृक्षों का कुञ्ज, वही चन्दा का छोया-सा मुन्दर घर उसकी आँखों में फिरा करता; और वह पौधा जिसे उन दोनोंने मिलकर सीचा था, उसमें तो मानो उसके प्राण ही बसते थे। क्या वह दिन भी आयेगा, जब वह उस पौधे को हरी-हरी पत्तियों से लदा हुआ देखेगा? कौन जाने, वह अब है भी या सूख गया? कौन अब उसको सीचता होगा? चन्दा इतने दिनों अविवाहित थोड़े ही बैठी होगी? ऐसा संभव भी तो नहीं। उसे अब मेरी सुख भी न होगा। हाँ, शायद कभी अपने घर की याद सींच लानी हो, तो पौधे को देखकर उसे मेरी याद आ जाती हो। मुझ-जैसे अभागे के लिए इसे अधिक वह और कर ही क्या सकती है? उस भूमि को एक बार देखने के लिए वह अपना जीवन दे सकता था; पर यह अभिलाषा न पूरी होती थी।

आह! एक युग बीत गया, शांक और नैराश्य ने उठती जवानी का कुनल दिया। न आँखों में ज्योति रही, न पैरों में शक्ति। जीवन क्या था, एक दुखदायी स्वप्न था। उस सत्रन अन्धकार में उसे कुछ न सूझता था। बस, जीवन का आधार एक अभिलाषा थी, एक सुखद स्वप्न, जो जीवन में न-जाने कब उसने देखा था। एक बार फिर वही स्वप्न देखना चाहता था। फिर उसकी अभिलाषाओं का अन्त हो जायगा, उसे कोई इच्छा न रहेगी। सारा अनन्त भविष्य, सारी अनन्त चिन्ताएँ, इसी एक स्वप्न में लीन हो जाती थीं।

उसके रक्खकों को अब उसको आर से कोई शंका न थी। उन्हें उसपर दया आती थी। रात को पहरे पर केवल कोई एक आदमी रह जाता था और लोग मीठी नींद सोते थे। कुँवर भाग जा सकता है, इसकी कोई सम्भावना, कोई शंका न थी। यहाँ तक कि एक दिन वह सिपाही भी निश्चंक होकर बन्दूक लिए लेट रहा। निद्रा किसी हिस्क पशु को भाँति ताक लगाये बैठी थी। लेटते

ही दूट पड़ी । कुँवर ने सिपाही की नाक की आवाज मुनी । उनका हृदय दड़े वेग से उछलने लगा । यह अवसर आज कितने दिनों के बाद मिला था । वह उठे; मगर पाँव धर-थर कपूँ पर हो रहे थे । बरामदे के नीचे उतरने का साहस न हो सका । कहीं इसकी नींद खुल गयी तो ? हिंसा उनकी सहायता कर सकती थी । सिपाही की बगल में उसकी तलबार पड़ी थी; पर प्रेम की हिंसा से और है । कुँवर ने सिपाही को जगा दिया । वह चौंककर उठ बैठा । रहा-सहा शंसय भी उसके दिल में नकल गया । दूसरी बार जो साथा, तो खरटि लेने लगा ।

प्रातःकाल जब उसकी निद्रा टूटी, तो उसने लपककर कुँवर के कमर में भाँका । कुँवर का पता न था ।

कुँवर इस समय हवा के घोड़े पर सवार, कल्पना की द्रुतगति से, भागा जा रहा था—उस स्थान को, जहाँ उसने सुख-स्वग्रह देखा था ।

कितों में चारों ओर तलाश हुई, नायक ने सवार दौँड़ाये; पर कहीं पता न चला ।

(५)

पहाड़ी रास्तों का काठना कर्तन, उस पर अ-जातवास की कैद, मृत्यु के दूत पीछे लगे हुए, जिसमें बचना मूर्शिकल । कुँवर को कामना-तीर्थ में महीनों लग गये । जब यात्रा पूरी हुई, तो कुँवर में एक कामना के सिवा और कुछ शेष न था । दिन-भर की काठन यात्रा के बाद जब वह उस स्थान पर पहुँचे, तो संध्या हो गयी थी । वहाँ बस्ती का नाम भी न था । दो-चार दूटे-फूटे भोपड़े उस बस्ती के चढ़-त्वरण से रोप रह गये थे । वह भोपड़ा, जिसमें कभी प्रेम का प्रकाश या, जिसके नीने उन्होंने जीवन के सुखमय दिन काटे थे, जो उनकी कामनाओं वा आगार ओर उपासना का मर्मन्दर था, अब उनकी अभिलाप्याश्रों की भाँति भग्न हो गया था । भोपड़े की भग्नावस्था मूक भाषा में अपनी करुण-कथा सुना रही थी । कुँवर उसे देखते ही ‘चन्दा-चन्दा !’ पुकारते हुए दौड़े, उन्होंने उस रज को मांथ पर मला, मानों किसी देवता की विभूति हो, और उसकी दूटी हुई दीवारों से चिमटकर बड़ी देर तक रोते रहे । हाय रे अभिलाषा ! वह रोने ही के लिए

इतनी दूर से आये थे ! रोने की अभिलाषा इतने दिनों से उन्हें विकल्प कर रही थी । पर इस रुदन में कितना स्वर्गीय आनन्द था ! कश नम्रता संसार का मुख इन आँसुओं को तुलना कर सकता था ?

तब वह झोपड़े से निकले । सामने मैदान में एक बृहू हरे-हरे नवीन पल्लवों को गोद में लिये मानो उनका स्वागत करने लगा था । वह वह पौधा है, जिसे आज से बीस वर्ष पहले दोनों ने आरंपित किया था । कुँवर उनमन की भाँति दौड़े और जाकर उस बृहू से लिपट गये, मानों कोई पिता अपने मातृदीन पुत्र को छाती लगाये हुए हां । यह उनोंप्रेम का निशानी है, उसी अहङ्कार प्रेम की, जो इतने दिनों के बाद आज इतना विशाल है गशा है । कुँवर का दृश्य ऐसा हा उठा, मानो इस बृहू को अपने अन्दर रख लेगा । जिसमें उसे हवा का भाँका भी न लगे । उसके एक-एक पल्लव पर चन्दा की सृष्टि बैठा हुए थे । परिणीयों का इतना रम्य संगीत कश कभी उन्होंने नुना था ? उनके हाथों में दमन था, सारी देह भूख-प्यास और थकान से शिविल हा रही था । पर, वह उस बृहू पर चढ़ गया, इतनी कुरां से चढ़े कि बन्दर भा न बढ़ा । सरठे ऊँचों कुनगी पर बैठकर उन्होंने चारों ओर गर्व-पूर्ण दृष्टि डाली । यही उनको कामनाओं का स्वर्ग था । साया दृश्य चन्दामय हा रहा था । दूर की नीली पर्वत-धेणियों पर चन्दा बैठी गा रही थी । आकाश में नीरने वाली लालिमामयी नोकाओं पर चन्दा ही उड़ो जाती थी । सूर्य को श्वेत-पीत प्रकाश की रेखा ग्रा पर चन्दा ही बैठी हूँस रही थी । कुँवर के मन में आपा, पक्षी होता तो इन्हीं दालियों पर बैठा हुआ जीवन के दिन पूरे करता ।

जब अधेरा हा गया, तो कुँवर नीचे उतर आंर उसी बृहू के नांच याड़ी-सी भूमि भाङकर पत्तियों की शथा बनायी आंर लेटे । यही उनके जीवन का स्वर्ण-स्वप्न था, आह ! यही वैराग्य ! अब वह इस बृहू की शरण छोड़कर कहीं न जावेंगे, दिल्ला के तख्त के लिए माँ वह इस आश्रम में न छाँड़ेंगे ।

(६)

उसी स्तिंघर्ष, अमल चौंदनी में सहसा एक पक्षी आकर उस बृहू पर बैठा, और दर्द में छूटे हुए स्वरों में गाने लगा । ऐसा जान पड़ा, मानो वह बृहू सिर

बुन रहा है ! वह नीरव रात्रि उस वेदनामय संगीत से हिल उठी, कुँवर का हृदय इस तरह ऐंटने लगा, मानो वह फट जायगा । उस स्वर में कशणा और वियोग के तीर-से भरे हुए थे । आह पक्षी ! तेरा भी जोड़ा अवश्य बिछुड़ गया है । नहीं तो तेरे राग में इतनी व्यथा, इतना विशाद, इतना रुदन कहाँ से आता ! कुँवर के हृदय के टुकड़े हुए जाते थे, एक-एक स्वर तीर की भाँति दिल को छेदे डालता था । वह बैठे न रह सके । उठकर एक आत्म-विस्मृति की दशा में दौड़े हुए झोपड़े में गये; वहाँ से फिर बृह्ण के नीचे आये । उस पक्षी को कैसे पायें ? कहीं दिखायी नहीं देता ।

पक्षी का गाना बन्द हुआ, तो कुँवर को नींद आ गयी । उन्हें स्वप्न में ऐसा जाना पड़ा कि वही पक्षी उनके समीप आया । कुँवर ने ध्यान से देखा, तो वह पक्षी न था, चन्दा थी ; हाँ, प्रत्यक्ष चन्दा थी ।

कुँवर ने पूछा—चन्दा, यह पक्षी यहाँ कहाँ ?

चन्दा ने कहा—मैं ही तो वह पक्षी हूँ ।

कुँवर—तुम पक्षी हो ! क्या तुम्हीं गा रही थीं ?

चन्दा—हाँ प्रियतम, मैं ही गा रही थीं । इसी तरह रोते-रोते एक युग्म बीत गया ।

कुँवर—तुम्हारा घोसला कहाँ है ?

चन्दा—उसी झोपड़े में, जहाँ तुम्हारी खाट थी । उसी खाट के बान से मैंने अपना घोसला बनाया है ।

कुँवर—आँ तुम्हारा जोड़ा कहाँ है ?

चन्दा—मैं अकेली हूँ । चन्दा को अपने प्रियतम के स्मरण करने में, उसके लिए रोने में जो सुख है, वह जोड़े में नहीं ; मैं इसी तरह अकेली रहूँगी और अकेली मरूँगी ।

कुँवर—मैं क्या पक्षी नहीं हो सकता ?

चन्दा चली गयी । कुँवर की नींद खुल गयी । ऊषा की लालिमा आकाश पर छायी हुई थी और वह चिरांदिया कुँवर की शय्या के समीप एक डाल पर बैठी चहक रही थी । अब उस संगीत में कशणा न थी, विलाप न था ; उसमें

आनन्द था, चापल्य था, सारल्य था ; वह वियोग का करण-कन्दन नहीं, मिलन का मधुर संगीत था ।

कुँवर सोचने लगे—इस स्वप्न का क्या रहस्य है ?

(३)

कुँवर ने शाया से उठते ही एक भाड़ बनायी और भागड़ को साफ करने लगे । उनके जीते-जी इसकी यह भग्न दशा नहीं रह सकती । वह इसकी दीवारें ठठायेंगे, इस पर क्षयर ढालेंगे, इसे लोपेंगे । इसमें उनकी चब्दा की सृष्टि बास करती है । भागड़ के एक कोने में वह काँवर रखी हुई थी, जिसपर पानी ला-लाकर वह इस दृक्ष को सीचते थे । उन्होंने काँवर उठा ली और पानी लाने चले । दो दिन से कुछ भोजन न किया था । सात को भूख लगी हुई थी; पर इस समय भोजन की बिलकुल इच्छा न थी । देह में एक अद्भुत सूक्ष्मिका अनुभव होता था । उन्होंने नदी से पानी ला-लाकर मिट्टी भिगोना शुरू किया । दौड़े जाते थे और दौड़े आते थे । इतनी शार्क उनमें कभी न थी ।

एक ही दिन में इतनी दोबार उठ गया, जितनी चार मजदूर भी न उठा सकते थे । और कितनी सीधा, चिकनी दीवार थी कि कारीगर भी देखकर लजित हो जाता ! प्रेम की शक्ति अपार है !

सन्ध्या हो गयी । चिकियां ने बसेरा लिया । दृक्षां ने भो आँखें बन्द की; भगर कुँवर को आराम कहों ? तारां के मलिन प्रकाश में मिट्टी के रहे रखे जा रहे थे । हाय रे कामना ! क्या तू इस बेचारे के प्राण ही लेकर छाड़ेगी ?

दृक्ष पर पक्की का मधुर स्वर सुनायी दिया । कुँवर के हाय से घड़ा क्लूट पड़ा । हाय और पैरों में मिट्टी लपेटकर वह दृक्ष के नीचं जाकर बैठ गये । उस स्वर में कितना लालित्य था, कितना उल्लास, कितनी ऊँचिति ! मानव-संगीत इसके सामने बेनुरा अलाप था । उसमें यह जागति, यह अमृत, यह जीवन कहों ? संगीत के आनन्द में विस्मृति है; पर वह विस्मृति कितनी सृष्टिमय होती है, अतीत को जीवन और प्रकाश से रखित करके प्रत्यक्ष कर देने की शक्ति संगीत के सिवा और कहों है ? कुँवर के हृदय-नेंवों के सामने वह दृश्य खड़ा हुआ जब चन्दा इसी पौधे को नदी से जल ला-लाकर संचती थी । हाय, क्या ये दिन फिर आ सकते हैं !

सहसा एक बयोही आकर लड़ा हो गया और कुँवर को देखकर वह प्रश्न करने लगा, जो साधारणतः दो अपरिचित प्राणियों में हुआ करते हैं—कौन हो, कहाँ से आते हों, कहाँ जाओगे ? पहले वह भी इसी गाँव में रहता था; पर जब गाँव उजड़ गया, तो समीप के एक दूसरे गाँव में जा बसा था। अब भी उसके खेत यहाँ थे। रात को जंगली पशुओं से अपने खेतों को रद्दा करने के लिए वह यहीं आकर सोता था।

कुँवर ने पूछा—तुम्हें मालूम है, इस गाँव में एक कुवेरसिंह आकुर रहते थे ?

किसान ने बड़ी उत्सुकता से कहा—हाँहाँ, भाई, जानता क्यों नहीं ! बेचारे यहीं तो मारे गये। तुमसे भी क्या जान-पहचान थी ?

कुँवर—हाँ, उन दिनों कभी-कभी आशा करता था। मैं भी राजा की सेवा में नौकर था। उनके घर में आंतर कोइ न था ?

किसान—अरे भाई, कुछ न पूछो, बड़ी कशण-कथा है। उसकी छोटी तो पहले ही मर चुकी थी। केवल लड़की बच रही थी। आह ! कैसी मुशीला, कैसी सुधङ वह लड़की थी ! उसे देखकर आँखों में ज्योत आ जाती थी। बिलकुल स्वर्ग की देवी जान पढ़ती थी। जब कुवेरसिंह जोता था, तभी कुँवर राजनाथ यहाँ भागकर आये थे और उसके यहाँ रहे थे, उस लड़की की कुँवर से कहीं बातचीत हो गयी। जब कुँवर को शत्रुघ्नि ने पकड़ लिया, तो चन्दा घर में अश्वली रह गयी। गाँव वालों ने बहुत चाहा कि उसका विवाह हो जाय। उसके लिए वरों का तोड़ा न था भाई ! ऐसा क्यान था, जो उसे पाकर अपने को धन्य न मानता; पर वह किसी से विवाह करने पर राजी न हुई। यह पेड़, जो तुम देख रहे हों, तब छोटांसा पांधा था। इसके आस-पास फूलों की कई आंर क्यांरयाँ थीं। इन्हीं को गोँड़ने, निराने, सीचने में उसका दिन कटता था। बस, यही कहती थी कि हमारे कुँवर साहब आते होंगे।

कुँवर की आँखों से आँमूँ की वर्षा होने लगी। मुसाफिर ने जरा दम लेकर कहा—दूसरे दिन शुलती जाती थी। तुम्हें विश्वास न आयेगा भाई, उसने स साल इसी तरह काट दिये। इतनी दुर्बल हो गयी थी कि पहचानी न जाती थी; पर अब भी उसे कुँवर साहब के आने की आशा बनी हुई थी। आखिर एक दिन इसी बृक्ष के नीचे उसकी लाश मिली। ऐसा प्रेम कौन करेगा, भाई ?

कुँवर न-जाने मरे कि जिये, कभी उन्हें इस विरहिणी की गाद भी आती है कि नहीं; पर इसने तो प्रेम को ऐसा निभाया जैसा चाहिए।

कुँवर को ऐसा जान पड़ा, मानो हृदय फटा जा रहा है। वह कलेजा याम कर बैठ गये।

मुसारिंग के हाथ में एक सुलगता हुआ उपला था। उसने चिलम भरी और दो-चार दम लगाकर बोला—उसके मरने के बाद यह पर गिर गया। गाँव पहले ही उजाड़ था। अब तो आर भी सुनसान हो गया। दो-चार आसामी यहाँ आ चैठते थे। अब तो चिंडिया का पून भी यहाँ नहीं आता। उसके मरने के कई महीने के बाद यही चिंडिया इस पेड़ पर बोलती हुई सुनायी दी। तब से बराबर इसे यहाँ बालते सुनता हूँ! रात का सभी चिंडियाँ सो जाती हैं; पर यह रात-भर बोलती रहती है। उसका जोड़ा कभी नहीं दिखायी दिया। बस, फुटैल है। दिन भर उसी भोपड़े में पड़ी रहती है। रात का इस पेड़ पर आकर बैठती है; मगर इस सभव इसके गाने में कुछ आंग ही बात है, नहीं तो सुनकर रोना आता है। ऐसा जान पड़ता है, मानो कोई कलेजे को मसोस रहा है। मैं तो कभी-कभी पड़े-पड़े रो दिया करता हूँ। सब लोग कहते हैं कि यह वही चन्दा है। अब भी कुँवर के वियोग में विलाप कर रही है। मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है। आज न-जाने क्यों मगन है?

किसान तम्बाकू पीकर सो गया। कुँवर कुछ देर तक बोये हुए से बढ़े रहे। फिर धीरे से बाले—चन्दा, क्या मन्त्रमुन्त्रनुम्ही हो? मेरे पास क्यों नहीं आती?

एक नृणां में चिंडिया आकर उनके हाथ पर बैठ गयी। चन्द्रमा के प्रकाश में कुँवर ने चिंडिया को देखा। ऐसा जान पड़ा, माना उनकी आँखें खुल गयी हों, मानो आँखों के सामने से कोई आवरण हट गया हो। पह्नी के रूप में भी चन्दा की मुखाकृति अद्वितीयी।

दूसरे दिन किसान सो कर उठा, तो कुँवर की लाश पड़ी हुई थी।

(८)

कुँवर अब नहीं है; किन्तु उनके भोपड़े के दीवारें बन गयी हैं, ऊपर फूस का नया क्षेत्र पड़ गया है, और भोपड़े के द्वार पर फूलों की कई क्यारियाँ लगी हुई हैं। गाँव के किसान इससे अधिक और क्या कर सकते थे?

उस झोपड़े में श्रव पन्नियों के एक जोड़े ने अपना घोसला बनाया है। दोनों साथ-साथ दाने-चारे की खोज में जाते हैं, साथ-साथ आते हैं, रात को दोनों उसी वृक्ष की डाल पर बैठे दिखाई देते हैं। उनका सुरभ्य संगीत रात की नीरवता में दूर तक मुनायी देता है। बन के जीव-जन्म वह स्वर्गीय गान मुनकर मुम्थ हो जाते हैं।

यह पन्नियों का जोड़ा कुँवर श्रौर चन्दा का जोड़ा है, इसमें किसी को सन्देह नहीं है।

एक बार एक व्याध ने इन पन्नियों को कँसाना चाहा; पर गौव ने उसे मारकर भगा दिया।

सती

दो शताब्दियों से अधिक बीत गये हैं; पर चिन्तादेवी का नाम चला जाता है। बुन्देलखण्ड के एक बीहड़ स्थान में आज भी मंगलवार को सहजों स्त्री-पुरुष चिन्तादेवी की पूजा करने आते हैं। उस दिन यह निर्जन स्थान सोहाने गीतां से गौंज उठता है, टीले और टोकरे रमणियों के रंग-बिरंगे बज्जां से मुशोभित हा जाते हैं। देवी का मन्दिर एक बहुत ऊँचे टीले पर बना हुआ है। उसके कलश पर लहरानी हुई लाल पताका बहुत दूर से दिखाई देती है। मन्दिर इतना छोटा है कि उसमें मुश्किल से एक साथ दो आदमी समा सकते हैं। भीतर कोई प्रतिमा नहीं है, केवल एक छांगी-सी बेदी बनी हुई है। नीचे से मन्दिर तक पथर का जीना है। भीड़-भाड़ में धक्का लाकर कोई नीचे न गिर पड़े, इसालए जीने की दीवार दानों तरफ बनी हुई है। यहां चिन्तादेवी सती हुई थीं; पर लोकरीत के अनुसार वह अपने मृत-पति के साथ चिता पर नहीं बैठी थीं। उनका पति हाथ जोड़े सामने लड़ा था; पर वह उसको ओर आँख उठाकर भी न देखती थीं। वह पति के शरीर के साथ नहीं, उसको आत्मा के साथ सती हुई। उस चिता पर पति का शरीर न था, उसको मर्यादा भस्मीभूत हो रही थी।

(२)

यमुना-नदी पर काली एक छोटा-सा नगर है। चिन्ता उसी नगर के एक वीर बुन्देले की कम्पा थी। उसकी माता उसकी बाल्यावस्था में ही परलोक सिधार चुकी थीं। उसके पालन-पोषण का भार पिता पर पड़ा। वह संग्राम का समय था, योद्धाओं को कमर खोलने की भी कुरसत न मिलती थी, वे योड़े की पीठ पर भोजन करते और जीन ही पर भवकियाँ ले लेते थे। चिन्ता का बाल्य-काल पिता के साथ समर-भूमि में कथा। बाप उसे किसी खोह में या वृक्ष की आँख में छिपकर मैदान में चला जाता। चिन्ता निशंक भाव से बैठी हुई मिट्टी के किले बनाती और बिगाहती। उसके घरींदे थे, उसकी गुड़ियाँ ओढ़नी

न आँढ़ती थीं। वह सिपाहियों के गुड्डे बनाती और उन्हें रण-द्वेष में खड़ा करती थी। कभी-कभी उसका पिता संध्या-समय भी न लौटता; पर चिन्ता को भय कूँठ तक न गया था। निर्जन स्थान में भूखी-प्यासी रात-रात भर-बैठी रह जाती। उसने नेवले और सियार की कहानियाँ कभी न सुनी थीं। बीरों के आत्मोभर्ग की कहानियाँ, और वह भी योद्धाओं के मुँह से सुन-सुनकर वह आदर्शवादी बन गयी थी।

एक बार तीन दिन तक चिन्ता को अपने पिता की खबर न मिली। वह एक पहाड़ी की खाल में बैठी मन-ही-मन एक ऐसा किला बना रही थी, जिसे शत्रु किसी भाँति जान न सके। दिन-भर वह उसी किले का नकशा सोचती और रात को उसी किले का भवप्रदेवती। तीसरे दिन संध्या-समय उसके पिता के कड़ माधियों ने आकर उसके सामने रोना शुरू किया। चिन्ता ने विस्मित होकर पूछा—दादाजी कहाँ है? तुम लोग क्यों रोते हो?

किसी ने इसका उत्तर न दिया। वे जोर से धाँड़ मार-मारकर रोने लगे। चिन्ता समझ गयी कि उसके पिता ने बोर-गति पायी। उस तेरह वर्ष-की बालिका की आँखों में आँगू की एक कूँद भी न गिरी, मुख जरा भी मर्जिन न हुआ, एक आह भी न निकला। हँसकर बोली—अगर उन्होंने बीर-गति पायी, तो तुम लोग रोते क्यों हो? योद्धाओं के लिए इससे बढ़कर और कौन मर्यादा हो सकती है? इससे बढ़कर उनकी वीरता का और क्या पुरस्कार मिल सकता है? यह रोने का नहीं, आनन्द मनाने का अवसर है।

एक सिपाही ने चिन्तित स्वर में कहा—हमें तुम्हारी चिन्ता है। तुब अब कहाँ रहांगी?

चिन्ता ने गंभीरता से कहा—इसकी तुम कुछु चिन्ता न करो, दादा! मैं अपने बाप की बेटी हूँ। जो कुछु उन्होंने किया, वही मैं भी करूँगी। अपनी मातृ-भूमि को शत्रुओं के पंजे से छुड़ाने में उन्होंने प्राण दे दिये। मेरे सामने भी वही आदर्श है। जाकर अपने आदमियों को सँभालिए। मेरे लिए एक घोड़ा और हथियारों का प्रबन्ध कर दीजिए। ईश्वर ने चाहा, तो आप लोग मुझे किसी से पीछे न पायेंगे, लेकिन यदि मुझे पीछे हटते देखना, तो तलबार के

एक हाथ से इस जीवन का अन्त कर देना । यही मेरी आपसे विनय है । जाइये, अब विलम्ब न कीजिए ।

सिपाहियों को चिन्ता के ये वीर-वचन सुनकर कुछ भी आश्वय नहीं हुआ । हाँ, उन्हें यह संदेह अश्य हुआ कि क्या यह कामल बालोंका अपने सकल्य पर ढढ़ रह सकेगी ?

(३)

पौंच वर्ष बीमा गये । सगरत प्रान्त में चिन्ता देवी की धाक बैठ गयी । शत्रुओं के कदम उड़ गये । वह विजय की मजोब मूर्ति थी । उस तीर और गोलियों के मामने निश्शक स्वडे देवकर भिपाहियों का उत्तेजना मिलती रहती थी । उसके सामने वे कैसे कदम पीछे हटायें ? कोमलोंगी युवर्णी आगे बढ़े, तो कौन पुरुष कदम पीछे हटायेगा ? तुन्दसियों के सम्मुख योद्धाओं की वीरता अजेय हो जाती है । रमणों के वचन-बाहु योद्धाओं के लिये आनन्दपर्ण के गुम संदेश हैं । उसकी एक चित्रवन कायरों में भी पुरुषन्य प्रवाहेत कर देती है । चिन्ता को लुपेन-कोर्ट ने भनत्तले सूर्याशा का बारां और में खांच-खांचकर उसकी मेना को भजा दिया — जानपर त्वेतनेवा ते भौंरि नारा और से आ-आकर इस फूल पर मँडगाने लगे ।

इन्हीं योद्धाओं में रत्नसिंह नाम का युवक राजपूत भी था ।

यां तो चिन्ता के मैनिका में भर्मी तलगार के धनी थे : बात पर जान देते वाले, उसके इसारे पर आग में कृदने वाले, उसकी आशा पाकर एक बार आकाश के तारं तोड़ लाने को भी चल पड़ते ; किन्तु रत्नसिंह सबन थड़ा हुआ था । चिन्ता भाँहद्वय में उसमें प्रेम करना थी । रत्नसिंह अन्य वीरों की भाँति अक्षवड़, मुँहफट या प्रभंडी न था । और लोग अपनी-अपनी कीर्ति को खूब बढ़ा-बढ़ाकर बयान करते, आनंद-प्रशसा करते हुए, उनकी जबान न रुकती थी । वे जो कुछ कहते, चिन्ता को दखाने के लिये । उनका ध्येय अपना कर्तव्य न था, चिन्ता थी । रत्नसिंह जो कुछ करता, शान्त भाव से । अपनी प्रशंसा करना तो दूर रहा, वह चाहे कोई शेर ही क्यों न मार आये, उसकी चर्चा तक न करता । उसकी विनयशीलता और नम्रता, संकोच की सीमा से भिज गयी थी । औरों के प्रेम में विलास था; पर रत्नसिंह के प्रेम में त्याग और तप । और लोग मीठी नींद

सेते थे; पर रत्नसिंह तारे गिन-गिनकर रात काढता था और सब अपने दिल में समझते थे कि चिन्ता मेरी हाँगी—कंवल रत्नसिंह निराश था, और इसलिये उसे किसी से न देख था, न राग। ओरों को चिन्ता के सामने चहकते देखकर उसे उनकी बाक्पटुता पर आश्रम होता, प्रतिदूष उसका निराशाभकार और भी घना हो जाता था। कभी-कभी वह अपने बोदेपन पर झुँभला उठता—क्यों ईश्वर ने उसे उन गुणों से बचाया, जो रमणियों के चित्त को मोहित करते हैं? उसे कान पूछेगा? उसकी मनोव्ययों को कौन जानता है? पर वह मन में झुँभलाकर रह जाता था। दिखावे की उसमें सामर्थ्य ही न थी।

आधी से अधिक रात बीत चुकी थी। चिन्ता अपने खेमे में विश्राम कर रही थी। सैनिकगण भी कड़ी मजिल मारने के बाद कुछ खापीकर गाफिल पढ़े हुये थे। आगे एक घना जंगल था। जंगल के उस पार शत्रुओं का एक दल डेरा डाले पड़ा था। चिन्ता उसके आने की खबर पाकर पाकर भागाभाग चली आ रही थी। उसने प्रातःकाल शत्रुओं पर धावा करने का निश्चय कर लिया था। उस विश्वास था कि शत्रुओं को मेरे आने की खबर न होगी; किन्तु यह उसका भ्रम था। उसी की भेना का एक आदमी शत्रुओं से मिला हुआ था। यहाँ की खबरं वहाँ नित्य पहुँचती रहनी थी। उन्होंने चिन्ता से निश्चिन्त होने के लिए एक पड़्यन्त्र रच रखा था—उसको गुप्त हत्या करने के लिए तीन साहसी सिपाहियों का नियुक्त कर दिया था। वे तीनों हिंस्य पशुओं की भाँति दबे-पाँव जङ्गल को पार करके आये और बृहनों की आँड़ी में खड़े होकर सोचने लगे कि चिन्ता का खेमा कान-सा है। सारी खेना बेखबर सो रही थी, इससे उन्हें अपने कार्य की सिद्धि में लेष-मात्र सन्देह न था। वे बृहनों की आँड़ी से निकले, और जमीन पर मगर की तरह रेंगते हुए चिन्ता के खेमे की ओर चले।

सारी खेना बेखबर सोती थी, पहरे के सिपाही यक्कर नूर हो जाने के कारण निद्रा में मग्न हो गये थे। कंवल एक प्राणी खेमे के पोछे मारे ठगड़ के सिकुड़ा हुआ बैठा था। यह रत्नसिंह था। आज उसने यह कोई नयी बात न की थी। पड़ावों में उसकी रातें इसी भाँति चिन्ता के खेमे के पोछे बैठे-बैठे कट्टी थीं। घातकों की आहट पाकर उसने तलवार निकाल ली, और चौंककर उठ खड़ा हुआ। देखा—तीन आदमी झुके हुए चल आ रहे हैं। अब क्या करे? अगर शोर

मनाता है, तो सेना में खलबली पड़ जाय, और अँधेरे में लोग एक दूसरे पर बार करके आपस ही में कट मरें। इधर अकेले तीन जवानों से भिज्ने में प्राणों का भय। अधिक सोचने का मौका न था। उसमें योद्धाओं की अविलम्ब निश्चय कर लेने की शक्ति थी; तुरन्त तलवार लींच ली, और उन तीनों पर टूट पड़ा। कई मिनट तक तलवारें छपाक्कूप नलती रहीं। फिर सज्जाड़ा छा गया। उधर वे तीनों आहत होकर गिर पड़े, इधर यह भी जख्मों से चूर हीकर अचेत हो गया।

प्रातःकाल चिन्ता उठी, तो चारों जवानों का भूमि पर पड़े पाया। उसका कलेजा धक्के से हो गया। समीप जाकर देखा—तीनों आकमणकारियों के प्राण निकल चुके थे; पर रत्नसिंह की सौंस चल रही थी। सारी घटना समझ में आ गयी। नारीत्व ने वीरत्व पर विजय पायी। जिन आँखों से पिता की मृत्यु पर आँसू की एक बूँद भी न गिरी थी, उन्हीं आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। उसने रत्नसिंह का सिर अपनी जाँध पर रख लिया, और हृदयांगण में रथं हुए स्वयंवर में उसके गले में जयमाल ढाल दी।

(४)

महीने-भर न रत्नसिंह की आँखें खुलीं, और न चिन्ता की आँखें बन्द हुईं। चिन्ता उसके पास से एक द्वाण के लिए भी कहीं न जाती। न अपने हलाके की परवा थी, न शत्रुओं के बढ़ते चले आने की फ़िक। रत्नसिंह पर वह अपनी सारी विभूतियों का बलिदान कर चुकी थी। पूरा महीना बीत जाने के बाद रत्नसिंह की आँख खुलीं। देखा—चारपाई पर पड़ा हुआ है, और चिन्ता सामने पंखा लिये लड़ी है। द्वीण स्वर में बोला—चिन्ता, पंखा मुझे दे दो, तुम्हें कष्ट हो रहा है।

चिन्ता का हृदय इस समय स्वर्ग के अखण्ड, अपार सुख का अनुभव कर रहा था। एक महीना पहले जिस जीर्ण शरीर के सिरहाने बैठी हुई वह नैराश्य से रोया करती थी, उसे आज बोलते देखकर उसके आह्लाद का पारावार न था। उसने स्नेह-मधुर स्वर में कहा—प्राणनाथ, यदि यह कष्ट है, तो सुख क्या है, मैं नहीं जानती। ‘प्राणनाथ’—इस सम्बोधन में विलक्षण मन्त्र की-सी शक्ति थी! रत्नसिंह की आँखें चमक उठीं। जीर्ण सुदूर प्रदीप हो गयी, नसों में एक नये

जीवन का सञ्चार हो उठा, और वह जीवन कितना स्फूर्तिमय था ! उसमें कितना उत्साह, कितना माधुर्य, कितना उल्जन्स और कितनी कशणा थी ! रत्नसिंह के ग्रंग-ग्रंग फड़कने लगे। उसे अपनी भुजाओं में अलौकिक पराक्रम का अनुभव होने लगा। ऐसा जान पड़ा, मानो वह सारे संसार को सर कर सकता है, उड़कर आकाश पर पहुँच सकता है, पवर्तों का चीर सकता है। एक क्षण के लिये उसे ऐसो तृतीय हुई, माना उसका सारा अभिलाषाएँ पूरी हो गयी हैं, और वह अब किसी से कुछ नहीं चाहता ; शायद शिव के सामने लड़े देखकर भी वह मुँह फेर लेगा, कोई बरदान न मांगेगा। उसे अब किसी ऋद्धि की, किसी पदार्थ की इच्छा न थी। उस गर्व हा रहा था, मानो उससे अधिक मुख्या, उससे आधिक भाग्यशाली पुष्प संसार में आरं न होगा।

चिन्ता अभी अपना वाक्य पूरा भी न कर पायी थी कि उसी प्रसंग में बोली—हाँ, आपको मेरे कारण अलबता दुम्हस ह यातना भोगनी पड़ी !

रत्नसिंह ने उठने की चेष्टा करके कहा—बिना तप के सिंदू नहीं मिलती।

चिन्ता ने रत्नसिंह को कोमल हाथों से लियते हुए कहा—इस सिंदू के लिए तुमने नपस्था नहीं की थी। भूठ क्यों बोलते हो ? तुम केवल एक अबला की रक्षा कर रहे थे। यादें मेरी जगह कोई दूसरी ल्लो होती, तो भी तुम इतने ही प्राण-प्रण में उसकी रक्षा करते। मुझे इसका विश्वास है। मैं तुमसे सत्य कहती हूँ, मैंने आजीवन ब्रह्मनारणी रहने का प्रण कर लिया था ; लेकिन तुम्हारे आधिमासुर्ग ने मेरे प्रण को तोड़ डाला। मेरा पालन योद्धाओं की गोद में हुआ है ; मेरा हृदय उसी पुरुषसिंह के नरणों पर अपेण हो सकता है, जो प्राणों की बाजी खेल सकता है। रसिकों के हासन-विलास, गुणों के घृण-रंग आंर फँकेतों के दाव-यात का मेरी दृष्टि में रक्ती-भर भी मूल्य नहीं। उनकी नट-विद्या को मैं केवल तमाशे की तरह देखती हूँ। तुम्हारे ही हृदय में मैंने सच्चा उत्सर्ग पाया, और तुम्हारी दासी हो गयी—आज से नहीं, बहुत दिनों से।

(५)

प्रण की पहली रात थी। चारों ओर सचाया था। केवल दोनों प्रेमियों के हृदयों में अभिलाषाएँ लहरा रही थीं। चारों ओर अनुरागमयी चाँदनी छिटकी हुई थीं, और उसकी हास्यमयी छुट्टी में वर और वधू प्रेमालाप कर रहे थे।

सहसा खबर आयी कि शत्रुओं की एक सेना किले की ओर बढ़ी नली आती है। चिन्ता चौंक पड़ो ; रत्नसिंह खड़ा हो गया, और खूंटी से लटकती हुई तलवार उतार ली।

चिन्ता ने उसकी ओर कातर-नेह की दृष्टि से देखकर कहा—कुछ आदमियों को उधर भेज दो, तुम्हारे जाने की क्या जरूरत है?

रत्नसिंह ने बन्दूक कम्बे पर रखते हुए कहा—मुझे भय है कि अबकी बेलोग बड़ी सख्त्य में आ रहे हैं।

चिन्ता—तो मैं भी नलूँगी।

‘नहां, मुझे आशा है, वे लाग ग्रह न सकेंगे। मैं एक ही धावे में उनके कदम उत्थाइ दूँगा। यह ईश्वर की इच्छा है कि हमारी प्रणय-रात्रि विजय-रात्रि हो।’

‘न-जाने क्यों मन कातर हो रहा है। जाने देने को जी नहीं चाहता।’

रत्नसिंह ने इस सरल, अनुरक्त आग्रह से विहूल हाकर चिन्ता को गले लगा लिया आर बोले—मैं संवेर तक लाठ आर्झगा, प्रिये !

चिन्ता पात के गले में हाथ ढालकर आँखों में आँसू भरे हुए बाली—मुझे भय है, तुम बहुत दिनों में लायेंगे। मेरा मन तुम्हारे साथ रहेगा। जाओं, पर राज खबर भेजते रहना। तुम्हारा पैरों पड़ती हूँ, अवसर का विचार करके धावा करना। तुम्हारी आदत है कि शत्रु देखते ही आकुल हों जाते हों, और जान पर खेलकर दूँ पड़ते हों। तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि अवसर देखकर काम करना। जाओ, जिस तरह पीठ दिखाते हों, उसी तरह मुँह दिखाओ।

चिन्ता का हृदय कातर हो रहा का। वहाँ पहले केवल विजय-लालसा का आधिपत्य था, अब भांग-लालसा की प्रधानता थी। वही वीर बाला, जो सिंहनी की तरह गरजकर शत्रुओं के कलेजे कँपा देती थी, आज इतनी दुर्बल हो रही थी कि जब रत्नसिंह घोड़े पर सवार हुआ, तो आप उसकी कुशल-कामना से मन-ही-मन देवी की मनातिथियाँ कर रही थी। जबतक वह दृढ़ों की ओट में छिप न गया, वह लड़ी उसे देखती रही, फिर वह किले के सबसे ऊँचे बुर्ज पर चढ़ गयी, और शरणों उसी तरफ ताकती रहो। वहाँ शृण्य था, पहाड़ियों ने कभी का रत्नसिंह को अपनी ओट में छिपा लिया था; पर चिन्ता को ऐसा जान पड़ा था कि वह सामने चले जा रहे हैं। जब ऊपर की लोहित छुवि दृढ़ों की आँख से

झौंकने लगी, तो उसकी मोह-विस्मृति दूट गयी। मालूम हुआ, चारों तरफ शून्य है। वह रातों हुई बुर्ज से उतरी, और शश्या पर मुँह ढाँपकर राने लगी।

(६)

रत्नसिंह के माथ मुशिकल से सौ आदमी थे; किन्तु सभी मैंजे हुए, अव-सर और संश्या को तुच्छ समझनेवाले, अपनी जान के दुश्मन! वीरोङ्गास से भरे हुए एक वीर-रसन्धर्ण पद गते हुए घोड़ों को बढ़ाये चले जाते थे—

‘बांकी तेरी पाग सिपाही, इसकी रखना लाज।

तेग-तबर कुलु काम न आवे, बख्तर-दाल व्यर्थ हो जावे।

रखियो मन में लाग, सिपाही बांकी तेरी पाग।

इसकी रखना लाज।

पहाड़ियाँ इन वीर-स्वरों से गूँज रही थीं। घोड़ों की ट्रप-ताल दे रही थीं। यहाँ तक कि रात बीत गयी, सूर्य ने अपनी लाल औरंगे स्वाल दी और इन वीरों पर अपनी स्वर्यांच्छया की वर्षा करने लगा।

वहीं रक्तमय प्रकाश में शत्रुओं की सेना एक पहाड़ी पर पड़ाव डाले हुये नजर आयी।

रत्नसिंह सिर झुकाये, वियोग-व्ययित हृदय का दबाये, मन्द गति से पीछे-पीछे चला आता था। कदम आगे बढ़ता था; पर मन पीछे हटता। आज जीवन में पहली बार दुरिच्छन्ताओं ने उसे आशङ्कित कर रखा था। क्यैन जानता है, लड़ाई का अन्त क्या होगा! जिस स्वर्ग-मुख को ल्लोड़कर वह आया था, उसकी स्मृतियाँ रह-रहकर उसके हृदय को मसोस रही थीं; निन्ता की सजल औरंगे याद आती थीं, और जी चाहता था, घोड़े की रास पीछे मोड़ दें। प्रतिक्रिया रणोऽसाह क्षीण होता जाता था, सहसा एक सरदार ने समीप आकर कहा—मैया, वह देखो, ऊँची पहाड़ी पर शत्रु डेरे डाले पड़ा है। तुम्हारी अब क्या राय है? हमारी तो यह इच्छा है कि तुरन्त उनपर धावा कर दें। गाफिल पड़े हुए हैं, भाग लड़े होंगे। देर करने में वे भी सँभल जायेंगे, और तब मामला नाज़क हो जायगा। एक हजार से कम न होंगे।

रत्नसिंह ने चिन्तित नेत्रों से शत्रु-दल की ओर देखकर कहा—हाँ, मालूम तो होता है।

सिपाही—तो धावा कर दिया जाय न ?

रत्न०—जैसी तुम्हारी इच्छा । संख्या अधिक है, यह सोच लो ।

सिपाही—इसकी परवाह नहीं । हम इससे बड़ी सेनाओं को परास्त कर चुके हैं ।

रत्न०—यह सच है; पर आग में कृदना ठोक नहीं ।

सिपाही—मैया, तुम कहते क्या हो ? सिपाही का तो जीवन ही आग में कृदने के लिये है । तुम्हारे हुक्म की देर है, फिर हमारा जीवट देखना ।

रत्न०—अभी हम लोग बहुत थके हुए हैं । जरा विश्राम कर लेना अच्छा है ।

सिपाही—नहीं मैया, उन सबों को हमारी आहट मिल गयी, तो गजब हो जायगा ।

रत्न०—तो फिर धावा ही कर दो ।

एक दृश्य में योद्धाओं ने घोड़ों की बांगें उठा दीं, और अब सँभाले हुए शत्रुसेना पर लपके ; किन्तु पहाड़ी पर पहुँचते ही इन लोगों ने उसके विषय में जो अनुमान किया था, वह मिथ्या था । वह सजग ही न थे, स्वर्य किले पर धावा करने की तैयारियों भी कर रहे थे । इन लोगों ने जब उन्हें सामने आते देखा, तो समझ गये कि भूल हुई ; लेकिन अब सामना करने के सिवा चारा ही क्या था । फिर भी वे निराश न थे । रनसिंहजैसे कुशल योद्धा के साथ हन्ते कोई शंका न थी । वह इससे भी कठिन अवसरों पर अपने रण-कौशल से विजय-लाभ कर चुका था । क्या आज वह अपना ज़ंहर न दिखाएगा ? सारी आँखें रनसिंह को खोज रही थीं ; पर उसका वहाँ कहीं कहीं पता न था । कहाँ ज़ला गया ? वह कोई न जानता था ।

पर वह कहीं नहीं जा सकता । अपने साथियों को इस कठिन अवस्था में छोड़कर वह कहीं नहीं जा सकता — सभवत नहीं । अवश्य ही वह यहीं है, और हारी हुई बाजी को जिताने की कोई युक्ति सोच रहा है ।

एक दृश्य में शत्रु इनके सामने आ पहुँचे । इतनी बहुसंख्यक सेना के सामने ये मुट्टी-भर आदमी क्या कर सकते थे । चारों ओर से रनसिंह की पुकार होने लगी—मैया, तुम कहाँ हो ? हमें क्या हुक्म देते हो ? देखते हो, वे लोग सामने आ पहुँचे ; पर तुम अभी मौन लड़े हो । सामने आकर हमें मार्ग दिखाओ, हमारा उत्साह बढ़ाओ !

पर अब भी रत्नसिंह न दिखायी दिया। यहाँ तक कि शत्रुदल सिर पर आ पहुँचा, और दोनों दलों में तलवारें चलने लगीं। बुन्देलों ने प्राण हथेली पर लेकर लड़ा शुरू किया; पर एक को एक बहुत होता है; एक और दस का मुकाबिला ही क्या? यह लड़ाई न थी, प्राणों का जुआ था! बुन्देलों में निराशा का अल्लाकिंक बल था। खूब लड़े; पर क्या मजाल कि कदम पीछे हटे। उनमें अब जरा भी संगठन न था। जिससे जितना आगे बढ़ते बना, बढ़ा। अन्त क्या होगा, इसकी किसी को चिन्ता न थी। काई तो शत्रुओं की सफं चोरता हुआ सेनापांति के समीप पहुँच गया, कोई उसके हाथी पर चढ़ने की चेष्टा करते मारा गया। उनका अमानुषिक माहस देखकर शत्रुओं के मुँह से भी वाह-वाह निकलती थी; लेकिन ऐसं योद्धाओं ने नाम पाया है, विजय नहीं पायी। एक घरटे में रंगमंच का परदा गिर गया, तमाशा खत्म हो गया। एक आँधी थी, जो आयी आर दृढ़ों को उखाड़ती हुई चली गयी। संगाठत रहकर ये ही मुट्ठी-भर आदर्मा दुश्मनों के दोत खट्टे कर देते, पर जिस पर संगठन का भार था, उसका कहीं पता न था। विजयी मरहटों ने एक-एक लाश ध्यान से देखी। रत्नसिंह उनकी आँधों में खटकता था। उसी पर उनके दौत लगे थे। रत्नसिंह के जीते-जी उन्हें नीद न आती थी। लोगों ने पहाड़ी की एक-एक चट्टान का मंथन कर डाला; पर रत्न न हाथ आया। विजय हुई; पर अधूरी।

(७)

चन्ता के हृदय में आज न-जाने क्यां माँति-भौंति की शंकाएँ उठ रही थीं। वह कभी इतनी दुर्बल न थी। बुन्देलों की हार ही क्योंहागी, इसका कोई कारण तो वह न बता सकती थी; पर यह भावना उसके विकल हृदय से किसी तरह न निकलती थी। उस अभागिन के भाग्य में प्रेम का सुख भोगना लिखा होता, तो क्या बचपन ही में माँ मर जाती, पिता के साथ बन-बन घूमना पड़ता, खोहाँ और कन्दराओं में रहना पड़ता! और वह आश्रय भी तो बहुत दिन न रहा। पिता भा मुँह मोड़कर चल दिये। तब से उसे एक दिन भी तो आराम से बैठना नसीब न हुआ। विधना क्या अब अपना कूर कांतुक छोड़ देगा? आह! उसके दुर्बल हृदय में इस समय एक विचित्र भावना उत्पन्न हुई—ईश्वर उसके प्रियतम को आज सकुशल लाये, तो वह उसे लेकर किसी दूर के गाँव में जा बसेगी। पति

देव की सेवा और आराधना में जीवन सफल करेगी। इस संप्राम से सह के लिए मुँह मोड़ लेगी। आज पहली बार नारीत्व का भाव उसके मन में जाप्रत हुआ।

संध्या हो गयी था, मूर्य भगवान् किसी हारे हुए सिपाही की भाँति मस्तक मुकाये कोई आङ लो न रहे थे। सहसा एक सिपाही नंगे सिर, पौव, निरम उसके सामने आकर लड़ा हो गया। चिन्ता पर वज्रपात हो गया। एक दण तक मर्माहत-सी तैरी रही। किर उठकर वज्रायी हुई सैनिक के पास आयी, और आतुर स्वर में पूछा — कौन-कौन बचा?

सैनिक ने कहा—कोई नहीं!

‘कोई नहीं? कोई नहीं?’

चिन्ता सिर पकड़कर भूम पर बैठ गयी। सेनेक ने किर कहा — परहठे संभी प आ पहुँचे।

‘समीप आ पहुँचे?

‘बहुत समीप!’

‘तो तुरंत चिता तैयार करा। समय नहीं है।’

‘अभी हम लोग तो सिर कशने को हाजिर ही हैं।’

‘तुम्हारी जैसो इच्छा। मेरे कर्तव्य का तो यही अन्त है।’

‘किला बन्द करके हम महीना लड़ सकते हैं।’

‘तो आकर लड़ा। मेरी लड़ाई अब किसी से नहीं।’

एक आर अन्धकार प्रकाश का पैरां-तज्जे कुचलता चला आता था, दूसरी ओर चित्ता मरहठे लहराते हुए खेंच का। और किते में चिता बन रही थी। ज्योंहो दोपक जल, चिता में भी आग लगो। सती चिन्ता सोलहां शृङ्खर किये, अनुरम छाँचे दिलाती हुई, प्रसन्न-मुख अग्नि-मार्ग से पतिलाक की यात्रा करने जा रही थी।

(८)

चिता के चारों ओर झो ओर पुष्प जमा थे। शत्रुओं ने किले को घेर लिया है, इसकी किसी को फिक न थो। शोक और संताप से सबके चेहरे उदास और सिर झुके हुए थे। अभी कल इसी आँगन में विवाह का मंडप सजाया गया था। वहाँ इस समय चिता सुलग रही है, वहीं कल हवन-कुण्ड था। कल भी इसी

भौंति आग्नि की लपटें उठ रही थीं, इसी भौंति लोग जमा थे; पर आज और कल के दश्यों में कितना अन्तर है ! हाँ, स्थूल नेत्रों के लिए अन्तर हो सकता है; पर वास्तव में यह उसी यज्ञ की पूर्णाहुति है, उसी प्रतिज्ञा का पालन है।

सहस्र धोड़े की यांच की आवाजें सुनायी देने लगीं। मालूम होता था, कोई सिंपाही धोड़े को सरपट भगाता चला आ रहा है। एक ज्ञण में यांचों की आवाज बन्द हो गयी, और एक सैनिक आँगन में दौड़ा हुआ आ पहुँचा। खोगो ने चकित होकर देखा, यह रक्षसिंह था !

रक्षसिंह चिन्ता के पास जाकर हाँकता हुआ बोला—प्रिये, मैं तो अभी जीवित हूँ, यह तुमने क्या कर डाला ?

चिन्ता में आग लग चुकी थी ! चिन्ता की साझी से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी। रक्षसिंह उन्मत्त की भौंति चिन्ता में घुस गया, और चिन्ता का हाथ पकड़कर उठाने लगा। लोगों ने चारों ओर से लपक-लपककर चिन्ता की लकड़ियाँ हटानी शुरू कीं; पर चिन्ता ने पति की ओर और आँख उठाकर भी न देखा, केवल हाथों से उसे हट जाने का संकेत किया।

रक्षसिंह सिर पीटकर बोला—हाय प्रिये, तुम्हें क्या हो गया है ? मेरी आंख देखती क्यों नहीं ? मैं तो जीवित हूँ।

चिन्ता में आवाज आयी—तुम्हारा नाम रक्षासह है; पर तुम मेरे रक्षसिंह नहीं हों।

‘तुम मेरी तरफ देखो तां, मैं ही तुम्हारा दास, तुम्हारा उपासक, तुम्हारा पति हूँ।’

‘मेरे पति ने बीर-गति पायी।’

‘हाय ! कैसे समझाऊँ ! अरे लोगों, किसी भौंति अग्नि को शांत करो। मैं रक्षसिंह ही हूँ, प्रिये ! क्या तुम मुझे पहचानती नहीं हो ?’

अग्नि-शिखा चिन्ता के मुख तक पहुँच गयी। अग्नि में कमल खिज गया। चिन्ता स्पष्ट स्वर में बोली—खबूल पहचानती हूँ। तुम मेरे रक्षसिंह नहीं। मेरा रक्षसिंह सच्चा शर था। वह आत्मरक्षा के लिए, इस तुच्छ देह को बचाने के लिए अपने ज्ञात्रिय-धर्म का परित्याग न कर सकता था। मैं जिस पुरुष के चरणों

की दासी बनी थी, वह देवलोक में विराजमान है। रत्नसिंह का बदनाम मर करो। वह वीर राजपूत था, रणदेव से भागनेवाला कायर नहीं।

अन्तिम शब्द निकले ही थे कि अग्रिमे को उत्ताला चिन्ता के सिर के ऊपर जा पहुँची। फिर एक दृश्य में वह अनुपम रूप-गणि, वह आदर्श वीरता की उपासिका, वह सब्दवी सती अग्रिम-राणी में शिलोन हो गयी।

रत्नसिंह चुपचाप, हताहुदिन्सा खड़ा यह शोकमय दृश्य देखता रहा। फिर अन्तानक एक ठरडी सौंस न्वीनकर उसी चिता में झूट पढ़ा।

हिंसा परमो धर्मः

दुनिया में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो किसी के नौकर न होते हुए सबके नौकर होते हैं, जिन्हें कुछ अपना खास काम न होने पर भी सिर उठाने की कुर्सत नहीं होती। जामिद इसी श्रेणी के मनुष्यों में था। बिलकुल वेफिक, न किसी सं-दोस्ती, न किसी से तुश्मनी। जो जरा हँसकर बोला, उसका बे-दाम का गुलाम हो गेया। बेकाम का काम करने में उसे मजा आता था। गाँव में कोई बीमार पड़े, वह रंगी की सेवा-युश्पा के लिए हाजिर है। कहिए, तो आधी रात का हकीम के घर चला जाय; किसी जड़ी-बूटी की तलाश में मंजिलों की खाक छान आये। मुर्मिकन न या कि किसी गरीब पर अत्याचार होते देखे और चुप रह जाय। फिर नाहे कोई उसे मार ही डाले, वह हिमायत करने से बाज न आता था। ऐसे संकड़ा ही माँक उसके सामने आ नुक्के थे। कास्टेलिलों से आये दिन उसकी छेइ-च्छाइ होती ही रहती थी। इसीलिए लोग उसे बौद्धम समझते थे। आंर बात भी यही थी। जो आदमी किसी का बोझ भारी देखकर, उससे छीनकर, अपने सिर पर ले ले, किसी का छुप्पर उठाने या आग बुझाने के लिए कोसा दंडा चला जाय, उसे समझदार कौन कहेगा। सारांश यह कि उसकी जात में दूसरों को नाहे कितना ही कायदा पहुँचे, अपना कोई उपकार न होता या: यहाँ तक कि वह रोटियों के लिए भी दूसरों का मुहताज या। दीवाना तो वह था, और उसका गम दूसरे खाते थे।

(१)

आरंखर जब लोगों ने बहुत धिक्कारा—क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो? तुम दूसरों के लिए मरते हो, कोई तुम्हारा भी पूछनेवाला है? अगर एक दिन बीमार पड़ जाओ, तो कोई चुल्लू-भर पानी न दे; जब तक दूसरों की सेवा करते हो, लोग लैरात समझकर खाने को दे देते हैं; जिस दिन आ पड़ेगी, कोई सीधे मुँह वात भी न करेगा, तब जामिद की आँखें खुलीं। बगतन-भाँड़ा कुछ या ही नहीं। एक दिन उठा, और एक तरफ की राह ली। दो दिन के बाद एक

शहर में पहुँचा। शहर बहुत बड़ा था। महल आसमान से बातें करनेवाले। सड़कें चौड़ी और साफ। बाजार गुलजार; मसजिदों और मन्दिरों की संख्या अगर मकानों से अधिक न थी, तो कम भी नहीं। देहात में न तो कोई मसजिद थी, न कोई मन्दिर। मुसलमान लोग एक चबूतरे पर नमाज पढ़ लेते थे। हिन्दू एक कुन्न के नीचे पानी चढ़ा दिया करते थे। नगर में धर्म का यह माहात्म्य देखकर जामिद को बड़ा कुनूहल और आनन्द हुआ। उसकी दृष्टि में मजहब का जितना सम्मान था, उतना और किसी सांसारिक वस्तु का नहीं। वह सोचने लगा—ये लोग कितने ईमान के पक्के, कितने सत्यवादी हैं। इनमें कितनी दया, कितना विवेक, कितनी सहानुभूति हैं गी, तभी तो खुद। ने इन्हें इतना माना है। वह हर आने-जानेवाले को श्रद्धा की दृष्टि से देखता और उसके सामने विनय से सिर झुकाना था। यहाँ के सभी प्राणी उसे देवतानुल्य मालूम होते थे।

घूमते-घूमते साँझ हो गयी। वह थककर एक मान्दर के चबूतरे पर जा बैथ। मान्दर बहुत बड़ा था, ऊपर मुनहला कलस चमक रहा था। जगमोहन पर संगमरमर के चौंके जड़े हुए थे; भगर आँगन में जगह-जगह गोबर और कुड़ा पड़ा था। जामिद का गंदगो से चिढ़ थोः देवालय की यह दशा देखकर उसमें न रहा गया; इधर-उधर निगाह ढाँड़ायी कि कर्ही भाङ्ग मिल जाय, तो साफ कर दे; पर भाङ्ग कर्ही नजर न आयी। विवश होकर उसने दामन से चबूतरे को साफ करना शुरू कर दिया।

जरा देर में भक्तों का जमाव होने लगा। उन्हें जामिद को चबूतरा साफ करने देखा, तो आपस में बातें करने लगे—

‘हे तो मुसलमान !’

‘मेहतर होगा !’

‘नहीं मेहतर अपने दामन से सफाई नहीं करता। कोई पागल मालूम होता है !’

‘उधर का भेदिया न हो !’

‘नहीं चेहरे से बड़ा गरीब मालूम होता है !’

‘हसन निजामी का कोई सुरीद होगा !’

‘अजी गोबर के लालन से सफाई कर रहा है। कोई भठियार होगा (जामिद से) गोबर न ले जाना है, समझा ! कहाँ रहता है ?’

‘परदेशी मुसलिम हूँ, साहब; मुझे गोबर लेकर क्या करना है। ठाकुरजी का मन्दिर देखा, तो आकर बैठ गया : कूड़ा पड़ा हुआ था। मैंने सोचा—धर्मात्मा लोग आते होंगे; सफाई करने लगा।’

‘तुम तो मुसलमान हो न ?’

‘ठाकुरजी तो सबके ठाकुरजी हैं—क्या हिन्दू, क्या मुसलमान !’

‘तुम ठाकुरजी को मानते हो ?’

‘ठाकुरजी को कौन न मानेगा, साहब ? जिसने पैदा किया, उसे न मानँगा तो किसे मानँगा ?’

भक्तों में यह सलाह होने लगी—

‘देहाती है !’

‘फौस लेना चाहिए, जाने न पाये !’

(२)

जामिद कौस लिया गया। उसका आदर्स-स्तकार होने लगा। एक हवादार मकान रहने का मिला। दोनों वक्त उत्तम पदार्थ खाने को मिलने लगे। दोनार आदमी हरदम उसे घेरे रहते। जामिद को भजन खूब याद थे। गला भी अच्छा था। वह रोज मन्दिर में जाकर कीर्तन करता। भाक्त के साथ स्वर-लालित्य भी थी, तो किर क्या पूछना। लोगों पर उसके कीर्तन का बड़ा असर पड़ता। कितने ही लोग संगीत के लोभ से ही मन्दिर में आने लगे। सब को विश्वास हो गया कि भगवान् ने यह शिकार चुनकर भेजा है।

एक दिन मन्दिर में बहुत-से आदमी जमा हुए। आंगन में फर्श बिछाया गया। जामिद का सिर मुड़ा दिया गया। नये कपड़े पहनाये गये। हवन हुआ। जामिद के हाथों से भिटाइ बाँटी गयी। वह अपने आश्रय-दाताओं की उदारता और धर्मनिष्ठा का आंग भी कायल हो गया। ये लोग कितने सज्जन हैं, मुझ-जैसे फटेहाल परदेशी की इतनी खांतर! इसी को सच्चा धर्म कहते हैं। जामिद को जीवन में कभी इतना सम्मान न मिला था। यहाँ वही सैलानी युवक जिसे लोग बीड़म कहते थे, भक्तों का सिरमौर बना हुआ था। सैकड़ों ही आदमी केवल इसके दर्शनों को आते थे। उसकी प्रकांड विद्रोह की कितनी ही कथाएँ प्रचलित हो गयी। पत्रों में यह समाचार निकला कि एक बड़े आलिम मौलवी साहब

की शुद्धि हुई है। सीधा-सादा जामिद इस सम्मान का रहस्य कुछ न समझता था। ऐसे धर्मपरायण सद्व्यवहार प्राणियों के लिए वह क्या कुछ न करता? वह नित्य पूजा करता, भजन गाता था। उसके लिए यह कोई नवी बात न थी। अपने गाँव में भी वह व्रगबर सत्यनारायण की कथा में बैठा करता था। भजन-कीर्तन किया करता था। अन्तर यही था कि देहात में उसकी कदर न थी। यहाँ सब उसके भक्त थे।

एक दिन जामिद कई भक्तों के साथ बैठा हुआ कोई पुराण पढ़ रहा था तो क्या देखता है कि सामने सड़क पर एक बलिष्ठ युवक, माथे पर तिलक लगाये, जनेऊ पढ़ने, एक बूढ़े दुर्बल मनुष्य को मार रहा है। बुद्धा रोता है गिरगिराता है और पैरों पङ-पङ के कहता है कि महाराज, मेरा कठूर माफ करो : किन्तु तिलकधारी युवक को उस पर जरा भी दया नहीं आती। जामिद का रक्त खौल उटा। ऐसे इश्य देखकर वह शांत न बैठ सकता था। तुरन्त कृदकर बाहर निकला, और युवक के सामने आकर बोला—इस बुद्धे को क्यों मारते हों, भाई? तुम्हें इस पर जरा भी दया नहीं आती?

युवक—मैं मारते-मारते इसकी हड्डियाँ तोड़ दूँगा।

जामिद—आखिर इसने क्या कुसूर किया है? कुछ मालूम भी तो हो।

युवक—इसकी मुर्गां हमारे घर में तुस गवीं थीं, और सारा घर गन्दा कर आयी।

जामिद—तो क्या इसने मुर्गीं को खिला दिया था कि तुम्हारा घर गन्दा कर आये?

बुद्धा—खुदावन्द, मैं तो उसे बराबर खाँचे में ढाँके रहता हूँ। आज गफलत हो गयी। कहता हूँ, महाराज, कुसूर माफ करो; मगर नहीं मानते। हुजर, मारते-मारते अधमरा कर दिया।

युवक—अभी नहीं मारा है, अब मारूँगा—खोदकर गाढ़ दूँगा।

जामिद—खोदकर गाढ़ दोगे भाई, साहब, तो तुम भी यां न खड़े रहांगे। समझ गये? अगर फिर हाथ उठाया, तो अच्छा न होगा।

जवान की अपनी ताकत का नशा था। उसने फिर बुद्धे को चौंटा लगाया पर चौंटा पड़ने के पहले ही जामिद ने उसकी गर्दन पकड़ ली। दोनों में मळ-युद्ध होने लगा। जामिद करारा जवान था। युवक को पटकनी दी, तो चारों

खाने चित गिर गया । उसका गिरना था कि भक्तों का समुदाय, जो अब तक मन्दिर में बैठा तमाशा देख रहा था, लपक पड़ा और जामिद पर चारों तरफ से चाँड़ पहने लगीं । जामिद को समझ में न आता था कि लांग सुझे क्यों मार रहे हैं । कोई कुछ नहीं पूछता । तिलकधारी जवान को कोई कुछ नहीं कहता । बस, जो आता है, मुझे पर हाथ साफ करता है । आखिर वह बेदम हांकर गिर पड़ा । तब लोगों में बातें होने लगीं ।

‘दगा दे गया !’

‘धन् तेरी जात की ! कभी म्लेन्ड्रों में भलाई की आशा न रखनी चाहिए । कौआँ ही के माथ मिलेगा । कमोना जब करेगा, कमीनापन । इसे कई पूछता न था, मन्दिर में भाङू लगा रहा था । देह पर कपड़े का तार भी न था, हमने इसका सम्मान किया, पशु से आदमी बना दिया, फिर भी अपना न हुश्शा !’

‘इनके धर्म का तो मूल ही यही है !’

जामिद रात भर सड़क के किनारे पड़ा दर्द से कराहता रहा, उसे मार खाने का दुःख न था । ऐसी यातनाएँ वह कितनी बार भोग चुका था । उसे दुःख और आश्वर्य केवल इस बात का था कि इन लोगों ने क्यों एक दिन मेरा इतना सम्मान किया, और क्यों आज अकाशण ही मेरी इतनी दुर्गति की ? इनकी वह सज्जनता आज कहाँ गयी ? मैं तो वही हूँ । मैंने कोई झूसूर भी नहीं किया । मैंने तो वही किया, जो ऐसी दशा में सभी को करना चाहिए । फिर इन लोगों ने मुझ पर क्यों इतना अत्याचार किया है ? देवता क्यों रात्रि स बन गये ?

वह र त-भर इसी उलझन में पड़ा रहा । प्रातःकाल उठकर एक तरफ की राह ली ।

(४)

जामिद अभी योड़ी ही दूर गया था कि वही बुढ़ा उसे मिला । उसे देखते ही वह बोला—क्सम खुदा की, तुमने कल मेरी जान बचा दी । सुना, जालिमों ने तुम्हें बुरी तरह पोछा । मैं तो मौका पाते ही निकल भागा । अब तक कहाँ थे । यहाँ लोग रात ही से तुमसे मिलने के लिए बेकरार हो रहे हैं । काजी साहब रात ही से तुम्हारी तलाश में निकले थे, मगर तुम न मिले । कल हम दोनों अकेले पड़ गये थे । दुश्मनों ने हमें पीट लिया । नमाज का वक्त था,

यहाँ सब लाग मसाजिद में थे; अगर जरा भी लबर हो जाती, तो एक हजार लड़त पहुँच जाते। तब आटे-दाल का भाव मालूम होता। कसम खुदा की, आज से मैंने तीन कोरी मुर्गियाँ पाली हैं! देखूँ, परेहतजी महाराज अब क्या करते हैं! कसम खुदा की, काजी साहब ने कहा है, अगर वह लौंडा जरा भी औंख दिखाये, तो तुम आकर मुझसे कहना। या तो बचा प्रभ लोडकर भाँगे, या हड्डी-पसली तोड़कर रख दी जायगी।

जामिद को लिए वह बुद्धा काजी जोरा अमृतन के दरवाजे पर पहुँचा। काजी साहब बजूँ कर रहे थे। जामिद का देखते ही दोड़कर गलं लगा लिया और बाले—बल्लाह! तुम्हें औंखें ढूँढ़ रही थीं। तुमने अंगले इतने काफिरों के दौत खट्टे कर दिये! क्यों न हो, मोर्मिन का खून है! काफिरों की हकीकत क्या! मुना मब-के-सब तुम्हारी शुद्धि करने जा रहे थे; मगर तुमने उनके सारे मनमूले पलट दिये। इस्लाम का ऐसे ही खादिमों की जरूरत है। तुम-जैसे दीनदारों से इस्लाम का नाम रोशन है। गलती यही हुई कि तुमने एक महीने-भर तक सब नहीं किया। शादी हो जाने देते, तब मजा आता। एक नाजजोन साथ लाने, और दोलत मुफ्त। बल्लाह! तुमने उजलत कर दी।

दिन-भर भक्तों का ताँता लगा रहा। जामिद को एक नजर देखने का सबका शांक था। सभी उसकी हिम्मत, जोर और मजहबी जोश की प्रशंसा करते थे।

(५)

पहर रात बीत चुकी थी। मुसाफिरों की आमदरपत कम हो चली थी। जामिद ने काजी साहब से धर्म-ग्रन्थ पढ़ना शुरू किया था। उन्होंने उसके लिए अपने बगल का कमरा खाली कर दिया था। वह काजी साहब से सबक लेकर आया, और सोने जा रहा था कि सहसा उसे दरवाजे पर एक ताँगे के झकने की आवाज सुनायी दी। काजी साहब के मुरीद अन्सर आया करते थे। जामिद ने सोचा, कोई मुरीद आया होगा। नीचे आया, तो देखा—एक छो ताँगे से उतरकर बरामदे में खड़ी है, और ताँगेवाला उसका असबाब उतार रहा है।

महिला ने मकान को इधर-उधर देखकर कहा—नहीं जी, मुझे अच्छी तरह खयाल है, यह उनका मकान नहीं है। शायद तुम भूल गये हो।

तांगेवाला—हुजूर तो मानतो ही नहीं। कह दिया कि साहब ने मकान तबदील कर दिया है। ऊपर चलिए।

खी ने कुछ भिखकते हुए कहा—बुलातं क्यों नहीं? आवाज दो!

तांगेवाले—ओ साहब, आवाज क्या दूँ, जब जानता हूँ कि साहब का मकान यही है, तो नाहक चिल्लाने से क्या कायदा? बेचारे आराम कर रहे होंगे। आराम में खलल पड़ेगा! आप निसालातिर रहिए। चलिए, ऊपर चलिए।

आँतर ऊपर चली। पीछे-पीछे तांगेवाला असबाब लिए हुए चला। जामिद गुम-नुम नोचे लड़ा रहा। यह रहस्य उसकी समझ में न आया।

तांगेवाले की आवाज मुनते ही काजी साहब कुत पर निकल आये, और एक ओरत को आते देख कमरे की लिङ्कियाँ चारों तरफ से बन्द करके खूँटी पर लटकती तलवार उतार ली, और दरवाजे पर आकर खड़े हो गये।

आँतर ने जीना तय कर ह ज्योंही कुत पर पैर रखा कि काजी साहब को देखकर भिखकी। वह तुरन्त पीछे की तरफ मुड़ना चाहती थी कि काजी साहब ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और अपने कमरे में धमीट लाये। इसी बीच में जामिद और तांगेवाला, ये दोनों भी ऊपर आ गये थे। जामिद यह रहस्य देखकर विस्मित हो गया था। यह रहस्य और भी रहस्यमय हो गया था। यह विद्या का सागर, यह न्याय का भांडार, यह नीति, धर्म और दर्शन का आगार। इस समय एक अपरेचित महिला के ऊपर यह धोर अत्यानार कर रहा है। नांगेवाले के साथ वह भी काजी साहब के कमरे में चला गया। काजी साहब तो खी के दोनों हाथ पकड़े हुए थे। तांगेवाले ने दरवाजा बन्द कर दिया।

महिला ने तांगेवाले की ओर खून-भरी आँखों से देखकर कहा—तू मुझे यहाँ क्यों लाया?

काजी साहब ने तलवार चमकाकर कहा—पहले आराम से बैठ जाओ, सब कुछ मालूम हो जायगा।

ओरत—तुम तो मुझे कोई मौलवी मालूम होते हो? क्या तुम्हें खुदा ने यही सिलाया है कि पराई बहू-बेटियों को जबरदस्ती घर में बन्द करके उनकी आबरू बिगाड़ी?

काजी—हाँ, खुदा का यही हुक्म है कि काफिरों को जिस तरह मुमकिन हो, इस्लाम के रास्ते पर लाया जाय। अगर खुशी से न आयें, तो जब से।

ओरत—इसी तरह अगर कोई तुम्हारी बहू-बेटी पकड़कर बे-आबरू करे, तो ?

काजी—हाँ ही रहा है। जैसा तुम हमारे साथ करोगे, वैसा ही हम तुम्हारे साथ करेंगे। फिर हम नां बे आबरू-नहीं करते, सर्फ़ अपने मजहब में शामिल करते हैं। इस्लाम कबूल करने से आबरू बढ़ती है, घटती नहीं। हिन्दू कौम ने तो हमें मिया देने का बीड़ा उठाया है। वह इस मुल्क से हमारा निशान मिया देना चाहती है। धोखे से, लालच से, जब से मुसलमानों को बे-दीन बनाया जा रहा है, तो मुसलमान बैठे मुँह ताकेंगे।

ओरत—हिन्दू कभी ऐसा अत्यान्चार नहीं कर सकता। सम्भव है, तुम लोगों की शरारतों से तंग आकर नीचे दर्जे के लोग इस तरह बदला लेने लगे हों; मगर अब भी कोई सच्चा हिन्दू इसे पसन्द नहीं करता।

काजी साहब ने कुछ सोचकर कहा—वेशक, पहले इस तरह की शरारत मुसलमान शोहदे किया करते थे। मगर शरीफ लोग इन हरकतों को बुरा समझते थे, और अपने इमकान-भर रोकने की कोशिश करते थे। तालीम और तहजीब की तरक्की के साथ कुछ दिनों में यह गुणाधारन जरूर गायब हो जाता; मगर अब तो सारी हिन्दू कौम हमें निगलने के लिए तैयार बैठी हुई है। फिर हमारे लिए और रास्ता ही कानून-सा है। हम कमज़ोर हैं, हमें मजबूर होकर अपने को कायम रखने के लिए दगा से काम लेना पड़ता है; मगर तुम इतना घबराती क्यों हो? तुम्हें यहाँ किसी बात की तकलीफ न होगी। इस्लाम औरतों के हक का जितना लिहाज करता है, उतना और कोई मजहब नहीं करता। और मुसलमान मर्द तो अपनी ओरत पर जान देता है। मेरे यह नंजाबान दोस्त (जामिद) तुम्हारे सामने लड़े हैं, इन्हीं के साथ तुम्हारा निकाह कर दिया जायगा। बस, आराम से जिन्दगी के दिन बसर करना।

ओरत—मैं तुम्हें और तुम्हारे धर्म को बृूणित समझती हूँ। तुम कुत्ते हो। इसके सिवा तुम्हारे लिए कोई दूसरा नाम नहीं। खैरियत इसी में है कि मुझे जाने दो; नहीं तो मैं अभी शोर मचा दूँगी, और तुम्हारा सारा मौलवीपन निकल जायगा।

काजी— अगर तुमने जबान खोली, तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा ।
बस, इतना समझ लो ।

आरत—आबरू के सामने जान की कोई हकीकत नहीं । तुम मेरी जान
ले सकते हो ; मगर आबरू नहीं ले सकते ।

काजी—क्यों नाहक जिद करती हा ?

आरत ने दरवाजे के पास आकर कहा— मैं कहतो हूँ, दरवाजा खोल दो ।

जामिद अब तक चुपचाप लड़ा था । ज्यों ही छो दरवाजे की तरफ चली,
और काजी साहब ने उसका हाथ पकड़कर स्थिरा, जामिद ने तुरन्त दरवाजा
खोल दिया और काजी साहब में बोला—इन्हें छोड़ दीजिए ।

काजी— क्या बँक्ता है ?

जामिद—कुछ नहां । खैरियत इसी में है कि इन्हें छोड़ दीजिए ।

तेकिन जब काजी साहब ने उस मर्हुला का हाथ न छोड़ा, और तांगवाला
भी उसे पकड़ने के लिए बढ़ा, तो जामिद ने एक धक्का देकर काजी साहब को
धकेल दिया, और उस छो का हाथ पकड़े हुए कमरे से बाहर निकल गया ।
तांग वाला पीछे लपका ; मगर जामिद ने उसे इतने जार से धक्का दिया कि वह
आँधा मुँह जा गिरा । एक न्यून में जामिद और छो, दोनों सड़क पर थे ।

जामिद—आपका घर किस मुहर्ले में है ?

आरत—आहगांव में ।

जामिद—न्याले, मैं आपको पहुँचा आऊँ ।

आरत—इसमें बड़ी और क्या मेहरबानी होगी । मैं आपको इस नेकी को
कभी न भूलूँगा । आपने आज मेरी आबरू बचा ली, नहीं तो मैं कहीं की न
रहती । मुझे अब मालूम हुआ कि अच्छे और बुरे सब जगह होते हैं । मेरे
शौहर का नाम परिषद राजकुमार है ।

उसी वक्त एक तांगा सड़क पर आता दिखायी दिया । जामिद ने छो को
उस पर बिठा दिया, और खुद बैठना ही चाहता था कि ऊपर से काजी साहब
ने जामिद पर लट्ठ चलाया और डरडा तांगे से टकराया । जामिद तांगे में
आ बैठा और तांगा चल दिया ।

अहियांज में पांडित राजकुमार का पर्वा लगाने में कोई कठिनाई न पड़ी। जामिद ने उयोंहाँ आवाज दी, वह घबराये हुए बाहर निकल्य आये और स्त्री को देखकर बोले—तुम कहाँ रह गयो थीं, इन्दिरा ! मैंने तो तुम्हें स्टेशन पर कहाँ न देखा। मुझे पहुँचने में जग देर हो गयी थी। तुम्हें इतनी देर कहाँ लगी ?

ईन्दिरा ने घर के अन्दर कदम रखते ही कहा—बड़ी लम्बी कथा है; जरा दम लेने दो, तो बता दूँगी। बस, इतना ही समझ लो कि आज अगर इस मुसलमान ने मेरी भद्र न की हांती तो आबरू चली गई थी।

पांडितजी पूरी कथा मुनने के लिये आँर माँ व्याकुल हो उठे। इन्दिरा के भाय वह भी घर में चले गये; पर एक ही मिनट के बाद बाहर आकर जामिद मे बोले—भाई साहब, शायद आप बनावट समझें: पर मुझे आपके रूप में इस समय अपने इष्ट देव के दर्शन हो रहे हैं। मेरी जबान में इतनी ताकत नहीं कि आपका शुरूकया आदा कर सकूँ। आइये, बैठ जाइये।

जामिद—जी नहीं, अब मुझे इजाजत दीजिए।

पांडित—मैं आपकी इस नेकी का क्या बदला दे सकता हूँ ?

जामिद—इसका बदला यही है कि इस शरारत का बदला किसी गरीब मुसलमान से न लीजएगा, मेरी आप से यही दरख्यात्त है।

यह कहकर जामिद चल दूआ हुआ, और उस अधेरी रात के सन्नाटे में शहर के बाहर निकल गया। उस शहर की विशाक वायु में सौंस लेते हुए उसका दम शुद्धता था ! वह जल्द-सं-जल्द शहर में भागकर अपने गाँव में पहुँचना चाहता था, जहाँ मजहब का नाम महानुभूति, प्रेम और सौहार्द था। धर्म और धार्मिक लोगों से उसे धृणा हो गयी थी।

बहिष्कार

पणिंडत शानचन्द्र ने गोविन्दी की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखकर कहा—मुझे ऐसे निर्दयी प्राणियों से जरा भी सहानुभूति नहीं है। इस बर्बरता की भी कोई हृद है कि जिसके साथ तीन वर्ष तक जीवन के मुख भाँगे, उसे एक जरानी बात पर धर से निकाल दिया।

गोविन्दी ने आँखें नीचों करके पूछा—आखिर क्या बात हुई थी?

शान०—कुछ भी नहीं। ऐसी बातों में कोई बात होती है। शिकायत है कि कालिन्दी जबान की तेज है। तीन साल तक जबान तेज न थी, आज जबान की तेज हाँ गयी। कुछ नहीं, कोई दूसरी चिकिया नजर आयी होगी। उसके लिए पिंजरे को खाली करना आवश्यक था। बस यह शिकायत निकल आयी। मेरा बस चले, ता ऐसे दुष्टों को गोली मार दूँ। मुझे कई बार कालिन्दी से बात-चीत करने का अवसर मिला है। मैंने ऐसी हँसमुख दूसरी छो ही नहीं देखी।

गोविन्दी—तुमने सांमदत्त को समझाया नहीं।

शान—ऐसे लोग समझाने से नहीं मानते। यह लात का आदमी है, बातों की उसे क्या परवा? मेरा तो यह विचार है कि जिससे एक बार सम्बन्ध हो गया, फिर वह अच्छी हो या बुरी, उसके साथ जीवन-धर निर्वाह करना चाहिये! मैं तो कहता हूँ, अगर खो के कुल में कोई दोष भी निकल आये, तो न्मा से काम लेना चाहिए।

गोविन्दी ने कातर नेत्रों से देखकर कहा—ऐसे आदमों तो बहुत कम हैं।

शान०—समझ ही में नहीं आता कि जिसके साथ इतने दिन हँसबोले, जिसके प्रेम की सूखियाँ हृदय के एक-एक अणु में समायी हुई हैं, उसे दर-दर ठांकरें खाने को कैसे छोड़ दिया। कम-से-कम इतना तो करना चाहिये था कि उसे किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देते और उसके निर्वाह का कोई प्रबन्ध कर देते। निर्दयी ने इस तरह धर से निकाला, जैसे कोई कुत्ते को निकाले। बेचारी गाँव के बाहर बैठी रो रही है। कौन कह सकता है, कहाँ जायगी। शायद-

मायके में भी कोई नहाँ रहा। सोमदत्त के डर के सारे गाँव का कोई आदमी उसके पास भी नहीं आता। ऐसे बगड़ का क्या ठिकाना ! जो आदमी खी का न हुआ, वह दूसरे का क्या होगा। उसकी दशा देखकर मेरी आँखों में तो आँख भर आये। जी मैं तो आया, कहुँ—बहन, तुम मेरे घर चलो; मगर तब तो सोमदत्त मेरे प्राणों का गाहक हो जाता।

गोविन्दी—तुम जग जाकर एक बार फिर समझाओ। अगर वह किसी तरह न माने, तो कालिन्दी को लेते आना।

जान०—जाऊँ ?

गोविन्दी—हाँ, अवश्य जाओ; अगर सोमदत्त कुछ खरी-खारी भी कहे, तो मुन लेना।

ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी का गाले लगाकर कहा—तुम्हारे हृदय में बड़ी दया है, गोविन्दी ! लो जाना हूँ। अगर भामदत्त ने न माना, तो कालिन्दी ही कह लेता आऊँगा। अभी बहुत दूर न गयी होंगी।

(२)

तोन वपे योत गये। गार्वन्दा एक बच्चे को माँ हो गया। कालिन्दी अभी तक इसी घर में है। उसके पर्ति ने दूसरा विवाह कर-लिया है। गोविन्दी और कालिन्दी में बहनों का-सा प्रेम है। गोविन्दी सदैव उसको दिल जाँई करती रहती है। वह हम्सकी कल्पना भी नहीं करती कि यह कोई गैर है और मेरी रोटियों पर पड़ी हुई है; लेकिन भामदत्त का कालिन्दा का यहाँ रहना एक आँख नहीं भाना। वह कोई कानूनों कारबाई करने को तो हिम्मत नहीं रखता। और इस परिस्थिति में कर ही क्या सकता है; लंकिन ज्ञानचन्द्र का सिर नीचा करने के लिए अव-सर न्योजिता रहता है।

संध्या का समय था। ग्रीष्म की उषा वायु अभी तक बिलकुल शांत नहीं हुई थी। गोविन्दी गंगा-बैल भरने गयी थी। और जल-तट की शीतल निर्जनता का आनन्द उठा रही थी। नहसा उसे सोमदत्त आता हुआ दिखायी दिया। गोविन्दी ने आँखें से मुँह हिँगा लिया और कलसा लेकर चलने ही को थी कि सोमदत्त ने सामने आकर कहा—जरा ठहरो, गोविन्दी, तुमसे एक बात कहना है। तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि तुमसे कहुँ या जान० से ?

गोविन्दी ने धीरे से कहा—उर्ही से कह दीजिए।

सोम०—जी तो मेरा भी यही चाहता है; लेकिन तुम्हारी दीनता पर दया आती है। जिस दिन मैं ज्ञानचन्द्र से यह बात कह दूँगा, तुम्हें इस घर से निकलना पड़ेगा। मैंने सारी बातों का पता लगा लिया है। तुम्हारा बाप कौन था, तुम्हारी माँ की क्या दशा हुई, यह सारी कथा जानता हूँ। क्या तुम समझती हो कि ज्ञानचन्द्र यह क्या भुक्त कर तुम्हें अपने घर में रखेगा? उसके विचार कितने ही स्वाधीन हां; पर जीती मक्की नहीं निगल सकता।

गोविन्दी ने यर-थर कोपते हुए कहा—बब आप सारी बातें जानते हैं, तो मैं क्या कहूँ? आप जैसा उचित समर्थ, करें; लेकिन मैंने तो आपके साथ कभी कोई बुराई नहीं की।

सोम०—तुम लोगों ने गाँव में मुझे कहीं मुँह दिखाने के योग्य नहीं रखा। तिसपर कहती हो, मैंने तुम्हारे साथ कोई बुराई नहीं की! तीन साल से कालिन्दी को आश्रय देकर मेरी आत्मा को जो कष्ट पहुँचाया है, वह मैं ही जानता हूँ। तीन साल से मैं इसी फिक्र में था कि कैसे इस अपमान का दण्ड दूँ। अब वह अवसर पाकर उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकता!

गोविन्दी—अगर यारकी यही इच्छा है कि मैं यहो न रहूँ, तो मैं चली जाऊँगी, आज ही चला जाऊँगी; लेकिन उनसे आप कुछ न कहिए। आपके पेरों पड़ती हूँ!

सोम०—कहों चली जाओगी!

गोविन्दी—ओर कहीं ठिकाना नहीं है, तो गंगाजी तो है।

सोम०—नहीं गोविन्दी, मैं इतना निर्देशी नहीं हूँ। मैं केवल इतना चाहता हूँ कि तुम कालिन्दी को अपने घर से निकाल दो और मैं कुछ नहीं चाहता। तोन दिन का समय देता हूँ, खूब सोन-विचार ला। अगर कालिन्दी तीसरे दिन तुम्हारे घर से न निकली, तो तुम जानोगी।

सोमदत्त वहाँ से चला गया। गोविन्दी कलमा लिए मूर्ति की भौंति खड़ी रह गयी। उसके मुम्मुख कठिन समस्या ग्रा लड़ी दूँ थी, वह थी कालिन्दी!

घर में एक ही रह सकती थी। दोनों के लिए उस घर में स्थान न था। क्या कालिन्दी के लिए वह अपना घर, अपना स्वर्ग त्याग देगी? कालिन्दी अकेली है,

पति ने उसे पहले ही छोड़ दिया है, वह जहाँ जाहे जा सकती है, पर वह अपने प्राणधार और प्यारे बच्चे का छोड़कर कहाँ जायगी ?

लेकिन कालिन्दी से वह क्या कहेगी ? जिसके साथ इतने दिन तक बहनों की तरह रही, उसे क्या वह अपने घर से निकाल देगी ? उसका बच्चा कालिन्दी से कितना हिला हुआ था, कालिन्दी उसे कितना चाहती थी । क्या उस परित्यक्ता दोनों को वह अपने घर से निकाल देगी ? इसके सिवा और उपाय ही क्या था ? उसका जीवन अब एक स्वार्थी, दम्भी व्यक्ति की दया पर अवलभित था । क्या अपने पति के प्रेम पर वह भरोसा कर सकती थी ! ज्ञानचन्द्र सहृदय थे, उदार थे, विचारशील थे, दृढ़ थे ; पर क्या उनका प्रेम अपमान, व्यंग्य और बहिष्कार जैसे आघातों को सहन कर सकता था !

(३)

उसी दिन से गोविन्दी और कालिन्दी में कुछ पर्याप्त-सा दिलायी देने लगा । दानों अब बहुत कम साथ बैठती । कालिन्दी पुकारती—बहन, आकर खाना खा लो । गोविन्दी कहती—तुम खा ला, मैं फिर खा लूँगी । पहले कालिन्दी बालक को सारे दिन खिलाया करती थी, माँ के पास केवल दूध पीने जाता था । मगर अब गोविन्दी हर दम उसे अपने ही पास रखती है । दानों के बीच में कोई दोबार खड़ा हो गयी है । कालिन्दी बार-बार सोचती है, आजकल मुझसे यह क्यों रुकी हुई है ? पर उसे काई कारण नहीं दिलायी देता । उसे भय हो रहा है कि कदाचित् यह अब मुझे यहाँ नहीं रखना चाहती । इसी चिन्ता में वह गोते खाया करती है ; किन्तु गोविन्दी भी उससे कम चिन्तित नहीं है । कालिन्दी से वह स्नेह तोड़ना चाहता है ; पर उसकी म्लान मूर्ति देखकर उसके हृदय के ढुकड़े हो जाते हैं । उससे कुछ कह नहीं सकती । अवहेलना के शब्द मुँह से नहीं निकलते । कदाचित् उसे घर से जाते देखकर वह रो पड़ेगा । और जबरदस्ती रोक लेगा । इसां हैस-बैत में तीन दिन गुजर गये । कालिन्दी घर से निकली । तीसरे दिन संध्या-समय सामदत्त नदी के तट पर बड़ी देर तक खड़ा रहा । अन्त को चारों ओर छँचेरा लगा गया । फिर भी पोछे फिर फिकर जल न-रे की ओर देखता जाता था ।

रात के दस बज गये हैं । अभी ज्ञानचन्द्र घर नहीं आये । गोविन्दी घबर

रही है। उन्हें इतनी देर तो कभी नहीं होती थी। आज इतनी देर कहाँ लगा रहे हैं? शंका में उसका हृदय काँप रहा है।

सहसा मरदाने कमरे का द्वार खुलने की आवाज आयी। गोविन्दी दौड़ी हुई बैठक में आयी: लेकिन पति का मुख देखते ही उसकी सारी देह शिथिल पड़ गयी, उस मुख पर हास्य था: पर उस हास्य में भाष्य-तिरस्यर भलक रहा था। विधिवाम ने ऐसे सीधे-सादे मनुष्य को भी अपने कीड़ा-कौशल के लिए चुन लिया। क्या यह रहस्य रोने के योग्य था? रहस्य रोने की वस्तु नहीं, हँसने की वस्तु है।

ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी की ओर नहीं देखा। कपड़े उतारकर सावधानी से अलगनी पर रखे, जूता उताग और पर्श पर बैठकर एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगा।

गोविन्दी ने डरते-डरते कहा—आज इतनी देर कहाँ की? भोजन ठण्डा हो रहा है।

ज्ञानचन्द्र ने पर्श की ओर ताकते हुए कहा—तुम लोग भोजन कर लो, मैं एक मित्र के घर आकर आया हूँ।

गोविन्दी इसका आशय समझ गयी। एक छण के बाद फिर बोली— चलो, थांडा-सा ही खा लो।

शान०—अब बिलकुल भूख नहीं है।

गोविन्दी—तो मैं भी जाकर सो रहती हूँ।

ज्ञानचन्द्र ने अब गोविन्दी की ओर देखकर कहा—क्यों? तुम क्यों न खाओगी?

गोविन्दी—मैं तुम्हारी ही याली का जूठन खाया करती हूँ।—इससे अधिक वह और कुछ न कह सकी। गला भर आया!

ज्ञानचन्द्र ने समीप आकर कहा—मैं सच कहता हूँ, गोविन्दी, एक मित्र के घर भोजन कर आया हूँ। तुम जाकर खा लो।

(४)

गोविन्दी पलंग पर पर्शी हुई चिन्ता, नैराश्य और विश्वाद के अपार सागर में गोते खा रही थी। यदि कालन्दी का उसने बहिकार कर दिया होता, आज त

उसे इस विपर्चि का सामना न करना पड़ता : किन्तु यह अमानुषीय व्यवहार उसके लिए आसाध्य था और इस दशा में भी उसे इसका दुःख न था । ज्ञानचन्द्र की ओर से यां तिरस्कृत होने का भी उसे दुःख न था । जो ज्ञानचन्द्र नित्य धर्म और सज्जनता की दीर्घ मारा करता था, वही आज इसका इतनी निर्दयता से बहिष्कार करता हुआ जान पड़ता था, उस पर उसे लेश मात्र भी दुःख की ओर था । उसके मन को ये वेल एक ही मावना आनंदालित कर रही थी । वह अब इस घर में कैसे रह सकती है । अब तक वह इस घर की स्वामिनी थी ! इसलिए न कि वह अपने पति के प्रेम की स्वामिनी थी; पर अब वह प्रेम से बच्चित हो गयी थी । अब इस घर पर उसका क्या अधिकार था ? वह अब अपने पति को मुँह ही कैसे दिला सकती थी । । वह जानती था, ज्ञानचन्द्र अपने मुँह से उसके विशद एक शब्द भी न निकालेंगे; पर उसके विषय में ऐसी बातें जानकर क्या वह उससे प्रेम कर सकते थे ? कदापि नहीं ! इस वक्त न-जाने क्या समझकर चुप रहे । सबेरे तूफान उठेगा । कितने ही विचारशोल होंगे; पर अपने समाज से निकाला जाना कौन पसन्द करेगा ? स्त्रियों की मंसार में कमी नहीं । मेरी जगह हजारों मिल जायेंगी । मेरी किसी को क्या परवाए ? अब यहाँ रहना बेहयार्दि है । आखिर काई लाटी मारकर योड़े ही निकाल देगा । हथादार के लिए आँख का इशारा बहुत है । मुँह से न कहें, मग की बात और मात्र छिपे नहीं रहते; लेकिन भीड़ी निद्रा की गोद में सांचे हुए शिशु को देखकर ममता ने उसके अशक्त हृदय को और भी कातर कर दिया । इस अपने प्राणों के आधार को वह कैसे छोड़ेगी ?

शिशु को उसने गोद में उठा लिया और व्यङ्गी गंती रही । तीन साल कितने आनन्द से गुजरे । उसने समझा था कि इसी भाँति सारा जीवन कट जायगा ; लेकिन उसके भाग्य में इससे अधिक सुख भोगना लिला ही न था । करण वेदना में डूबे हुए ये शब्द उसके मुख से निकल आये—भगवान् ! अगर तुम्हें इस भाँति मेरी दुर्गति करनी थी, तो तीन साल पहले क्यां न की ? उस वक्त यदि तुमने मेरे जीवन का अन्त कर दिया होता, तो मैं तुम्हें धन्यवाद देती । तीन साल तक सौभाग्य के सुरम्य उत्थान में सौरभ, समीर और माधुर्य का आनन्द उठाने के बाद इस उत्थान ही को उजाइ दिया । हा ! जिस पीछे को उसने

अपने प्रेम-जल से सीधा था, वे अब निर्मम दुर्भाग्य के पैरों-तले कितनी निष्टुरता से कुचले जा रहे थे। ज्ञानचन्द्र के शील और स्नेह का स्मरण आया, तो वह रो पड़ी। मृदु स्मृतियाँ आ-आकर हृदय को मसोसने लगीं।

सहसा ज्ञानचन्द्र के आने से वह संभल बैठी। कठोर से कठोर बातें सुनने के लिए उसने अपने हृदय को कड़ा कर लिया; किन्तु ज्ञानचन्द्र के मुख पर रोष का चिन्ह भी न था। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—क्या तुम अभी तक सोयी नहीं? जानती हों, कै बजे हैं? बारह से ऊपर हैं।

गोविन्दी ने सहमते हुए कहा—तुम भी तो अभी नहीं सोये।

ज्ञानो—मैं न सोऊँ, तो तुम भी न सोओ? मैं न खाऊँ, तो तुम भी न खाओ? मैं बीमार पड़, तो तुम भी बीमार पड़? यह क्यों? मैं तो एक जन्म-पत्री बना रहा था। कल देनी होगी। तुम क्या करती रहीं, बोलो?

इन शब्दों में कितना सरल स्नेह था! क्या तिरस्कार के भाव इतने ललित शब्दों में प्रकट हो सकते हैं? प्रवञ्चकता क्या इतनी निर्मल हो सकती है? शायद सोमदत्त ने अभी वज्र का प्रहार नहीं किया। अवकाश न मिला होगा; लेकिन ऐसा है, तो आज घर इतनी देर में क्यों आये? भोजन क्यों न किया, मुझसे बाले तक नहीं, आँखें लाल हो गही थीं। मेरी आंखें उठाकर देखा तक नहीं। क्या यह सम्भव है कि इनका क्रोध शान्त हो गया हो? यह सम्भावना की चरम सीमा से भी बाहर है। तो क्या सोमदत्त को मुझ पर दया आ गयी? पत्थर पर दूब जमी? गोविन्दी कुछ निश्चय न कर सकी, और जिस भाँति यह-सुख-विहीन पर्याप्त दृक्ष की लौह में भी आनन्द से पाँव फैलाकर सोता है, उसकी अव्यवस्था ही उसे निश्चिन्त बना देती है, उनी भाँति गोविन्दी मानसिक व्य-प्रता में भी स्वस्थ हो गयी। मुस्कुराकर स्नेह-मृदुल स्वर में बोली—तुम्हारी ही राह तो देख रही थी।

यह कहते-कहते गोविन्दी का गला भर आया। व्याध के जाल में फङ्फङ्गाती हुई निःङ्गेया क्या मीठे राग गा सकती है? ज्ञानचन्द्र ने चारपाई पर बैठकर कहा—भूटी बात, रोज तो तुम अब तक सो जाया करती थीं।

(५)

एक सप्ताह बीत गया; पर ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी से कुछ न पूछा, और न

उनके बताव ही से उनके मनोगत भावों का कुछ परिचय मिला। अगर उनके व्यवहारों में कोई नवी नता थी, तो यह कि वह पहले से भी ज्यादा स्लेहशील, निर्दृढ़ और प्रकुप्त रहने हो गये। गोविन्दी का इतना आदर और मान उन्होंने कभी नहीं किया था। उनके प्रयत्नशील रहने पर भी गोविन्दी उनके मनोभावों को ताढ़ रही थी और उसका चित्र प्रतिदृष्ट शंका से नचल और जुब्ब रहता था। अब उसे इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं था कि सामदत्त ने आग लगा दी है। गीली लकड़ी में पड़कर वह चिनगारो बुफ जायगी, या जंगल की सूखी पत्तियाँ हाहाकार करके जल उठेंगी, यह कोन जान सकता है। लेकिन इस सताह के गुजरते ही अग्नि का प्रकोप होने लगा। ज्ञानचन्द्र एक महाजन के मुनीम थे। उस महाजन ने कह दिया—मेरे यहाँ अब आपका काम नहीं। जीविका का दूसरा साधन यजमानी। यजमान भी एक-एक करके उन्हें जवाब देने लगे। यहाँ तक कि उनके द्वार पर लोगों का आना-जाना बन्द हो गया। आग सूखी पत्तियों में लगाकर अब हरे बृक्ष के चारों ओर मँझाने लगी। पर ज्ञान चन्द्र के मुख में गोविन्दी के प्रति एक भी कटु, अमृदु शब्द न था। वह इस सामाजिक दण्ड की शायद कुछ परवा न करते, यदि दुर्भाग्यवश इसने उनकी जीविका के द्वारा न बन्द कर दिये होते। गोविन्दी सब कुछ समझती थी; पर संकोच के मारे कुछ न कह सकती थी। उसी के कारण उसके प्राणप्रिय पति की यह दशा हो रही है, यह उसके लिए छब्ब मरने की बात थी। पर, कैसे प्राणों का उत्सर्ग करे। कैसे जीवन-मोह से मुक्त हो। इस विपत्ति में स्वामी के प्रति उसके रोम-रोम से शुभ-कामनाओं की सरिता-सी बहती थी; पर मुँह से एक शब्द भी न निकलता था। भाग्य की सबसे निष्ठुर लीला उस दिन हुई, जब कालिन्दी भा बिना कुछ कहेन्मुने सोमदत्त के घर जा पहुँची। जिसके लिए यह सारी यातनाएँ फेजनी पड़ीं, उसी ने अन्त में बेवफाई की। ज्ञानचन्द्र ने सुना, तो केवल मुस्कुरा दिये; पर गोविन्दी इस कुटिल आचात को इतनी शान्ति से सहन न कर सकी। कालिन्दी के प्रति उसके मुख से अप्रिय शब्द निकल ही आये। ज्ञानचन्द्र ने कहा—उसे व्यर्थ ही कोसती हो प्रिये, उसका कोई दोष नहीं। भगवान हमारी परीक्षा ले रहे हैं। इस वक्त धैर्य के सिवा हमें किसी से कोई आशा न रखनी चाहिए।

जिन भावों को गोविन्दी कई दिनों से अन्तस्तल में दबाती चली आती

थी, वे धैर्य का बौख दूढ़ते ही बड़े बेग से बाहर निकल पड़े। पति के सम्मुख अपराधियों की भौंति हाथ बौंधकर उसने कहा—स्वामी। मेरे ही कारण आपको यह सारे पाप बेलने पड़ रहे हैं। मैं ही आपके कुल की कलंकिनी हूँ। क्यों न मुझे किसी ऐसी जगह भेज दोजिए, जहाँ कोई मेरी मृत्यु तक न देखे। मैं आपसे सत्य कहनी हूँ ..।

ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी को आंर कुछ न कहने दिया। उसे हृदय से लगाकर बोले—प्रिये, ऐसी बातों से मुझे दुःखी न करो। तुम आज भी उतनी ही परवित हो, जितनी उम समय थी, जब देवताओं के नमन मैंने आजीवन पत्नी-वत लिया था, तब मुझसे तुम्हारा परिचय न था। अब तो मेरी देह आंर मेरी आत्मा का एरु-एक परमाणु तुम्हारे अत्यन्त प्रेम में आलोकित हो रहा है। उपहास और निन्दा की तो बात भी क्या है, दुर्देव का कठोरनम आवात भी मेरे वत को भय नहीं कर सकता। अगर इब्बें, तो मायथ साथ इब्बें : तरें तो भार माय तरें। मेरे जीवन का मुख्य कर्तव्य तुम्हारं प्राप्त है। संसार इसके पीछे-बहुत पीछे है।

गोविन्दी को जान पड़ा, उनके सम्मुख कोड देव-मूरि लट्ठी है। स्थामी में डत्तनी श्रद्धा, इतनी भाक्त, उन आज तक कभी न द्वृष्टि थी। गर्व में उसका मनक ऊंचा हा गया और मुख पर स्वर्णीय आभा फलक पड़ी। उसने फिर कुछ कहने का याहस न किया :

(६)

सम्भवता अपमान और बहिकार को तुच्छ नमनकी है। उनके अभाव में ये बशाएँ प्राणान्तक हो जाती हैं। ज्ञानचन्द्र दिन-कन्दिन प्रर में पड़े रहते। प्रर से बाहर निकलने का उन्हें मादस न होता था। जबतक गोविन्दी के पास गहने थे, जबतक भोजन का चिन्ता न थी। किन्तु, जब यह आधार भी न रह गया, नो हालत आंर भी खराब हो गयी। कभी-कभी निगहार रह जाना पड़ता। अपनी व्यथा किससे कहें, कौन मित्र था ? कौन अपना था ?

गोविन्दी पहले भी हृष्ट-पुष्ट न थी ; पर अब तो अनाहार और अन्तर्वेदना के कारण उसकी देह और भोजीर्ण हो गयी थी। पहले शिशु के लिए दूध मोल लिया करती थी। अब इसकी सामर्थ्य न थी। बालक दिन-पर दिन दुर्बल होता

जाता था। मालूम होता था, उसे सूखे का गोंग हो गया है। दिन-के दिन बच्चा खुर्रा खाट पर पड़ा माता को नेराश्य-दण्डि से देखा करता। कदाचित् उसकी बाल-बुद्धि भी अवश्य को समझती थी। कभी किसी वस्तु के लिए हठ न करता। उसकी बालोचित सरलता, बच्चता और कीड़ा शीलता ने अब एक दीर्घ, आशा-विहीन प्रतीक्षा का रूप धारण कर लिया था। माता-पिता उसकी दशा देखकर मन-ही मन कुढ़-कुढ़कर रह जाते थे।

सन्ध्या का समय था। गोविन्दी अंधेरे घर में बालक के सिरहाने चिन्ता में मग्न बैठी थी। आकाश पर बादल लगे हुए थे और हवा के झंके उसके अद्दे नग्न शरीर में शर के समान लगते थे। आज दिन-भर बच्चे ने कुछ न खाया था। घर में कुछ था ही नहीं। कुधायिन से बालक कृपया रहा था; पर या तो रोना न चाहता था, या उसमें रोने की शक्ति ही न थी।

इनने में ज्ञानचन्द्र तेली के यहाँ से नेल लेकर आ पहुँचे। दीपक जला। दीपक के दीप प्रकाश में माता ने बालक का मुख रेखा, तो भहम लगी। बालक का मुख पीला पड़ गया था और पुतलियाँ ऊपर चढ़ गयी थीं। उसने ब्रह्मकर बालक को गोद में लटाया। देह ठण्डी थी। चिल्हाकर बोली - हा भगवान्! मेरे बच्चे को क्या हा गया? ज्ञानचन्द्र ने बालक के मुख की ओर देखकर एक ठण्डी सोस ली और बोले—इश्वर, क्या मारे दया-दाट हमारे ही ऊपर करोगे?

गोविन्दी—हाय! मेरा लाल मारे भूत के शियिल हो गया है। कोई ऐसा नहीं, जो इसे दो घूँट दूध पिला दे।

यह कह कर उसने बालक को पति की गोद में दे दिया और एक लुटिया लेकर कालेन्दी के घर दूध माँगने चली। जिस कालिन्दी ने आज क्षुः महीने से इस घर की ओर ताका न था, उसी के द्वार पर दूध की भिन्ना माँगने जाते हुए उसे कितनी गलानि, कितना संकोच हो रहा था, वह भगवान् के सिवा और कौन जान सकता है। यह वही बालक है, जिस पर एक दिन कालिन्दी प्राण देती थी; पर उसकी ओर से अब उसने अपना हृदय इतना कठोर कर लिया था कि घर में कई गौण लगाने पर भी एक चिल्लू दूध न भेजा। उसी की दशा-

भिन्ना मांगने आज, अँखेरी रात में, भोगती हुई गोविन्दी दौड़ी जा रही है। माता ! तेरे वास्तव्य को धन्य है !

कालिन्दी दीपक लिये दालान में खड़ी गय दुहा रही थी। पहले स्वामिनी बनने के लिए वह साँत से लड़ा करती थी। सेविका का पद उसे स्वीकार न था। अब सेविका का पद स्वीकार करके स्वामिनी बनी हुई थी। गोविन्दी को देखकर तुरन्त निकल आई और विस्मय से बालो—क्या है बहन, पानी-चूँदी में कैसे चली आयी ?

गोविन्दी ने सकुचाते हुए कहा—लाला बहुत भूता है, कालिन्दी ! आज दिन-भर कुछ नहीं मिला। योङ्गा-पा दूध लेने आयी हूँ ?

कालिन्दी भीतर जाकर दूध का मटका लिये बाहर निकल आयी और बांली—जितना चाहो, ले लो, गोविन्दी ! दूध की कौन कमी है। लाला तो अब चलता होगा ? बहुत जी चाहता है कि जाकर उसे देख आऊँ। लेकिन जाने का हुक्कन नहीं है। पेट पाजना है, तो हुक्कम मानना ही पड़ेगा। तुमने बतलाया हा नहीं, तो लाला के लिए दूध का तोड़ा योङ्गा ही है। मैं चली क्या आयी कि तुमने उमका मुँह देखने को भाँ तरसा डाला। मुझे कभी पूछता है ?

यह कहते हुए कालिन्दी ने दूध का मटका गोविन्दी के हाथ में रख दिया। गोविन्दी की आँखों से आँसू बहने लगे। कालिन्दी इतनी दया करेगी, इसकी उस आशा नहीं थी। अब उसे शत हुआ कि यह वही दयाशीला, सेवा-प्रायण रमणी है, जो पहले थी। लेशमात्र भी अन्तर न था। बोली—इतना दूध लेकर क्या करूँगी, बहन ? इस लोटिया में डाल दो।

कालिन्दी—दूध लांठे बड़े सभी खाते हैं। ले जाओ, (धीरे) यह मत समझो कि मैं तुम्हारे पर भूली आयी, तो बिरानी हो गयी। भगवान् की दया से अब यहाँ किसी बात की चिन्ता नहीं है। मुझसे कहने-भर की देर है। हों, मैं आऊँगी नहीं। इसमें लाचार हूँ। कल किसी बेला लाला को लेकर नदी किनारे आ जाना। देखने को बहुत जी चाहता है।

गोविन्दी दूध की हाँड़ों लिए घर चली, गर्व-पूर्ण आनन्द के मारे उसके पैर उड़े जाते थे। छोड़ी मैं पैर रखते ही बोली—जरा दिया दिला देना, यहाँ कुछ मुझायी नहीं देता। ऐसा न हो कि दूध गिर पड़े।

ज्ञानचन्द्र ने दीपक दिखा दिया। गोविन्दी ने बालक को अपनी गोद में लेंटाकर कठोरी से दूध पिलाना चाहा! पर एक घूँट से अधिक दूध कएट में न गया। बालक ने हिंचकी ली और अपनी जीवन-लीला। समाप्त कर दी।

करण रोदन से घर गैंज उठा। सारी बत्ती के लोग चौंक पड़े; पर जब मालूम हो गया कि ज्ञानचन्द्र के घर से आवाज आ रही है, तो कोई द्वार पर न आया। रात-भर भग्न-हृदय दम्पती रोते रहे। प्रातःकाल ज्ञानचन्द्र ने शव उठा लिया और इमशान की आर चले। सैकड़ों आदमियों ने उन्हें जाते देखा; पर कोई समीप न आया!

(७)

कुल-मर्यादा संसार की सबसे उत्तम वस्तु है। उसपर प्राण तक न्योद्धावर कर दिये जाते हैं। ज्ञानचन्द्र के हाथ से वह वस्तु निकल गयी, जिसपर उन्हें गौरव था। वह गर्व, वह आत्म-बल, वह तेज, जो परम्परा ने उनके हृदय में कूट-कूटकर भर दिया था, उसका कुछ अंश तो पहले ही मिट चुका था, बचा-खुचा पुत्र-शोक ने मिटा दिया। उन्हें विश्वास हो गया कि उनके अधिविचार का ईश्वर ने यह दण्ड दिया है। दुरवस्था, जीर्षता और मार्नासिक दुर्बलता सभी इस विश्वास को ढाढ़ करती थीं। वह गोविन्दी को अब भी निर्दोष समझते थे। उसके प्रति एक कटु शब्द उनके मुँह से न निकलता था, न कोई कटु भाव ही उनके दिल में जगह पाता था। विधि की कूर-कीड़ा ही उनका सर्वनाश कर रही है; इसमें उन्हें लेशमात्र भी सन्देह न था।

अब यह घर उन्हें फाड़े खाता था। घर के प्राण-से निकल गये थे। अब माता किसे गोद में लेकर चौंद मामा को बुलायेगी, किसे उबटन मलेगी, किसके लिए प्रातःकाल हल्लुवा पकायेगी। अब सब कुछ शून्य था, मालूम होता था कि उनके हृदय निकाल लिये गये हैं। अभ्यास, कष्ट, अनाहार, इन सारी विडम्बनाओं के होते हुए भी बालक की बाल-कीड़ाओं में वे सब-कुछ भूल जाते थे। उसके स्नेहमय लालन-पालन में ही अपना जीवन सार्थक समझते थे। अब चारों ओर अनधिकार था।

यदि ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें विपत्ति से उत्तेजना और साहस मिलता है, तो ऐसे भी मनुष्य हैं, जो आपत्ति काल में कर्त्तव्यहीन, पुरुषार्थहीन और उद्यमहीन

हो जाते हैं। शानचन्द्र शिक्षित थे, योग्य थे। यदि शहर में जाकर दौड़-भूप करते, तो उन्हें कहीं-न-कहीं काम मिल जाता। बेतन कम ही सही, रोटियों को तो मुहताज न रहते; किन्तु अविश्वास उन्हें घर से निकलने न देता था। कहाँ जायें, शहर में हमें कौन जानता है? अगर दो-चार परिचित प्राणी हैं भी, तो उन्हें मेरी क्याँ परवा हाने लगी? किंर इस दशा में जायें कैसे? देह पर साक्षित कपड़ा भी नहीं। जाने के पहले गोविन्दी के लिए कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करना आवश्यक था। उसका कोई सुभांता न था। इन्हीं चिन्ताओं में पड़े-पड़े उनके दिन कट्टे जाते थे। यहाँ तक कि उन्हें घर से बाहर निकलते भी बड़ा संकोच हाता था। गोविन्दी ही पर अब्बापार्जन का भार था। बेचारी दिन को बच्चों के कपड़े सीती, गत को दूसरां के लिए आदा पीसती। शानचन्द्र सब कुछ देखते थे और माथा ठोककर रह जाते थे।

एक दिन भोजन करते हुए शानचन्द्र ने आत्म धिकार के भाव से मुसकुरा-कर कहा—मुझना निलंज पुरुष भी संमार में दूसरा न हांगा, जिस छोंकी की कमाई खाने भी भाँत नहीं आती!

गोविन्दी ने भौं मिकोइकर कहा—तुम्हारे पेरो पढ़ती हूँ, मेरे सामने ऐसी बाँत मत किया करो। हैं तो यह सब मेरे ही कारन?

जान०—तुमने पूर्व जन्म में कोई बड़ा पाप किया था, गोविन्दी जो मुझ-जैसे निलंष्ट के पाले पड़ी। मेरे जीते ही तुम विध्वां हो। धिकार है ऐसे जीवन का!

गोविन्दी—तुम मेरा ही खून पियो; अगर फिर इस तरह की कोई बात मुँह से निकालो। तुम्हारी दामी बनकर मेरा जन्म सुफन्ह हो गया। मैं इसे पूर्व-जन्मों की तपस्या का पुनीत फल समझती हूँ। दुःख-मुख किम पर नहीं आता। तुम्हें भगवान् कुशल से रखें, यही मेरी अभिलाषा है।

जान०—भगवान् तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करें! खूब चक्की पीसो।

गोविन्दी—तुम्हारी बला से चक्की पीसती हूँ।

जान०—हाँ, हाँ, पीसो। मैं मना थोड़े ही करता हूँ। तुम न चक्की पीसोगी, तां यहाँ मँड़ां पर ताव देकर लायेगा कौन। अच्छा, आज तो दाल में धी है! नीक है, अब मेरो चौदो है, बेड़ा पार लग जायगा। इसी गाँव में बड़े-बड़े उच्च-कुल की कल्याण हैं। अपने वस्त्र-भूपण के सामने उन्हें ओर किसी की

परवा नहीं । पति महाशय चाहे चोरी करके लायें, चाहे डाका मारकर लायें,, उन्हें इसकी परवा नहीं । तुममें वह गुण नहीं है । तुम उच्च-कुल की कन्या नहीं हो । बाह री दुनिया ! ऐसी पवित्र देवियों का तेरे गहों अनादर होता है ! उन्हें कुल-कलंडिनी समझ जाता है । धन्य है तेगा व्यापार ! तुमने कुछ आंग सुना । सामदच ने मेरे असामियों को बहका दिया है कि लगान मत देना, देखें क्या करते हैं । बताओ, जमांदर की रकम कैसे चुकाऊंगा ?

गोविन्दी—मैं सामदत्त से जाकर पूछता हूँ न ? मना क्या करंगे, कोइ दिल्लगी है !

ज्ञान०—नहीं गोविन्दी, तुम उस दुष्ट के पास मत जाना । मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे ऊपर उसकी छाया भी पढ़े । उसे खूब अत्याचार करने दो । मैं भी देख रहा हूँ कि भगवान् कितने न्यायी हैं ।

गोविन्दी—तुम असामियों के पास क्यों नहीं जाने ? हमारे घर न आयें, हमारा लुच्छा पानी न पियें, या हमारे सपथे भी मार लंगे ?

ज्ञान०—बाह, इससे सरल तो कोई काम ही नहीं है । कह देंगे—हम रुपये दे चुके । सारा गाँव उनकी तरफ हो जायगा । मैं तो अब गाँव-भर का द्रोही हूँ न । आज खूब डटकर भोजन किया । अब मैं भी रईस हूँ; बिना हाथ-पैर हिलाये गुलछुरे उड़ाता हूँ । सच कहता हूँ, तुम्हारी आंग से अब मैं नेश्चिन्त हो गया । देश-विदेश भी चला जाऊँ, तो तुम अपना निर्वाह कर सकती हो ।

गोविन्द—कहीं जाने का काम नहीं है ।

ज्ञान०—तो यहाँ जाता ही कौन है । किसे कुत्ते ने काय है, जो यह सेवा छोड़कर मेहनत-मजूरी करने जाय । तुम सचमुच देवी हो, गोविन्दी !

भोजन करके ज्ञानचन्द्र बाहर निकले । गोविन्दी भोजन करके कोठरी में आयी, तो ज्ञानचन्द्र न थे । समझी—कहीं बाहर चले गये होंगे । आज पति की बातों से उसका चिच कुछ प्रसन्न था । शायद अब वह नौकरी-चाकरी की खोज में कहीं जानेवाले हैं । यह आशा बँध रही थी । हाँ, उनकी व्यङ्गोक्तियों का भाव उसकी समझ ही में न आता था । ऐसी बातें वह कभी न करते थे । आज क्या सुसनी !

कुछ कपड़े सीने थे । जाड़ों के दिन थे ; गोविन्दी धूप में बैठकर सीने

लगी । याकी ही देर में शाम हो गयी । अभी तक ज्ञानचन्द्र नहीं आये । तेल-बत्ती का समय आया, फिर भोजन की तैयारी करने लगी । कालिन्दी थोड़ा-सा दूध दे गयी थी । गोविन्दो को तो भूख न थी, अब वह एक ही बेला खाती थी । हाँ, ज्ञानचन्द्र के लिए रोटियाँ सेकनी थीं । सोचा—दूध है ही, दूध-रोटी ला लेंगे ।

भोजन बनाकर निकली ही थी कि सोमदत्त ने आँगन में आकर पूछा—
कहाँ है जानू?

गोविन्दी—कहाँ गये हैं ।

सोम०—कपड़े पहनकर गये हैं?

गोविन्दी—हाँ, बाली मिर्ज़ई पहने थे ।

सोम०—जूता भी पहने थे ।

गोविन्दी की छुती धड़-धड़ करने लगी । बाली—हाँ, जूता तो पहने थे ।
क्यों पूछते हों ?

सोमदत्त ने जांग से हाथ मारकर कहा—हाय जानू ! हाय !

गोविन्दी घबराकर बोली—हुआ, दादाजी ? हाय ! बताते क्यों नहीं ? हाय !

सोम०—अभी थाने से आ रहा हूँ । वहाँ उनकी लाश मिली है । रेल के नीचे दब गये ! हाय जानू ! मुझ हत्यारे को क्यों न मौत आ गयी ?

गोविन्दी के मुँह से फिर कोई शब्द न निकला । अन्तिम ‘हाय’ के साथ बहुत दिनों तक तड़पता हुआ प्राण-पक्षी उड़ गया ।

एक क्षण में गाँव की कितनी ही खियाँ जमा हो गयीं । सब कहती थीं—
देवी थी ! सती थी !

प्रातःकाल दो अर्धियाँ गाँव से निकलीं । एक पर रेशमी चुँदरी का कफन था, दूसरी पर रेशमी शाल का । गाँव के द्विजों में से केवल सोमदत्त साथ था । शेष गाँव के नीच जातिवाले आदमी थे । सोमदत्त ही ने दाह-क्रिया का प्रबन्ध किया था । वह रह-रहकर दोनों हाथों से अपनी छुती पीटता था, और जोर-जोर से चलता था—हाय ! हाय जानू !!

चोरी

हाय बचपन ! तेरी याद नहीं भूलती ! वह कच्चा, टूटा घर, वह उपाल का बिछौना ; वह नंगे बदन, नंगे पाँव खेतों में धूमना : आम के पेड़ों पर चढ़ना—सारी बातें आँखों के सामने फिर रही हैं। नमरांबे जूते पहनकर उस बक्क जितनी खुशी होती थी, अब 'फ्लेस्स' के बूटों में भी नहां होती। गरम पनुए रस में जो मजा था, वह अब गुलाब के शर्करत में भी नहीं : नबेने और कच्चे ढेरों में जो रस था, वह अब अंगूर और लीर मोहन में भी नहीं मिलता।

मैं अपने चबेरे भाई हलधर के साथ दूसरे गाँव में एक मौलवी साहब के यहाँ पढ़ने जाया करता था। मेरो उम्र आठ साल थी, हलधर (वह अब स्वर्ग में निवास कर रहे हैं) मुझसे दो साल जेठे थे। हम दोनों प्रातःकाल बासी रोटियाँ खा, दोपहर के लिए मठर और जौ का नबेना लेकर चल देते थे। फिर तो सारा दिन अपना था। मौलवी साहब के यहाँ कोड़ हाजिरी का र जस्टर तो था नहीं, और न रोरहाजिरी का जुर्माना ही देना पड़ता था। फिर डर किस बात का ! कभी तो याने के सामने खड़े सिपाहियाँ की कवायद देखते, कभी किसी मालू या बन्दर नचानेवाले मदारी के पीछे-पीछे धूमने में दिन काट देते, कभी रेलवे स्टेशन की ओर निकल जाते और गाड़ियाँ की बहार देखते। गाँड़ों के समय का जितना ज्ञान हमको था, उतना शायद याइम-टेबिल को भी न था। रास्ते में शहर के एक महाजन ने एक बाग लगवाना शुरू किया था। वहाँ एक कुआँ खुद रहा था। वह भी हमारे लिए एक दिलचस्प तमाशा था। बूढ़ा माली हमें अपनी भोपड़ी में बड़े प्रेम से बैठाता था। हम उससे झगड़-झगड़कर उसका काम करते। कहीं बाल्टी लिए पाँदों को सींच रहे हैं, कहीं खुरपी से क्यारियाँ गोड़ रहे हैं, कईं कंची से बेलों की पत्तियाँ छाँड़ रहे हैं ; उन कामों में कितना आनन्द था ! माली बाल-प्रकृति का परिषट था। हमसे काम लेता ; पर इस तरह मानो हमारे ऊपर कोई एहसान कर रहा है। जितना काम वह दिन भर में करता, हम घण्टे-भर में निबटा देते थे। अब वह माली नहीं है ; लेकिन

बाग हरा-भरा है। उसके पास से हाकर गुजरता हूँ, तो जो चाहता है, उन पेढ़ियों के गले मिलकर रोड़, और कहुँ—प्यारे, तुम मुझे भूल गये; लेकिन मैं तुम्हें नहीं भूला; मेरे हृदय में तुम्हारी याद अभी तक हरी है—उतनी ही हरा, जितां तुम्हारे पते। निष्ठार्थ प्रेम के तुम जोते-जागते स्वरूप हो।

कभी-कभी हम हफ्तों गैरहाजिर रहते; पर मौलवी साहब से ऐसा बहाना कर देते कि उनको चढ़ा हुई त्यारियों उतर जाती। उतनी कल्पना-शक्ति आज होती, तो ऐसा उपन्यास। लिख मारता कि लोग चकित रह जाते। अब तो यह हाल है कि बहुत सिर खपाने के बाद कोई कहानी सूझती है। लैर, हमारे मौलवी साहब दरख्ती थे। मौलवागिरी केवल शौक से करते थे। हम दोनों भाई अपने गाँव के कुरमों-कुम्हारों से उनकी खूब बड़ाई करते थे। यां कहिए कि हम मौलवी साहब के सफरी एजेंट थे। हमारे उद्योग से जब मौलवी साहब को कुछ काम मिल जा, तो हम फूले न समाते। जिस दिन कोई अच्छा बहाना न सूझता, मौलवी भाहव के लिए कोइं-न-कोई सांगात ले जाते। कभी सेर-आध सेर फालियाँ ताड़ लीं, तो कभी दम-पांच ऊब; कभी जौ या गेहूँ की हरी-हरी बालें ले लीं, इन सागांगों को देखते ही मौलवी साहब का क्रांघ शान्त हो जाता। जब इन चीजों की फसल न होती, तो हम सजा से बचने का कोई आँर ही उपाय सांचते। मौलवी साहब को चिड़ियों का शौक था। मकतब में श्यामा, बुलबुल, दहियल, और नंदलालों के पिंजरे लगकते रहते थे। हमें सबक याद हो या न हो, पर चिड़ियों को याद हो जाते थे। हमारे साथ ही वे भी पढ़ा करती थी। इन चिड़ियों के लिए बेसन पीसने में हम लोग खूब उत्साह दिखाते थे। मौलवी साहब सब लड़कों का पर्तिगंग पकड़ लाने की ताकीद करते रहते थे। इन चिड़ियों को पर्तिगंग से विशेष रूचि थी। कभी-कभी हमारी बला पर्तिगंग ही के सिर चली जाती थी। उनका बलिदान करके हम मौलवी साहब के रांद्र-रूप को प्रसन्न कर लिया करते थे।

एक दिन सबेरे हम दोनों भाई तालाब में मुँह धोने गये, तो हलधर ने कोई सफेद-सी चीज मुट्ठी में लेकर दिखायी। मैंने लपककर मुट्ठी खोली, तो उसमें एक रुपया था। चिस्मित होकर पूछा—यह रुपया तुम्हें कहाँ मिला?

हलधर—अम्माँ ने ताक पर रखा था; चारपाई खड़ी करके निकाल लाया।

धर में कोई सन्दूक या आलमारी तो थी नहीं; रुपगं-पैसे एक कुँचे ताक पर रख दिये जाते थे। एक दिन पहले चचाजी ने सन बेचा था। उसी के रुपये जर्मांदार को देने के लिए रखे हुए थे। हलधर को न-जाने क्यांकर पता लग गया। जब वर के सब लोग काम-धनवे में लग गये, तो अपनी चारपाई सड़ी की ओर उस पर चढ़कर एक रुपया निकाल लिया।

उस बक्त तक हमने कभी रुपया लुआ तक न था। वह रुपया देखकर आनन्द और भय की जो तरंगें दिल में उठी थीं, वे अभी तक याद हैं; हमारे लिए रुपया एक अलम्य वस्तु थी। मोलवी साहब को हमारे यहाँ से मिर्फ बारह आने मिला करते थे। महीने के अंत में चचाजी खुद जाकर पैसे दे आते थे। भला, कौन हमारे गर्व का अनुमान कर सकता है! लेकिन मार क भय आनंद में ध्यन डाल रहा था। रुपये अनगिनती तो थे नहीं। चोरी का खुल जाना मानी हुए बात थी। चचाजी के कोष का भी, मुझे तो नहीं, हलधर को प्रत्यक्ष अनुभव हा चुका था। यो उनसे ज्यादा सीधा-सादा आदमी दुनिया में न था। चची ने उनकी रक्षा का भार सिर पर न रख लिया हांता, ता कोई बनिया उन्हें बाजार में बेच सकता था; पर जब क्रोध आ जाता, ता फिर उन्हें कुछ न घूमता। और तो और, चचों भी उनके कोष का सामना करते इन्होंने थीं। हम दानों ने कई मिनट तक इन्हीं बातों पर विचार किया, और आंचिर यही निश्चय हुआ कि आयी हुई लद्दमी का न जाने देना चाहिए। एक तो हमारे ऊपर संरेह हापा ही नहीं, और अगर हुआ भी तो हम साफ इनकार कर जायेंगे। कहेंगे, हम रुपया लेकर क्या करते। योड़ा सोच-विचार करते, तो यह निश्चय पलट जाता, और वह वीभत्स लीला न होती, जो आगे चलकर हुई; पर उस समय हममें शांति से विचार करने की ज्ञानता ही न थी।

मुँह-हाथ धोकर हम दोनों धर आये और डरने-डरते अंदर कदम रखा। अगर कहीं इस बक्त तलाशी की नौबत आयी, तो फिर भगवान् ही मालिक हैं। लोकन सब लोग अपना-अपना काम कर रहे थे कोई हमसे न बोला। हमने नाश्ता भी न किया, चबैना भी न लिया; किताब बगल में दबायी और मदरसे का रास्ता लिया।

बरसात के दिन थे। आकाश पर बादल छाये हुए थे। हम दोनों खुश-खुश

मकतब चले जा रहे थे। आज काउन्सिल की मिनिस्ट्री पाकर भी शायद उतना आनन्द न होता। हजारों मंसुबे बौधते थे, हजारों हवाई किले बनाते थे। यह अवसर बड़े भाग से मिला था। जीवन में फिर शायद ही यह अवसर मिले। इसलिए रुपये को इस तरह खर्च करना चाहते थे कि ज्यादा-से-ज्यादा दिनों तक चल सके। यथापि उन दिनों पाँच आने सेर बहुत अच्छी मिठाई मिलती थी और शायद आधा सेर मिट्ठाई में हम दोनों अफर जाते; लेकिन यह स्वाल हुआ कि मिट्ठाई खायेंगे, तो रुपया आज ही गायब हो जायगा। कोई सर्ती चीज खानी चाहए, जिस में मजा भी आये, पेट भी भरे और पैसे भी कम खर्च हां। आंखिर अमरुदों पर हमारी नजर गयी। हम दोनों राजा हो गये। दो पैसे के अमरुद लिए। सुस्ता समय या, बड़े-बड़े बारह अमरुद मिले। हम दोनों के कुत्तों के दामन भर गये। जब हलधर ने खटकिन के हाथ में रुपया रखा, तो उसने सन्देह से देखकर पूछा—रुपया कहाँ पाया, लाला? चुरा तो नहीं लाये?

जबाब हमार पास तैयार था। ज्यादा नहीं, तो दो-तीन किताबें पढ़ ही चुके थे। विद्या का कुछ-कुछ असर हो चला था। मैंने भट से कहा मालवी साहब की कीस देनी है। घर में पैसे न थे, तो चत्ताजी ने रुपया दे दिया।

इस जबाब ने खटकिन का सदेह दूर कर दिया। हम दोनों ने एक पुलिया पर बैठकर स्वूप अमरुद खाये। मगर अब साढ़े पंद्रह आने पैसे कहाँ से ले जायें? एक रुपना छिपा लेना तो इतना मुर्शिकल काम न था। पैसों का ढेर कहाँ छिपता। न कमर में इतनी जगह थी और न जेब में इतनी गुजाइश। उन्हें अपने पास रखना अपनी नोरी का टिंडोरा पीटना था। बहुत सोनने के बाद यह निश्चय किया कि बारह आने तो मालवी साहब को दे दिये जायें, शेष साढ़े तीन आने की मिट्ठाई लड़े। यह फैसला करके हम लोग नकतब पहुँचे। आज कई दिन के बाद गंभीर थे। मालवी साहब ने बिगड़कर पूछा—इतने दिन कहाँ रहे?

मैंने कहा—मालवी साहब, घर में गमी हो गयी।

यह कहने-कहने बारह आने उनके सामने रख दिये। फिर क्या पूछना था? पैसे देखते ही मालवी साहब की बाल्कि खिल गयी। महीना स्तम्भ होने में अभी कई दिन बाकी थे। साधारणतः महीना चढ़ जाने और बार-बार तकाजे

करने पर कहीं पैसे मिलते थे। अबकी इतनी जल्दी पैसे पाकर उनका खुश होना कोई अस्वाभाविक बात न थी। हमने अन्य लड़कों की ओर सर्गर्व नेत्री से देखा, मानो कह रहे हों—एक तुम हो कि माँगने पर भी पैसे नहीं देते, एक हम हैं कि पेशगी देते हैं।

हम अभी सबक पढ़ हो रहे थे कि मालूम हुआ, आज तालाब का मेला है, दोपहर से छुट्टी हा जायगी। मौलवी साहब मेले में बुलबुल लड़ाने जायेंगे। यह खबर सुनते हो हमारी खुशी का ठिक्काना न रहा। बारह आने तो बैंक में जमा हो कर चुके थे; साढ़े तीन आने में मेला देखने की उहरान। खूब बहार रहेगी। मजे से रेवड़ियाँ खायेंगे, गालगाये उड़ायेंगे, झूले पर चढ़ेंगे और शाम को घर पहुँचेंगे: लेकिन मौलवी साहब ने एक कड़ी शर्त यह लगा दी थी कि सब लड़के छुट्टी के पहले अपना-अपना सबक सुना दें। जो सबक न सुना सकेगा, उसे छुट्टी न मिलेगा। नवाजा यह हुआ कि मुझे तो छुट्टी मिल गयी; पर हलधर कैद कर लिए गये। और कई लड़कां ने भी सबक सुना दिये थे, वे सभी मेला देखने चल पड़े। मैं भी उनके साथ हो लिया। पैसे मेरे ही पास थे; इसलिए मैंने हलधर को साथ लेने का इन्तजार न किया। तब हो गया था कि वह छुट्टी पाते हो मेले में आ जायें, और दोनों साथ-साथ मेला देखें। मैंने बचन दिया था कि जब तक वह न आयेंगे, एक पैसा भा खन न करूँगा; लेकिन क्या मालूम था कि दुर्भाग्य कुछ और ही लीला रन रहा है! मुझे मेला पहुँचे एक पराटे से ज्यादा गुजर गया; पर हलधर का कहीं पता नहीं। क्या अभी तक मौलवी साहब ने छुट्टी नहीं दी, या रास्ता भूल गये? आँखें फाड़-फाड़कर सबक की ओर देखता था। अकेले मेला देखने में जी भी न लगता था। यह संशय भी हो रहा था कि कहीं चारी खुल तो नहीं गयी, और चचाजी हलधर को पकड़कर घर तो नहीं ले गये! आखिर जब शाम हो गयी, तो मैंने कुछ रेवड़ियाँ खायीं और हलधर के हिस्से के पैसे जेब में रखकर धीरे-धीरे घर चला। रास्ते में ख्याल आया, मक्तब होता चलूँ। शायद हलधर अभी वहीं हा; मगर वहा सन्नाथ था। हाँ, एक लड़का खेलता हुआ मिला। उसने मुझे देखते ही जार से कह-कहा मारा और बाला—बचा, घर जाओ, तो कैसी मार पड़ती है। नुम्हारे चना आये थे। हलधर को मारते-मारते ले गये हैं। अबी, ऐसा तानकर घूसा मारा

कि मियाँ हलधर मुँह के बल गिर पड़े। यहाँ से घसीटते ले गये हैं। तुमने मौलवी साहब वी तनख्वाह दे दी थी; वह भी ले ली। अभी कोई बहाना सोच लो, नहीं तो बेमाव को पड़ेगी।

मेरी सिट्री-पिट्री भूल गयी, बदन का लटू सूख गया। वही हुआ, जिसका मुझे शक हो रहा था। पैर मन-मन भर के हो गये। घर की ओर एक-एक कदम चलना मुश्किल हो गया। दंती-देवताओं के जितने नाम याद थे, सभी की मानता मानी—किसी को नड़ू, किसी का पेंड़, किसी को बतासे। गाँव के पास पहुँचा, तो गाँव के डीह का सुमरन किया: क्योंकि अपने हलके में डीह ही की इच्छा सर्व-प्रधान होती है।

यह सब कुछ किया: लेकिन ज्यांज्यां घर निकट आता, दिल की घड़कन बढ़ती जाती थी। घराये, उमड़ी आर्नी थीं। मालूम होता था—आसमान फटकह गिरा ही नहता है। देखता था—लोग अपने-अपने काम लाङ्ड-लाङ्ड भारं जा रहे हैं, गोरु भी पूँछ उड़ाये घर वी ओर उछलने-कुदंते चले जाते थे। चिंडिया अपने घोमलों की ओर उड़ी चली आर्नी थीं। लाकन में उसी मन्द गात से चला जाता था; माना परों में शक्ति नहीं। जी नहता था—जार का बुखार चढ़ आये, या कहा न्हाइ लग जाय: लाकन कहने से थाबा गधे पर नहीं चढ़ता। बुलाने में मौत नहीं आता, बीमरी का तो वहना ही क्या! कुछ न हुआ, और धीरं-धीरं चलने पर मा घर सामने आ ही गया। अब क्या हो? हमारे ढार पर इमली का एक घना तृक्ष था। मैं उसी की आड़ में छिप गया कि जरा और अधेरा हो जाय, तो चुपके से नुम जाऊँ और अम्मों के कमर में चारपाई के नीचे जा चैटूँ। जब सब लोग मों जायेंग, ता अम्मों से सारी कथा कह सुनाऊंगा। अम्मों कभी नहीं मारती। जरा उनके सामने झूठ-झूठ रोऊँगा, तो वह और भी पिश्ल जायेगी। रात कट जाने पर फिर कौन पूछता है। सुबह तक भवका गुस्सा उण्डा न; जायगा। अगर ये मंसूबे पूरे हो जाते, तो इसमें सन्देह नहीं कि मैं बेदाग बन जाता। लेकिन वहाँ तो विधाता को कुछ और ही मंजूर था। मुझे एक लड़के ने देख लिया, और मेरे नाम की रट लगाते हुए सीधे मंरे घर में भागा। अब मेरे लिए कोई आशा न रहो। लाचार घर में दाखिल हुआ, तो सहसा मुँह से एक चीख निकल गयी, जैसे मार खाया

हुआ कुता किसी को अपनी ओर आता दखकर भय से चिन्हाने लगता है। बरोठे में पिताजी बैठे थे। पिताजी का स्वास्थ्य इन दिनों ठुक्र खराब हो गया था। छुट्टी लेकर घर आये हुए थे, यह तो नहीं कड़ सकता कि उन्हें शिकायत क्या थी; पर वह मूँग की दाल खाते थे, और संध्या-समय शीशे की गिलास में एक बोतल में से कुछ उंडेल-उंडेलकर पीते थे। शायद यह किमी तजुरबेकार हकीम की बताई हुई दवा थी। दवाएँ मब बासनेवाली और कड़वी होती हैं। यह दवा भी बुरी ही थी; पर पिताजी न-जाने क्यों इस दवा को खूब मजा लेन्टेकर पीते थे। हम जो दवा पीते हैं, नों आँखें बन्द करके एक ही घुँड़ में गटक जाते हैं; पर शायद इस दवा का अमर धारे-धीरे पीने में ही होता हो। पिता जी के पास गाँव के दो-तीन और कभी-कभी चारपाँच और रोगी भी जमा हो जाते; और वन्यां दवा पाते रहते थे। नुश्कल से खाना खाने उठते थे। इस समय भी वह दवा पी रहे थे। रोगियों की मन्डली जमा थी, मुझे देखते ही पिता जी ने लाल-लाल आँखें करके पूछा—कहाँ थे अब तक?

मैंने दवा जबान में कहा—कहीं तो नहीं।

‘ब्रव चौरी का आदत सीख रहा है! बाल, तूने रूपया चुराया कि नहीं?’

मेरी जबान बन्द हो गयी। मामने नंगा न तशार नाच रहा था। शब्द भी निकलते हुए डरता था।

पिताजी ने जोर में डाँटकर पूछा—बालता क्यों नहीं? तूने रूपया चुराया कि नहीं?

मैंने जान पर खेलकर कहा—मैंने कहा...

मुँह से पूरी बात भी न निकलने पाशी थी कि पिताजी त्रिकरान रूप धारणा किये दाँत पीसते, भटकर उठे और हाथ उठाये मेरी ओर चले। मैं जोर से चिन्हाकर रोने लगा। ऐसा चिन्हाया कि पिताजी भी सहम गये। उनका हाथ उठा ही रह गयर। शायद समझे कि जब अभी से इसका यह हाल है, तब तमाचा पढ़ जाने पर कहीं इसकी जान ही न निकल जाय। मैंने जो देखा कि मेरो हिक्मत काम कर गयो, ता और भी गजा फाह-फाहकर रोने लगा। इतने मैं मंडली के दो-तीन आदिमियों ने पिताजी को पकड़ लिया और मेरो ओर

इशारा किया कि भाग जा ! बड़चे बहुशा ऐसे मौके पर और भी मचल जाते हैं, और व्यर्थ मार ला जाते हैं। मैंने बुद्धिमानी से काम लिया।

लेकिन अन्दर का दृश्य इससे कहीं भयंकर था। मेरा तो खून सर्द हो गया, हलधर के दानों हाथ एक खम्मे से बैंधे थे, सारी देह धूल धूसरित हा रही थी, और वह अभी तक सिसक रहे थे। शायद वह आँगन भर में लोटे थे। ऐसा मालूम हुआ कि सारा आँगन उनके आँसुओं से भर गया है। चची हलधर को ढाँट रही थीं, आंर अम्माँ बैठी मसाला पीस रही थीं। सबसे पहले मुझपर चची की निगाह पड़ी। बालाँ—लां, वह भी आ गया। क्यों रे, रुपया तूने चुराया था कि इसने ?

मैंने निश्चंक होकर कहा—हलधर ने।

अम्माँ बालाँ—अगर उसी ने चुराया था, तो तूने घर आकर किसी से कहा क्यों नहीं ?

अब भूठ बोले बगौर बचना मुश्किल था। मैं तो समझता हूँ कि जब आदमी को जान का खतरा हो, तो भूठ बोलना ज़म्म्य है। हलधर मार लाने के आदी थे, दो-चार घूँसे और पड़ने से उनका कुछ न बिगड़ सकता था। मैंने मार कभी न लायी थी। मेरा तो दो ही चार घूँसों में काम तमाम हो जाता। फिर हलधर ने भी तो अपने को बचाने के लिए मुझे फँसाने की चेष्टा की थी, नहीं तो चची मुझसे यह क्यों पूछती—रुपया तूने चुराया था हलधर ने ? किसी भी सिद्धान्त से मेरा भूठ बोलना इस समय स्तुत्य नहीं, तो ज़म्म्य जरूर था। मैंने क्लूटे ही कहा—हलधर कहते थे किसी से बताया, तो मार ही डालूँगा।

अम्माँ—देखा, वही बात निकली न ! मैं तो कहती ही थी कि बच्चा की ऐसा आदत नहीं; पैसा तो वह हाथ से लूँता ही नहीं; लेकिन सब लोग मुझी को उल्लू बनाने लगे।

हल०—मैंने तुमसे कब कहा था कि बताओगे, तो मारूँगा ?

मैं—वहीं, तालाब के किनारे तो !

हल०—अम्माँ, बिल्कुल भूठ है !

चची—भूठ नहीं, सच है। भूठा तो तू है, और तो सारा संसार सच्चा है, तेरा नाम निकल गया है न ! तेरा बाप नौकरी करता, बाहर से रुपये कमा

लाता, चार जने उसे भला आदमी कहते, तो तू भी सच्चा होता। अब तो तू ही भूड़ा है। जिसके भाग में मिठाई लिखी थी, उसने मिठाई लायी। तेरे भाग में तो लात लाना ही लिखा था।

यह कहते हुए चची ने हलधर को खाल दिया और हाथ पकड़कर भीतर ले गयी। मेरे विषय में स्लेह-पूर्ण आलोचना करके अम्माँ ने पौंसा पलट दिया था, नहीं तो अभी बेचारे पर न-जाने कितनी मार पड़ती। मैंने अम्माँ के पास बैठकर अपनो निर्दोषिता का राग खब अलापा। मेरी सरल-हृदय माता मुझे सत्य का अवतार समझती थी। उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि सारा अपराध हलधर का है। एक छण बाद मैं गुड़-चबेना लिये कोठरी से बाहर निकला। हलधर भी उसो बक्क चिउड़ा खाते हुए बाहर निकले। हम दोनों साथ-साथ बाहर आये और अपनी-अपनी बीती मुनाने लगे। मेरी कथा सुखमय थी, हलधर की दुःखमय; पर अन्त दोनों का एक या—गुड़ और चबेना।

लाभ्यन

मुंशी श्यामकिशोर के द्वार पर मूँबू मेहतर ने भाकू लगायी, गुसलखाना धां-धाकर साफ किया और तब द्वार पर आकर गृहिणी से बाला—माँजो, देख लीजिए, सब साफ कर दिया। आज कुछ खाने को मिल जाय, सरकार!

देवीरानी ने द्वार पर आकर कहा—अभी तो तुम्हें महीना पाये दस दिन भी नहीं हुए। फिर इतनी जल्द फिर माँगने लगे?

मूँनू—क्या करूँ, माँजो, खर्च नहीं चलता। अकेला आदमी, घर देखूँ कि काम करूँ?

देवी—तो अग्रह क्यां नहीं कर लेते?

मूँनू—रपये माँगने दे, सरकार! यहाँ खाने में ही नहीं बचता, थैली कहा से लाऊँ?

देवी—अभी तो तुम जवान हो, कबतक अकेले बैठे रहोगे?

मूँनू—हुजूर की इतनी निगाह है, तो कहीं-न-कहीं ठीक ही हो जायगी; सरकार कुछ मदद करेंगी न?

देवी—हाँ हाँ, तुम श्रीकन्तक करो, मुझसं जो कुछ हो सकेगा, मैं भी दे दूँगी।

मूँनू—सरकार का मिजाज बड़ा अच्छा है। हुजूर इतना ख्याल करती है। दूसरे घरों में तो मालिनीं बात भी नहीं पूछतीं। सरकार को अल्पाह ने जैसी सुकल-सूरत दी है, वैसा ही दिल भी दिया है। अल्पाह जानता है, हुजूर को देखकर भूल-प्यास जाती रहती है। बड़े-बड़े घर की औरतें देखती हैं, मुदा हुजूर के तलुओं की बराबरी भी नहीं कर सकतीं।

देवी—चल भूठे! मैं ऐसी कौन बड़ी खूबसूरत हूँ।

मूँनू—अब सरकार में क्या कहूँ। बड़ी-बड़ी खत्रानियों को देखता हूँ; मगर गोरेपन के सिवा और कोई बात नहीं। उनमें यह नमक कहाँ, सरकार!

देवी—एक रपये में तुम्हारा काम चल जायगा!

मूँनू—भला सरकार, दो रपये तो दे दें।

देवी—अच्छा, यह लो और जाओ।

मुन्नू—जाता हूँ, सरकार! आप नाराज न हों, तो एक बात पूछँ ?

देवी—क्या पूछते हों, पूछो? मगर जल्दी, मुझे नूत्ता जलाना है।

मुन्नू—तो सरकार जायें; फिर कभी कहूँगा।

देवी—नहीं-नहीं; कहो, क्या बात है? आभी कुछ ऐसी जल्दी नहीं है।

मुन्नू—दालमण्डी में सरकार के कोई रहने हैं क्या?

देवी—नहीं, यहाँ तो कोई नातेदार नहीं है।

मुन्नू—तो कोई दोस्त होंगे। सरकार को अक्सर एक कोठे पर से उतरने

देखता हूँ।

देवी—दालमण्डी तो रेहिंडयाँ का मुहल्ला है?

मुन्नू—हाँ सरकार, रेहिंडयाँ बहुत हैं यहाँ; लेकिन सरकार तो सीधे-सादे आदमी मालूम होते हैं। यहाँ रात को देर से तो नहीं आते?

देवी—नहीं, शाम होने गे पहले ही आ जाते हैं और फिर कहीं नहीं जाते। हाँ, कभी-कभी लाइवे री अलबना जाते हैं।

मुन्नू—बस-बस, यही बात है, हजूर! मांका मिले, तो इशारे से मममा टीजिएगा सरकार, कि रात को उथर न जाया करें। आदमी का दिल किनना ही साफ हो, लेकिन देखने वाले नो शक करने लगते हैं।

इतने ही में बाबू श्यामकिशोर आ गए। मुन्नू ने उन्हें सलाम किया, बाल्ड उठायी और चलता हुआ।

श्यामकिशोर ने पूछा—मुन्नू क्या कह रहा था?

देवी—कुछ नहीं, अपने दुबड़े रो रहा था। खाने को माँगता था। दां स्पष्टे दे दिये हैं। बात-चीत बड़े टंग से करता है।

श्याम—तुम्हें तो बातें करने का मरज है। और कोई नहीं तो मेहतर ही सही। इस भुतने से न-जाने तुम कैसे बातें करती हो!

देवी—मुझे उसकी सूरत लेकर क्या करना है। गरीब आदमी है। अपना दुःख सुनाने लगता है, तो कैसे न सुनूँ?

बाबू साहब ने बेते का गजरा रुमाल से निकाल देवी के गले में डाल दिया; किन्तु देवी के मुख पर प्रसन्नता का कोई चिह्न न दिखायी दिया। तिरछी

निगाहों से देखकर बोलीं—आप आजकल दालमणडी की सैर बहुत किया करते हैं ?

श्याम०—कौन ? मैं !

देवी—जी हाँ, तुम ! मुझसे तो लाइब्रेरी का बहाना करने जाते हो, और वहाँ जल्से होते हैं !

श्याम०—बिलकुल भूठ, सोल्हों आने भूठ ! तुमसे कौन कहता या ? यही मुन्नू ?

देवी—मुन्नू ने मुझसे कुछ नहीं कहा ; पर मुझे तुम्हारी योह मिलती रहती है।

श्याम०—तुम मेरी टांड मत लिया करो । शक करने से आदमी शक्की हो जाता है, और तब बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं । भला, मैं दालमणडी क्यों जाने लगा ? तुमसे बढ़कर दालमणडी में और कौन है ? मैं तो तुम्हारी इन मद-भरी आँखों का आशिक हूँ । अगर अप्सरा भी सामने आ जाय, तो भी आँख उठाकर न देखूँ । आज शारदा कहाँ है ?

देवी—नीचे खेलने चली गयी है ।

श्याम०—नीचे मत जाने दिया करो । इक्के, मोटरें बघियों दौड़ती रहती हैं । न जाने कब क्या हो जाय । आज ही अरदली बाजार में एक बार-दात हो गयी । तीन लड़के एक साथ दब गये ।

देवी—तीन लड़के !! बबा गजब हो गया । किसकी मोटर थी ?

श्याम०—इसका अभी तक पता नहीं चला । ईश्वर जानता है, तुम्हें यह गजरा बहुत खिल रहा है ।

देवी—(मुसकिराकर) चलो, बातें न बनाओ ।

(२)

तीसरे दिन मुन्नू ने देवी से कहा—सरकार, एक जगह साराई ठीक हो रही है ; देलिए, कौल से फिर न जाइएगा । मुझे आपका बड़ा भरासा है ।

देवी—देल ली औरत ? कैसी है !

मुन्नू—सरकार, जैसी तकदीर में है, वैसी है । घर की रोटियाँ तो मिलेंगी, नहीं तो अपने हाथों ठोकना पड़ता या । है क्या कि मिजाज की सीधी है । हमारे

जात की औरतें बड़ी चक्कल होती हैं, हुजूर ! सैकड़े पीछे एक भी पाक न मिलेगी ।

देवी—मेहतर लोग अपनी औरतों को कुछ कहते नहीं !

मुन्—क्या कहें, हुजूर ! डरते हैं कि कहीं अपने आसना से चुगली खाकर हमारी नौकरी-वाकरी न छुड़ा दे । मेहतरानियाँ पर बाबू साहबों की बहुत निगाह रहती है, सरकार ?

देवी—(हँसकर) चल भूठे ! बाबू साहबों की ओरतें क्या मेहतरानियों से भी गयी-गुजरी होती हैं !

मुन्—अब सरकार कुछ न कहलायें, हुजूर को लोड़कर और तो कोई ऐसी बबुआइन नहीं देखता, जिसका कोई बखान करे । बहुत ही लोग आदमी हूँ, सरकार; पर बबुआइनों की तरह मेरी आंरत होती, तो उससे बोलने को जी न चाहता । हुजूर के चेहरे मोहरे की कोई आंरत मैंने तो नहीं देखी ।

देवी—चल भूठे, इतनी खुशामद करना किससे सीखा ?

मुन्—खुशामद नहीं करता, सरकार; सच्ची बात कहता हूँ । हुजूर एक दिन लिङ्की के सामने खड़ी थीं । रजा मियाँ की निगाह आप पर पड़ गयी । जूते को बड़ी दुकान है उनकी । अल्जाह ने जैसा धन दिया है वैसा ही दिल भी । आप को देखते ही आँखें नीचे कर लीं । आज बातों-बातों में हुजूर की सकल-सूरत को सराहने लगे । मैंने कहा—जैसी सूरत है, वैसा सरकार को अल्जाह ने दिल भी दिया है ।

देवी—अच्छा, वह लौंबा-सा सौंबले रंग का जवान है !

मुन्—हाँ हुजूर, वही । मुझसे कहने लगे कि किसी तरह एक बार फिर उन्हें देख पाता; लेकिन मैंने डॉटकर कहा—खबरदार ? मियाँ, जो मुझसे ऐसी बातें कहा । वहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी ।

देवी—तुम ने बहुत अच्छा किया । निगोड़े की आँख फूट जाय; जब इधर से जाता है, लिङ्की की ओर उसकी निगाह रहती है । कह देना—इधर भूलकर भी न ताके !

मुन्—कह दिया है, हुजूर, हुक्म हो तो चलूँ । और तो कुछ साफ नहीं

करना है ? सरकार के आने की बेला हो गयी है । मुझे देखेंगे तो कहेंगे—यह क्या बातें कर रहा है ।

देवी—ये राजियाँ लेते जाओं । आज चूल्हे से बन जाओगे ।

मुनू—अल्लाह हजूर को सलामत रखे ! मेरा तो यही जी नाहता है कि इसी दरवाजे पर पढ़ा रहूँ थीर एक टुकड़ा खालिया करूँ । सच कहता हूँ, हजूर को देखकर भूख-प्यास जानी रहती है ।

मुनू जा ही रहा था कि बाबू श्याम किशोर ऊपर आ पहुँचे । मुनू की पिछली बात उनकं कान में पड़ गयी थी । मुनू ज्योही नीचे गया, बाबू साहब देवी में बोले—मैंने तुम में कह दिया था कि मुझे को मँह न लगाओ; पर तुमने मेरी बात न मानी । छुटे आदमी एक घर की बात दूसरे घर पहुँचा देते हैं, इन्हें कभी मँह न लगाना चाहिये । भूख-प्यास बन्द होने की क्या बात थी !

देवी—वया जानें, भूख-प्यास कैसी ? ऐसी तो कोई बात न थी ।

श्याम०—यी क्यां नहीं, मैंने साफ मुना ?

देवी—मुझे तो ख्याल नहीं आता । होगी कोई बात । मैं कौन उसकी भव बातें चेत्री सुना करती हूँ ।

श्याम०—तो क्या वह दीवार से बातें करता है ? देवी, नीचे एक आदमी इस खिड़की की तरफ ताकता चला जाता है । इसी मोहल्ले का मुसलमान लौंडा है । जूते की दूकान करता है । तुम क्यां इस खिड़की पर खड़ी रहा करती हों ?

देवी—चिकं तो पड़ी हुई है ।

श्याम०—चिकं के पास खड़ी होने से बाहर का आदमी तुम्हें साफ देख सकता है ।

देवी—यह मुझे मालूम न या । अब कभी खिड़की खोलूँगी ही नहीं ।

श्याम०—हाँ, कायदा क्या ? मुनू को अन्दर मत आने दिया करो ।

देवी—गुसलव्याना बाँन साफ करेगा ?

श्याम०—वैर आये, मगर उससे बातें न करनी चाहिये । आज एक नया थिएटर आया है । चलो, देख आयें । मुना है, इसके एक्टर बहुत अच्छे हैं ।

इतने में शारदा नीचे से मिठाई का दोनों लिये दौड़ती हुई आयी । देवी ने पूछा—अरी, यह मिठाई किसने दी ?

शारदा—राजा भैशा ने तो दी है। कहते थे—तुम का अच्छे-अच्छे खिलाने ला दूँगा।

श्याम०—राजा भैशा कौन है?

शारदा—वही तो है, जो आभी इधर से गये हैं!

श्याम०—वही तो नहीं, जो लम्बा-सा सौंवले रंग का आदमी है!

शारदा—हाँ हाँ, वही-वही। मैं अब उनके घर रोज जाऊँगी?

देवी—क्या तू उसके घर गयी थी?

शारदा—वही तो गोद में उठाकर ले गये थे।

श्याम०—तू नीचे खेलने मत जाया कर। किसी दिन मोटर के नीचे डब जापगी। देखती नहीं, कितनी मोटर आती रहती हैं।

शारदा—राजा भैशा कहने थे, तुम्हें मोटर पर हवा खिलाने ले चलोंगे।

श्याम०—तुम बैठी-बैठी क्या किया करती हों, जो तुमसे एक लड़की की निगरानी भी नहीं हो सकती?

देवी—इतनी बड़ी लड़की को संदूक में बंद करके नहीं रखा जा सकता।

श्याम०—तुम जवाब देने में ता बढ़त तेज हो, वह मैं जानता हूँ। यह क्यों नहीं कहती कि बातें करने से कुरसत नहीं मिलती।

देवी—बातें मैं किससे करती हूँ? यहाँ तो कोई पड़ोसिन भी नहीं?

श्याम०—मुनू, तो हैं हैं!

देवी—(आठ दबाकर) मुनू, क्या मेरा कोई सगा है, जिससे बैठी बातें किया करती हूँ? गरीब आदमी हूँ, अपना दुःख रोना है, तो क्या कह दूँ? मुझमें तो दुष्कारते नहीं बनता।

श्याम०—मैर, खना बना लो, नौ बजे तमाशा शुरू हो जायगा। मात्र बज गये हैं।

देवी—तुम जाओ, देख आओ, मैं न जाऊँगी।

श्याम०—तुम्हीं तो महीनों से तमाशों की रट लगाये हुए थीं। अब क्या हो गया? क्या तुमने कसम ला ली है कि यह जो बात कहें, वह कभी न मानूँगी?

देवी—जाने क्यों तुम्हारा ऐसा खयाल है। मैं तो तुम्हारी इच्छा पाकर ही कोई काम करती हूँ। मेरे जाने से कुछ और पैसे खर्च हो जायेंगे और रुपये कम

‘यह जायेंगे तो तुम मेरी जान लाने लगोंगे, यही सोचकर मैंने कहा था। अब तुम कहते हो, तो चली चलूँगी। तमाशा देखना किसे दुरा लगता है।

(३)

नींबजे श्यामकिशोर एक ताँगे पर बैठकर देवी और शारदा के साथ थिएटर देखने चले। सड़क पर योँही ही दूर गये थे कि पीछे से एक और ताँगा आ पहुँचा। इस पर रजा बैटा हुआ था, और उसके बगल में—हाँ, उसके बगल में—बैटा था मुन्नू महंतर, जो बाबू साहब के घर में सफाई करता था। देवी ने उन दोनों को देखते ही भिर झुका लिया। उसे आश्चर्य हुआ कि रजा और मुन्नू में इतनी गाढ़ी मित्रता है कि रजा उसे ताँगे पर बिटाकर सैर कराने ले जाता है। शारदा रजा को देखते ही बोल उठी—बाबूजी, देखो, वह राजा भैया आ रहे हैं। (ताली बजाकर) राजा भैया, इधर देख, हम लोग तमाशा देखने जा रहे हैं।

रजा ने मुसाकिरा दिया; मगर बाबू साहब मारे कोध के तिलमिला उठे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि ये दुष्ट केवल मेरा पीछा करने के लिए आ रहे हैं। इन दोनों में जरूर सौँठनोँठ है। नहीं तो रजा मुन्नू को साथ क्यों लेता? उनसे पीछा लुँडाने के लिए उन्हें ताँगेवाले से कहा—और तेज ले चलो, देर हो रही है। ताँगा तेज हो गया। रजा ने भी अपना ताँगा तेज किया। बाबू साहब ने जब ताँगे को धीमा करने को कहा, तो रजा का ताँगा भी धीमा हो गया। आखिर बाबू साहब ने भूँझलाकर कहा—तुम ताँगे को छावनी की ओर ले चलो, हम थिएटर देखने जायेंगे। ताँगेवाले ने उनकी ओर कुतूहल से देखा और ताँगा फेर दिया। रजा का ताँगा भी फेर गया। बाबू साहब को इतना कोध आ रहा था कि रजा को ललकारूँ; पर डरते थे कि कहीं झगड़ा हो गया, तो बहुत-से आदमों जमा हो जायेंगे और व्यर्थ ही भैंस होगी। लहू का घैंट पी-कर रह गये। अपने ही ऊपर भूँझलाने लगे कि नाहक आया। क्या जानता था कि ये दोनों शैतान भैर पर सवार हो जायेंगे। मुन्नू को तो कल हा निकाल दूँगा। बारे रजा का ताँगा कुछ दूर चलकर दूसरी तरफ मुड़ गया, और बाबू साहब का कोध कुछ शांत हुआ; किंतु अब थिएटर जाने का समय न था। छावनी से घर लौट आये।

देवी ने कोठे पर आकर कहा—मुफ्त में तोंगेवाले को दो रुपये देने पड़े ।

श्यामकिशोर ने उसकी ओर रक्षोषक दृष्टि से देखकर कहा—आँ और मुझे से बातें करो, और खिड़की पर खड़ी हो-होकर रजा को छुवि दिखाओ । तुम न जाने क्या करने पर तुली हुई हो !

देवी—ऐसी बातें मुँह से निकालते तुम्हें शर्म नहीं आती ? तुम मेरा व्यर्थ ही अपमान करते हो, इसका फल अच्छा न होग । मैं किसी मर्द को तुम्हारे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझती, उस अभागे मेहतर की बया हकीकत है ! तुम मुझे इतनी नीच समझते हो ?

श्याम०—नहीं, मैं तुम्हें इतना नीच नहीं समझता; मगर बेसमझ जरूर समझता हूँ । तुम्हें इस बदमाश को कभी मुँह न लगाना चाहिए था । अब तो तुम्हें मालूम हो गया कि वह छुटा हुआ शोहदा है, या अब भी कुछ शक है ?

देवी—मैं उसे कल ही निकाल दूँगी ।

मुंशीजी लेटे; पर चित्त अशांत था । वह दिन-भर दफ्तर में रहते थे । क्या जान सकते थे कि उनके पोछे देवी क्या करती हैं । वह यह जानते थे कि देवी पतिव्रता है; पर यह भी जानते थे कि अपनी छुवि दिखाने का मुन्दरियाँ को मरज होता है । देवी जरूर बन-ठनकर खिड़की पर खड़ी होती है, और मुहल्ले के शोहदे उसको देख-देखकर मन में न जाने क्या-क्या कल्पना करते होंगे । इस व्यापार को बन्द कराना उन्हें अपने काबू से बाहर मालूम होता था । शोहदे वशी-करण की कला में निपुण होते हैं । ईश्वरन करे, इन बदमाशों की निगाह किसी भले घर की बहू-बेटी पर पड़े ! इनसे पिंड कैसे छुड़ाऊँ ?

बहुत सोचने के बाद अन्त में उन्होंने वह मकान छोड़ देने का निश्चय किया । इसके सिवा उन्हें दूसरा कोई उपाय न सूझा । देवी से बोले—कहां, तो यह घर छोड़ दूँ । इन शोहदों के बीच में रहने से आबरू बिगड़ने का भय है ! देवी ने आपत्ति के भाव से कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा !

श्याम०—आखिर तुम्हीं कोई उपाय बताओ ।

देवो—मैं कान-सा उपाय बताऊँ, और किस बात का उपाय ? मुझे तो घर छोड़ने की काई ज़रूरत नहीं मालूम होती । एक-दो नहीं, लाख-दो लाख शोहदे हों, तो क्या । कुत्तों के भूकने के भय से भला कोई अपना मकान छोड़ देता है ?

श्याम—कभी कभी कुचे काट भी तो लेते हैं ।

देवी ने इसका कोई जवाब न दिया और तर्क करने से पति की दुश्चिन्ताओं के बढ़ जाने का भय था । यह शक्ति तो है ही, न जाने उसका क्या आशय समझ दें ।

नीचरे ही दिन श्याम बाबू ने वह मकान छोड़ दिया ।

(४)

इस नये मकान में आने के एक सप्ताह पीछे एक दिन मुन्नू सिर में पट्टी बांधे, लाठी से टेकना हुआ आया और आवाज दी । देवी उसकी आवाज पहचान गयी, पर उसे दुर्कारा नहीं । जाकर किंवाड़ घोल दिये । पुराने घर के ममाचार जाने के लिए उसका वित्त लालायित हो रहा था । मुन्नू ने अन्दर आकर कहा —सरकार, जब से आरने वह मका । छोड़ दिया, कसम ले लीजिए, जो उधर एक बार भी गया हूँ । उस घर का देखकर राना आने लगता है । मेरा भी जी चाहता है कि इसी महल्ले में आ जाऊँ । पागलां की तरह इधर-उधर मारा-मारा फिरा करता हूँ, सरकार, किसी काम में जी नहीं लगता । बस हर बड़ी आग ही की याद आती रहती है । हजूर जितनी परवरिस करती थीं। उननी अब कोन करेगा ? यह मकान तो बहुत ल्लौथ है ।

देवी—तुम्हारे हो कारन तो वह मकान छोड़ना पड़ा ।

मुन्नू—मेरे कारन ! मुझमें कौन-सी खता हुई, सरकार ?

देवी—तुम्हाँ तो तोगे पर रजा के साथ बेठे मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे । ऐसे आदमी पर आदमी का शक होता ही है ।

मुन्नू—अरं सरकार, उस दिन की बात कुछ न पूछिए । रजा मियाँ को एक बड़ी गाहब से मिलने जाना था । वह ल्लौबनी में रहते थे । मुझे भी साथ बिटा लिया । उनका साइन कहा गया हुआ था । मारे लिहाज के आपके ताँगे के आगे न नकालते थे । सरकार उस शोहदा कहती है । उसका-सा भला आदमी महल्ले भर में नहीं है । पाँचां बखत की नमाज पढ़ता है, हजूर, तीसों रोजे रखता है । घर में बीबी-बच्चे सभी माँजूद हैं । क्या मजाल कि किसी पर बदनिंगाह हो ।

देवी—खैर होगा, तुम्हारे सिर में पट्टी क्यां बँधी है ?

मुन्नू—इसका माजरा न पूछिए, हजूर ! आपकी बुराई करते किसी को देखता हूँ, तो बदन में आग लग जाती है । दरवाजे पर जो हलवाई रहता था, कहने लगा —मेरे कुछ पैस बाचूजों पर आते हैं । मैंने कहा —वह ऐसे आदमी नहीं हैं कि तुम्हारे पैस हजग कर जाते । बस, हजूर, इसी बात पर तकरार हो गयी । मैं तो दूकान के नीचे नाली थो रहा था । वह ऊपर ने झुटकर आया और मुझे ढकेल दिया । मैं बेल्वर लड़ा था, नारो खाने चित सड़क पर गिर पड़ा । चोट तो आया; मगर मैंने भी दूकान के नामने बचा को इतनी गालियाँ मुनाफी कि याद ही करते होंगे । अब शाव अच्छा हो रहा है, हजूर ।

देवी—राम ! राम ! नाहक लड़ाई लेने गये । भीषण-सी बात तो थी । कह देते - तुम्हारे पैस आते हैं, तो जाकर मौग लाओ । है तो शहर ही में, दूसरे देश में तो नहीं आग गये ?

मुन्नू—हजूर आपसा बुराई नुन के नहीं रहा जाना, फिर चाहे वह अपने घर लाउ ही क्यों न हो, भेड़ पड़ूँगा । वह महाजन होगा, तो अपने घर का होगा । यहों कान उसका दिशा लाने हैं ।

देवा—उम घर में अभी कोई आया नहीं ?

मुन्नू—कई आदमी देखने आते, हजूर: मगर जहाँ आप रह चुकी हैं, वहाँ अब दूनरा वांग रह सकता है ? हन लोगों ने उन लोगों को भड़का दिया । रजा मियों तो हुजूर, उसी दिन में म्याना-नीना ल्लोइ विठे हैं । चिंटथा को याद करके के रोया करने हैं । हजूर को हम गरीबों की याद कहे को आती होंगी ?

देवी—याद क्यों नहीं आती ? मैं आदमी नहीं हूँ ? जानवर तक थान क्लूटने पर दा-नार दिन नारा नहीं लाते । नह पैस लो, कुछ बाजार में लाकर खा लो, भूखे होंगे ।

मुन्नू—हजूर का दुआ से खाने की तरी नहीं है । आदमी का दिल देखा जाता है, हजूर ! पैसा का कान बात है । आपका दिया तो खाते ही हैं । हजूर का मिजाज ऐसा है कि आदमी बिना कोई का गुलाम हो जाता है । तो अब चलूँगा, हजूर, बाचूजों आते होंगे । कहेंग—यह शैतान यहाँ फिर आ पहुँचा ।

देवी—अभी उनक आने में बड़ी देर है ।

मुन्नू—ओहो, एक बात तो भूला ही जाता था । रजा मियों ने बिटिया

के लिए ये खिलाने दिये थे । बातों में ऐसा भूल गया कि इनकी मुध ही न रही । कहाँ हे बिंद्या !

देवी—अभी तो मदरसे से नहीं आयीः मगर इतने खिलाने लाने की क्या जरूरत थी ? श्रेर ! रजा ने तो गजब ही कर दिया । भेजना ही था, तो दो चार आने के खिलाने भेज देते । अंकेली मेम तीन-चार रुपये से कम की न द्वारी । कुल गिलाकर तास-पंनीस रुपये से कम के खिलाने नहीं हैं ।

मुन्नू—क्या जाने गुरकर, मैंने तो कर्मा खिलाने नहीं खींदे । तास-पंतीस रुपये के ही होंगे, तो उनके लिए कान-सी बड़ी बात है ? अंकेली दूकान से पचास रुपये रोज़ की आमदनी है, हजूर !

देवी—नहीं, इनको लाया लो जाओ । इतने खिलाने लेकर वह क्या करंगी ? मैं सफ एवं मेम रखे लेती हूँ ।

मुन्नू—हजूर, रजा मिथा को बड़ा रंज होगा । मुझे तो जीता ही न हुआँगे । बड़ हाँ मुहब्बती आदमी है, हजूर ! बीबी दो-चार दिन के लिए मैंके चली जाती है, तो बनेन हो जाते हैं ।

सहसा शारदा पाठशाला में आ गयी और खिलाने देन्हते ही उनपर दृढ़ पड़ी । देवी ने डॉकर कहा—ममा करती है, क्या करती है ? मेम ले ले, और भव लेकर क्या चरसी ?

शारदा—मैं तो चब लूँगी । नम का भोटर पर बैठकर दोँड़ाऊँगी । तुना पीछ-पीछे दाढ़ागा । इन बरतनों में गुड़या के लाने बगाऊँगी । कहाँ से आये हैं, अम्मो ? बना दा ।

देवी—कहा ये नहीं आयेः मैंने देखने को मँगवाये थे । तू इनमें से कोइ एक लो ले ।

शारदा—मैं चब लूँगा, मेरा अम्मो न, चब ले लीजिए । कौन लाया है, अम्मो ?

देवी—मुन्नू, तुना लालोंने लेकर जाओ ! सिर्फ एक मेम रहने दो ।

शारदा—कहा न लाने हो मुन्नू, बता दो ?

मुन्नू—हमार राजा नेया ने तुम्हारे लिए भेजे हैं ।

शारदा—राजा भैया ने भेजे हैं । ओ हो ! (नाचकर) राजा भैया बड़े

अच्छे हैं। कल अपनी महेलियों का दिल्लाऊंगी। किसी के पास ऐसे खिलौने न निकलेंगे।

देवी—अच्छा, मुन्नू, तुम अब जाओ। रजा भर्या में कह देना, फिर यहाँ खिलौने न भेजें।

मुन्नू चक्का गया, तो देवी ने शारदा में कहा—ला बेटी, तेरे खिलौने रख दूँ। बाबूजी देखेंगे, तो बिगड़ेंगे और कहेंगे कि रजा भर्या के खिलौने क्यां लिये? ताड़नाड़कर कैक देंगे। भूलकर भी उनमें खिलौना की नव्वा न करना।

शारदा—हाँ, अम्मा, रख दो। बाबूजी तोड़ देंगे।

देवी—उनसे कभी मत कहना कि राजा भैया ने खिलौने भेजे हैं, नहीं तो बाबूजी राजा भैया को मारेंगे, और तुम्हारे कान भी काट लेंगे। नहंगे, लड़की भिलमंगी हैं, सबसे खिलौने माँगती फिरती हैं।

शारदा—हाँ, अम्मा, रख दो। बाबूजी तोड़ देंगे।

इतने में बाबू श्यामकिंशार भी दफ्फनर से आ गये। भौंह चढ़ी हुई थी। आते-ही-आते बोले—वह रीतान मुन्नू, इस मुहल्ले में भी आने लगा। मैंने आज उसे देखा। क्या यहाँ भी आया था?

देवी ने हिचकिचाते हुए कहा—हाँ, आया तो था।

श्याम०—और तुमने आने दिया? मैंने मना न किया था कि उसे कभी अंदर कदम न रखते देना।

देवी—आकर द्वार घटखटाने लगा, तो क्या करती?

श्याम०—उसके साथ वह शोहदा भो रहा होगा?

देवी—उसके साथ और कोई नहीं था।

श्याम०—तुमने आज भी न कहा होगा, यहाँ मत आया कर!

देवी०—मुझे तो इसका खयाल न रहा। आर अब वह यहाँ भया करने आयेगा?

श्याम०—जो करने आज आया था, वही करने फिर आयेगा। तुम मेरे मुँह में कालिख लगाने पर तुम्ही दूई हो।

देवी ने कोध से एंडकर कहा—मुझ से तुम ऐसी ऊर्धवाँग वाँ न। किया करो, समझ गये? तुम्हें ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म भी नहा आती? एक

बार पहले भी तुमने कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। आज फिर तुम वहो बात कर रहे हो। अगर नीसरी बार ये शब्द मैंने सुने, तो नतीजा बुरा होगा, इतना कहे देती हूँ। तुमने मुझे काउं बेश्या समझ लिया है?

श्याम०—मैं नहीं चाहता कि वह मेरे घर आये।

देवी०—तो मना क्यों नहीं कर देते? मैं तुम्हें रोकती हूँ?

श्याम०—तुम क्यों नहीं मना कर देती?

देवी—तुम्हें कहने क्या शर्म आती है?

श्याम०—मेरा भना करना व्यर्थ है। मेरे गना करने पर भी तुम्हारी इच्छा पाकर उसका आना-जाना होता रहेगा।

देवी ने आठ चक्काकर कहा अच्छा, अगर वह आगा ही रहे, तो क्या हाँनि है? मेहनर सभी घरों में आया-जाया करते हैं।

श्याम०—अगर मैंने मुनूँ को कभी अपने द्वार पर फिर देखा, त तुम्हारी कुशल नहीं, इतना सभभाये देता हूँ।

यह कहते हुए श्यामकिशार नीचे जले गये। आंर देवी लम्बित-सी खड़ी रह गयी। तब उसका हट्टय इम अपमान, लांड्रा और आंवश्वास के आधात से पीड़ित हा उत्ता। वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसका सब भ बड़ी चांट जिस बात से लगी, वह यह थी कि मेरे पर्ति भूझे इतनी नीच, इतनी निलज्ज समझते हैं। जो काम बेश्या भी न करेगी, उसका मंदेह मुझ पर कर रहे हैं।

(५)

श्यामकिशार के आते ही शारदा अपने खिलाने उताकर भाग गयी थी कि कहा बाबूजी तोड़ न ढाले। नीचे जाकर वह मोचने लगी कि इन्हें कहाँ छिपा कर रखें। वह इसी सोन में थी कि उसकी एक संहली आँगन में आ गयी। शारदा उस अपने खिलाने दिखाने के लिये आतुर हो गयी। इस प्रलोभन को वह किसी तरह न रोक सकी। अभी तो बाबूजी ऊपर है, कौन इतनी जल्दी आये जाते हैं। तब नक क्यों न महेली को अपने खिलाने दिखा दूँ? उसने सहेली को बुला लिया, और दोनों नये खिलाने देखने में मन हो गयी कि बाबू श्याम-किशार के नीचे आने की भी उन्हें खबर न हुई। श्यामकिशार खिलाने देखते ही भपटकर शारदा के पास जा पहुँचे और पूछा—तूने ये खिलाने कहाँ पाये?

शारदा की घिनवी बँध गयी। मारे भय के यर-यर कोंपने लगी। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

श्यामकिशोर ने फिर गरजकर पूछा—बोलनी क्या नहीं, तुम्हें किसने खिलाने दिये?

शारदा रोने लगी। तब श्यामकिशार ने उसे कुमलाकर कहा—रो मत, हम तुम्हें मारेंगे नहां। तुम्हसे इतना हो पूछते हैं, तूने ऐसे सुन्दर विनोने कहाँ पाये?

इस तरह दोनों बार दिलासा देने से शारदा को कुछ धैर्य बँधा। उसने सारी कथा कह मुनायी। हा अनर्थ! इससे कहाँ अच्छा होता कि शारदा माँन ही रहती। उसका गूँगी हो जाना गी इससे अच्छा था। देवी कोई बहाना करके बला सिर से टाल देती; पर हाँनहार को काँग यल सकता है? श्यामकिशोर के रोम-रोम ने ज्वाला निकलने लगी। खिलाने वहाँ छोड़कर वह धम-धम करते हुए ऊपर गये और देवी के कन्धे दोनों हाथों से झँझोड़कर बोले—तुम्हें इस घर में रहता है या नहीं? साफ-साफ कह दो। देवी अभी तक खड़ी रिस-कियाँ ले रही थी। यह निर्मम प्रश्न भुनकर उसके आँखूं गायब हो गये। किसी मारी विपत्ति की आशंका ने इस हल्केमें आश्राम को भुला दिया, जैसे घातक की तलवार देवकर कोई प्राण। रोग शाया से उड़कर भागे। श्यामकिशोर की ओर भयातुर नेत्रों से देवा; पर मुँह से कुछ न बोली। उसका एक-एक रोम माँन भाषा में पूछ रहा था—इस प्रश्न का क्या मतलब है?

श्यामकिशोर ने फिर कहा—तुम्हारी जो इच्छा हो, साफ-साफ कह दो। अगर मेरे साथ रहते-रहते तुम्हारा जो ऊब गया हो, तो तुम्हें अग्न्यार है। मैं तुम्हें कैद करके नहीं रखना चाहता। मेरे साथ तुम्हें लृत-करण करने की ज़रूरत नहीं। मैं सहर्ष तुम्हें विदा करने का तैयार हूँ। जब तुमने मत में एक बात निश्चय कर ली, तो मैंने भी निश्चय कर लिया। तुम इस घर में अब नहीं रह सकती, रहने के योग्य नहीं हो।

देवी ने आवाज को सँभालकर कहा—तुम्हें आजकल क्या हो गया है, जो हर वक्त जहर उगलते रहते हों? अगर मुझसे जी ऊब गया है, तो जहर दे दो, जला-जलाकर क्यों जान मारते हों? मेहनर से बातें करना तो ऐसा अपराध न था। जब उसने आकर पुकारा, तो मैंने आकर द्वार खोल दिया।

अगर मैं जानती कि जरा-भी बात का बतंगड हां जायगा, तो उसे दूर ही से दुत्कार देती ।

श्याम०—जी चाहता है, तालू से जबान खींच लें । बातें होने लगीं, हशारे होने लगे, नादें आने लगे । अब वाकी क्या रहा ?

देवी—क्यों नाहक वाव पर नमक लिड़कते हो ? एक अबला की जान लेकर कुछ पा न जाओगे !

श्याम०—मैं भूठ कहता हूँ ?

देवी—हाँ, भूठ कहते हो ।

श्याम०—ने खिलाने कहाँ में आये ?

देवी का कलंजा धक्का-में हो गया । काटो, नो बद्दन में लहू नहीं । समझ गयी, इस वक्त ग्रह विंगड़े हुए हैं, सर्वनाश के सभी संगोग मिलते जाते हैं । ये निरांड़े खिलाने न-जाने किम तुमी साइट में आये ! मैंने लिए ही क्यों, उसी वक्त लौटा क्यों न दिये ! बात बनाकर बोची—आग लगे, वही खिलाने तोहफे हो गये ! बच्चों को कोई कैसे रोके, किसी की मानने हैं । कहती रही, मतः मगर न मानी, तो मैं क्या करती । हाँ, यह जानती कि इन खिलाने पर मेरी जान मारी जायगी तो जबरदस्ती छीनकर फेंक देती ।

श्याम०—उनके माथ और कौन-कौन-मां जीजें आयी हैं, भला नाहती हो, तो अभी लाओ ।

देवी—जो कुछ आशा होगा, इसी घर ही में होगा । देव व्यंग्य नहीं लेते ! इतना बड़ा पर भी नहीं है कि दो-चार दिन देखते लग जायें ?

श्याम०—मुझे इतनी फुरसत नहीं है । खौंखत इसी में है कि जो जीजें आयी हां, लाकर मेरे सामने रख दो । यह तो हां ही नहीं सकता कि लड़की के लिए खिलाने आये और तुम्हारे लिए कोइं सांगान न आये । तुम भरी गंगा में कसम खाओ, तो भी मुझे विश्वास न आयेगा ।

देवी—तो घर में देख व्यंग्य नहीं लेने ;

श्यामाकशीर ने पूँसा तानकर कहा—कह दिया, मुझे फुरसत नहीं है । छीधे से सारी जीजें लाकर रख दो; नहीं तो इसी दम गला दबाकर मार डालूँगा ।

देवी—मारना हो, तो मार डालो; जो नीजे आयी ही नहीं, उन्हें मैं दिखा कहाँ से दूँ।

श्यामकिशोर ने क्रोध से उन्मत्त होकर देवी को इतनी जांर से घका दिया कि वह नारों खाने चित जपीन पर गिर पड़ो। तब उपरे गजे पर ताद रवाहर बोले—दबा दूँ गला ! न दिखलायेगी तू उन नीजों को ?

देवी—जो अरमान हा, पूरे कर लो ।

श्याम०—चूत पो जाऊँगा ! तूने समझा क्या है ?

देवी—अगर दिल की प्यास बुझी हो, तो पी जाओ ।

श्याम०—फिर तो उस मेहनर से बातें न करोगो ? अगर अब कभी मुन्नू या उस शांहदे को द्वार पर देखा, तो गला काट लूँगा ।

यह कहकर बावूजी ने देवी को लूँड़ दिया। और बाढ़र चले गये; लेकिन देवी उसी दशा में बड़ी देर तक पड़ी रही। उसके मन में इन समय पति प्रेम की मर्यादा-रक्षा का लेश भी न था। उसका अनन्त करण भनिकार के लिये विकल हो रहा था। इस वक्त अगर वह मुनती कि श्यामकिशोर को किसी ने बाजार में जूता सं पोशा, तो कशनिं वह मुश्य होती। कई दिनों तक पानी से भीगने के बाद, आज वह खांका पाफर प्रेम की दीवार भूमि पर गिर पड़ी, और मन की रक्षा करनेवाली काई सावना न रहा। आज देवन मैंकोन और लोकलाज की हलकी सी रस्सी रह गयी है, जा एक झटके में टूट मकती है।

(६)

श्यामकिशोर बाहर चले गये, तो शारदा भी अपने निंगाँने लिये हुए पर भूमि बाहर निकली। बावूजी खिलाने को देवकर कुलु बालं नहाँ, तो अब उसे किसकी चिन्ता और किसका भय ! अब वह क्यों न अपनी यहेजियाँ को खिलाने दिखाये। सड़क के उस पार एक हलवाई का गकान था। हलवाई की लड़की अपने द्वार पर खड़ी थी। शारदा उसे खिलाने दिल्लाने चली। बीच में मड़क थी, सवारी-गाड़ियाँ और मोटरों का ताँता बैंधा हुआ था। शारदा को अपनी धून में किसी बात का ध्यान न रहा। बालोचित उन्मुक्ता से भरी हुई वह खिलाने लिये दौड़ी। वह क्या जानती थी कि मृत्यु भी उसी तरह प्रणां का खिलाना खेलने के लिए दीड़ी आ रही है। सामने एक मोटर आती हुई दिलाई दी। दूसरी

आंर से एक बग्गी आ रही थी। शारदा ने चाहा, दौड़कर उस पार निकल जाय। मोटर ने बिगुल बजाया; शारदा ने जोर मारा कि सामने से निकल जाय; पर हाँनहार को कौन टालता! मोटर बालिका का रैंडनी ढुई चली गयी। सड़क पर एक मॉड की लोअथ पड़ी रह गयी। खिलाने ज्यां-केन्यां थे। उन में से एक भी न दृश्य था! खिलाने रह गये, खेलनेवाला चला गया। दोनों में कौन स्थापी है और कौन अस्थापी, इसका फैसला कौन करे!

चारों ओर से लोग ढाँड़ पड़े; और! यह तो बाबूजी की लड़की है, जो ऊपरवाले मकान में रहते हैं। लोअथ कौन उठाये? एक आदमी ने लपककर द्वार पर पुकारा—जी! आपकी लड़की तो मड़क पर नहीं खेल रही थी! जरा नीचे तो आ जाइए।

देवी ने कुँजे पर न्यूट हाँकर मड़क की ओर देखा, तो शारदा की लोअथ पड़ी ढुई थी। नी। मारकर बेतहाशा नीचे ढौँडी, और मड़क पर आकर बालिका को गोट में उठा लिया। उम के पैर थर-थर कौँपने लगे। इस ब्रह्मपात ने उन न्यूट भिंगत कर दिया। रोना भी न आया।

भुहलूल के कई आउगो पूँछने लगे बाबूजी कहाँ गये हैं? उनको कैसे बुलाया जाय?

देवी—क्या जदाव देती? वह तो मंजाहीन हाँ गयी थी। लड़की की लाश को गोट में लिये, उसके रक्त से अपने बब्लों को भिगोनी; आकाश की ओर ताक रही थी, मांग देवता से पूछ रही हो—क्या सारी विपत्तियाँ मुझी पर?

अधेरा ढाता जाता था; पर बाबूजी का पता नहीं। कुँकुँ मालूम भी नहीं, वह कहाँ गये हैं। भीरे-धीरे नी बजे; पर अब तक बाबूजी न लाँटे। इतनी देर तक बाहर न रहते थे। क्या आज ही उन्हें भी गायब होना था? दस बज गये, अब देवी रोने लगी। उसे लड़की की मृत्यु का इतना दुःख न था, जितना अपनी असमर्थता का। वह कैसे शव की दाहकिया करेगी? कौन उसके साथ जायगा? क्या इतनी रात गये कोई उनके साथ चलने पर तैयार होगा? आगर कोई न गया, तो क्या उसे आकेली ही जाना पड़ेगा? क्या रात-भर लोअथ पड़ी रहेगी?

ज्यों-ज्यों सब्राय होता जाता था, देवी को भय होता था। वह पछता रही थी कि शाम ही को क्यों न इसे लेकर चली गयी।

ग्यारह बजे थे। सहसा किसी ने द्वार खोला। देवी न उठकर खड़ी हो गयी। समझी, बाबूजी आ गये। उसका हृदय उमड़ आया और वह रोती हुई बाहर आयी; पर आह! यह बाबूजी न थे, ये पुलिस के आदमी थे, जो इस मामले की नहकीकात करने आये थे। पांच बजे की घटना थी। नहकीकात होने लगी ग्यारह बजे। आरंभिक यानेदार भी तो आदमी हैं; वह भी तो सन्ध्या-समय घूमने-फिरने जाता ही है।

घण्ट-भर तक नहकीकात होती रही। देवी ने देखा, अब संकोच से काम न चलेगा। यानेदार ने उससे जो कुछ पूछा, उसका उत्तर उसने निःसंकोच भाव से दिया। जरा भी न शरमायी, जरा भी न भिजकी। यानेदार भी दंग रह गया।

जब सब के बयान लिखकर टारोगाजी चलने लगे, तो देवी ने बहा—आप उस मांदर का पता लगायेंगे?

दारोगा—अब तो शायद ही उसका पता लगे।

देवी—तो उसको कुछ मजा न होगी?

दारोगा—मजबूरी है। किसी को नम्बर भी तो मालूम नहीं।

देवी—सग्कार इसका कुछ इन्तजाम नहीं करती? गरीबों के बच्चे इसी तरह कुचले जाते रहेंगे?

दारोगा—इसका क्या इन्तजाम हो सकता है? मोटरें तो बन्द नहीं हो सकती?

देवी—कम-से-कम पुलिसवालों को यह तो देखना चाहिए, कि शहर में कोई बहुत तेज न चलाये? मगर आप लोग ऐसा क्यों करने लगे? आप के अफसर भी तो मोटरों पर बैठते हैं। आर उनकी मोटरों रोकेंगे, तो नांकरी कैसे रहेगी?

यानेदार लंजित होकर चला गया। जब लोग सड़क पर पहुँचे, तो एक सिपाही ने कहा—मेहरिया बड़ी ठनमन दिखात है।

यानेदार—अजो, इसने तो मेरा नातका बंद कर दिया। किस गजब का हुस्न पाया है! मगर कसम ले लो, जो मैंने एक बार भी उसको तरफ निगाह की हो। ताकने की हिम्मत ही न पड़ती थी!

बाबू श्यामकिशोर बारह बजे के बाद नशे में चूर घर पहुँचे। उन्हें यह न्वर रास्ते ही में मिल गयी थी। रोते हुए घर में दाखिल हुए। देवी भरी वैरी थी, मान रखा था—आज चाहे जो हो जाय; पर कष्टकाल गी जरूर। पर उनको रोने देवा, तो सारा गुप्ता गायब हो गया। खुद भी राने लगी। दोनों बड़ी देर तक रोने रहे। इस विपत्ति ने दोनों के हृदयों को एक-दूसरे की ओर बढ़ जार में बीचा। उन्हें ऐसा जान हुआ कि उनमें फिर पहले का-सा प्रेम जाग्रत हो गया है।

प्रातःसाल जब लोग दाहर्किया करके लौटे, तो श्यामकिशोर ने देवी की गांग स्नेह से देखकर कहा—तुम्हारा जी अकेले कैसे लगेगा?

देवी—तुम दम-पाँच दिन की लुट्री न ले सकोगे?

श्याम—यही तो मैं भी सोचता हूँ। पन्द्रह दिन की लुट्री ले लूँ।

श्याम बाबू दफ्तर लुट्री लेने चले गये। इस विपत्ति में भी आज देवी का हृदय जितना प्रमत्न था, उनना उधर महोना से न हुआ था। बाजिका को नाकर वह विश्वास और प्रेम पा गयी थी, और यह उनके आँसू पोछने के लाए कुछ कम न था।

आह! अभागिनी! मुश मत हो। तेरे जीवन का यह अनेक काँड़ दाना आमी बाकी है, जिसकी आज तू कल्पना भी नहीं कर सकती।

(७)

दूसरे दिन बाबू श्यामकिशोर घर ही पर थे कि मुन्नू ने आकर सलाम किया। श्यामकिशोर ने जरा कड़ी आवाज में पूछा—क्या है जी, तुम क्यों बाहर यही आया करने हो?

मुन्नू बड़े दीन भाव से बाला—मालिक, कल का बान जो मुतता है, उसी रंज होना है। मैं तो हजूर का गुलाम ठहरा। अब नोकर नहीं हूँ तो क्या, भगकार का नमक तो खा चुका हूँ। भना, वह कभी हृदियों संनिकल सकता है? कभी-कभी हाल हवाल-गूँझने आ जाता हूँ। जब से कलवाली बात मुनी है हजूर, ऐसा कलक हो रहा है कि क्या कहूँ। केसी प्यारी-प्यारी बच्ची थी कि देखकर दुख दूर हो जाता था। मुझे देखते ही मुन्नू-मुन्नू करके दौड़ती थी; जब गैरों का यह हाल है, तो हजूर के दिल पर जो कुछ बीत रही होगी, हजूर ही जानते होंगे।

श्याम बाचू कुछ नर्म होकर बोले—ईश्वर की मरजी मैं इन्तजाम का क्या चारा ? मेरा तो घर ही अँधेरा हो गया । अब यहाँ रहने को जी नहीं चाहता ।

मुन्नू—मालकिन तो और भी बेहाल हांगी !

श्याम—हुआ ही चाहें । मैं तो उसे शाम-संवेद खिला लिया करना था । माँ तो दिन-भर माथ रहनी थी । मैं तो काम-घन्तां में भूज भी जाऊँगा । वह कहाँ भूल सकती है । उनसों नां सारी ज़िन्दगी आ राना है ।

पति को मुन्नू से बातें करने गुनकर देवी ने कंठे पर ने आँगन की ओर देखा । मुन्नू को देखकर उसकी आँखों में बै-शोकनगार आँगू भर आये । बोली—मुन्नू, मैं तो लुँ गयी ।

मुन्नू—हज़र, अब सवर कोजिए, रोने-धाने से क्या फायदा ? यही सब अन्धेरे देखकर तो कभी-कभी अल्लाह मिर्यों का ज़लिगा कहना पड़ता है । जो बैदेमान हैं, दूसरों का गला काटते फिरने वे, उनमें अल्लाह मिर्यों भी डरते हैं । जो सीधे और सच्चे हैं उन्हीं पर आफत आयी है ।

मुन्नू देवी को दिलासा देता रहा । श्याम बाचू भी उसकी बातों का भर्मर्थन करने जाते थे । जब वह चला गया, तो बाचू माहव ने यहा—आदमी तो कुछ बुग नहीं मालूम होता ।

देवी ने कहा—मोहब्बती आदमी है ! रंजन हाता, तो यहाँ क्यों आता ?

(=)

पन्द्रह दिन गुजर गये । बाचू साधन पर इफ्लर जाने लगे । मुन्नू इस बीच में फिर कभी न आया ? अब तक तो देवा का दिन पति ने बातें करने में कट जाना था; लेकिन अब उनके चले जाने पर रमे बार-बार शारदा की याद आयी । प्रायः सारा दिन रोते ही कटता था । मुहल्ले की दो-चार नीच जानि की औरतें आयी थीं; लेकिन देवी न उनमें मन न मिलना था, वे भूती महानुभूति दिखाकर देवी से कुछ ऐंठना चाहती थीं ।

एक दिन कंई चार बजे मुन्नू फिर आया, और आँगन में यहाँ होकर बोला—मालकिन, मैं हूँ मुन्नू, जरा नीच आ जाइएगा ।

देवी ने ऊपर ही से पूछा—क्या काम है ? कहो तो ।

मुन्नू—जरा आइए तो !

देवी नीचे आयी, तो मुन्नू ने कहा—रजा मियाँ बाहर खड़े हैं, और हजूर से मानमपुरसी करते हैं।

देवी ने कहा—जाकर कह दो, ईश्वर की जो मरजी थी, वह हुई।

रजा दरबाजे पर खड़ा था। ये बातें उसने माफ मुर्नी। बाहर ही से बोला—खुदा जानता है, जब से यह न्वबर मुनी है दिल के ढुकड़े हुए जाते हैं। मैं जरा दिलनी चला गया था। आज ही लौटकर आया हूँ। अगर मेरी मौजूदगी में यह वारदात हुई होती, तो आंर तो क्या कर मकता था; मगर मोटरवाले को बिला मजा कराये न लूँड़ता, चाहे वह किसी गजा ही की मोटर होती। सारा शहर छान डालना। बाधु माहब चुप्पे होके बैठ रहे, वह भी कोई बात है। मोटर चलाकर क्या कोई किसी की जान ले लेगा! फूल-मी मासूम बच्ची को जालिमों ने मार डाला। हाय! अब कौन मुझे राजा मैया कहकर पुकारेगा? खुदा की कसम, उमके लिए दिल्ली में टोकी-भर बिलौने ले आया हूँ। क्या जानता था कि यहाँ यह सितम हो गया। मुन्नू देख, यह ताबीज ले जाकर बहूजी को दे दे। इस अपने जड़े में बौध लेंगी। खुदा ने चाहा, तो उन्हें किसी तरह वी ठहशत या न्वटका न रहेगा। उन्हें तुरंत चुरे न्वाब दिल्लायी देते होंगे, रात को नींद उचड़ जानी होंगी, दिल घबराया करना होग। ये सारी शिकायतें इम ताबीज ने दूर हैं। जायेंगी। मैंने एक पहुँचे हुए फ़रीर से यह ताबीज लिलाया है।

इसी तरह से रजा और मुन्नू उस बक नक एक-न-एक बहाने से द्वार से न टले; जब तक बाचू साहब आते न दिल्लायी रियं। श्यामकिशोर ने उन दोनों को जाने देख लिया। ऊपर जाकर गम्भीर भाव से बोले—रजा क्या करने आया था।

देवी—यांही मानमपुरसी करने आया था। आज दिल्ली से आया है। यह खबर मुनकर दीड़ा आया था।

श्याम—मर्द मर्दों से मानमपुरसी करते हैं या औरतों से?

देवी—तुम न मिले, तो मुझी से शोक प्रकट करके चला गया।

श्याम—इसके यह माने हैं कि जो आदमी मुझसे मिलने आये, वह मेरे न रहने पर तुमसे मिल सकता है। इसमें कोई हरज नहीं, क्यों?

देवी—सबसे मिलने मैं योड़े ही जा रही हूँ!

श्याम०—तो रजा क्या मेरा साला है या समुरा ?

देवी—तुम तो जरा-जरा सी बात पर भल्लाने लगते हों ।

श्याम०—यह जरा-सी बात है ! एक भले घर को ल्ली एक शाहदे से बातें करे, यह जरा-सी बात है ! ता बड़ी-सी बात किसे कहते हैं ? यह जरा-सी बात नहीं है कि यदि मैं तुम्हारी गरदन थोट ढूँ तो भी मुझे पाप न लगेगा ; देखता हूँ, फिर तुमने वही रंग पकड़ा । इतना बड़ी सजा पाकर भी तुम्हारी ओरें नहीं खुलीं । अबकी क्या मुझे ले बातमा चाहती हों ?

देवी सचारे में आवायी । एक तो लड़की का शाक ! उसपर यह अपशब्दों को बाल्कार और भीपरण आदेव ! उसके सिर में नक्कर-न्सा आ गया । बैठकर रोने लगी । इस जीवन से तो माँत कहीं अच्छी ! क्यैल यही शब्द उसके मुँह से नकले ।

बाबू भाहव गरजकर बोले—यही हांगा, मत घवगांगो, मत घभरांगो, यही हांगा । तुम भरना चाहती हों, ता मुझ भी तुम्हारे अमर होने की आवांक्ता नहीं है । जिनमी जल्द तुम्हारे जीवन का अन्त हो जाय, उतना ही अच्छा । कुल में बलंक तो न लगेगा ?

देवी ने सिसकियों लेते हुए कहा—क्या एक अबला पर इतना अन्याय करते हों ? तुम्हे जरा भी दया नहीं आती ?

श्याम०—मैं कहा हूँ, चुप रह !

देवा—क्यों चुप रहूँ ; क्या किसी की जबान बन्द कर दोंगे ?

श्याम०—फिर बोले जातो हैं ? मैं उठकर सिर तोड़ दूँगा ?

देवी—क्या सिर तोड़ दोंगे, काई जबरदस्ती है ?

श्याम०—अच्छा तो बुला, देखें तेग कौन हिमायती है ?

यह कहते हुए बाबू भाहव भल्लाकर उठे, और देवी को कड़े थप्पड़ और घूँस लगा दिये; भगर वह न रोयी, न चिल्लायी, न जबान से एक शब्द निकाजा, सबन अर्थ-शून्य नेत्रों में पांते की ओर ताकती रही, मानो यह निश्चय करना चाहती था कि यह आदमी है या कुछ और ।

जब श्यामकिशोर मार-पीटकर अलग खड़े हो गये, तो देवी ने कहा—दिल के अरमान अभी न निकले हों, तो और निकाल लो । फिर शायद यह अबसर न मिले ।

श्यामकशोर ने जवाब दिया—‘सर काट लूँगा, सिर, तू हैं किस केर में ?
वह कहते हुए वह नाचे चले गये, भट्ठे के साथ किंवाढ़ खाले, धमाके के
साथ बन्द [कथे आर कहाँ चले गये]

अब देश की ओरें में आर्द्ध का नदी बहने लगी ।

रात में दस बत गय; पर श्यामकशोर पर न लौटे । राते-राते देवा की
ओरें सूज आई । काथ में मधु-स्माना का लोप हो जाता है । देवी को ऐसा
जाता होता था । [६ श्यामकशोर का उसके भाथ कभी प्रेम ही न था । हाँ, कुछ
दिनों वह उससे मुँह अबश्व जोहन रहन थे; लेकिन वह बनारी प्रेम था ।
उसके बाबन ना आनन्द लूँने हो ॥] लिए उसम माठ-माठी प्यार की बातें
की जाती थी । उन ज्याती न लगाया जाता था, उस कलेजे पर सुलाया
जाता था । यह सब दिया हुआ था, न्यौग था । उसे याद ही न आता था कि
कभी उसन प्रेमा प्रवा किया गया हा । अब यह रूप नहीं रहा, वह योवन नहीं
रहा, वह नदाना नहीं रहा । [कह उसक गाय क्या न अत्याचार किये जायें ?
उसने सोचा—कुछ नहीं ! अब इनका देल मुझसे फिर गया ह, नहीं तो क्या
इस जसाना बात नहीं नुकार दूँगी । काइ-न-काइ लाङ्कुन लगाका मुझसे
गला छुड़ाना चाहते ह । वहां बात ह, तो मैं क्या इनका राठ्या आर इनकी
मार लाने ह । तरह इस घर पे पड़ा रहूँ ? जब प्रेम ही नहीं रहा, तो मेरे यहो
रहने का वर्तमान ह । मैं न कुछ नहीं; वह दुर्गाल न हगी । इनकी यहाँ
हृष्ण ह, तो नहीं रहा । मैं ना नदक लूँगी कि यथवा हो गयी ।

जब-चला रात गुजरती थी, वाह के प्राण सूखे जाने थे । उस यह धड़का
सनासा दुमानी और लौंग वह ध्यान कर न मार-वाड शुरू कर दें । किन्तु
कोष न मर दुए रहा न गये । वाह गे तकदीर ! ग्रन्थ मैं इतनी नीच हो गयी
कि मेहापा ने, नूंगनों ने आशाना करने लगी । इस मेहे आदमी को ऐसा
बातें मुँह से न लानी शम भी नहीं आती । नाजाने इनके मन में ऐसी बातें
कैस की जाती हैं । कुछ नहीं, इस स्वभाव के नीच, देल [मैले, स्वार्या आदमी
है । नीचों जाए नौ चाहे हा बाना नाहिये । गेरी भूज थी कि इतने दिनों से
इनकी युद्ध-पर्दी चढ़ा रही । वही इच्छत नहीं, मर्यादा नहीं, प्रेम नहीं, विश्वास
नहीं, वहो रक्षा बेहाइ है । कुछ मैं इनके हाथ विक तो गयी ही नहीं कि वह

जा चाहें करें, मारें या काटें, पड़ी सहा करें । सीता-जैसी पक्षियाँ होती थीं, नों राम-जैसे पति भी होते थे !

देवी को अब ऐसी शंका होने लगी कि कहीं श्यामकिशोर आते ही-आते सचमुच उसका गला न दबा दे, या लुरी न भोक दे । वह समाचार-पत्रों में ऐसी कई हरजाइयाँ वी खबरें पढ़ चुकी थीं । शहर ही में ऐसा कई घटनाएँ हो चुकी थीं । मारें भय के वह अरथरा उठी । यहाँ रहने से प्राणों का झुशल न थी ।

देवी ने कपड़ों का एक छाँटा-सी बकुची बौधी आंर सोचने लगा—यहाँ से कैसे निकलूँ ? आर पिर वहाँ से निकलकर जाऊ कहो ? कहीं इस यक्त मुझ का पता लग जाता, तो बड़ा काम निकलता । वह मुझे क्या मैरु न पहुँचा देगा ? एक बार मैरु पहुँचन-भर जाती । पिर तो लाला सिर पक्कर रह जायें, भूलकर भी न आऊँ । यह भी क्या याद करेंगे । रुपये क्या ल्लाङ दूँ, जिसमें यह भजे से गुलब्बरें उड़ायें ? मैरु ही तो काट-छाटकर जमा किये हैं । इनकी काँन-सी रभी बड़ी कमाई था । खच करना चाहती, तो काँड़ा न बचता । पैसा-पैसा बचाती रहती थी ।

देवी ने जाकर नाचे के किंवाड़ बंद कर दिये । १५र संदूक खालकर अपने सारे जेवर आर रुपये निकालकर बकुची में बोध लिये । सब-सब करेंसी नोट थे; रिशेष बोर्ड भी न हुआ ।

एक-एक तक्सी ने सदर दरवाजे में जार से धक्का भारा । देवी महम उठी । ऊपर से भोककर देखा, श्याम बाबू थे । उसकी हिम्मत न पड़ा । क जाकर द्वार खोल दें । पिर नों बाबू साहब ने इतनी जार से धक्के मारने गुरु किये, मानो किंवाड़ हो नांड़ डालेंगे । इस तरह द्वार खुल गाना ही उनके चिन्त की दशा को साफ प्रगट कर रहा था । देवी शेर के भूँइ में जाने का साहम न कर सकी ।

आखर श्यामकिशोर ने चिल्लाकर कहा—ओ डैव ! किंवाड़ खोल, ओ ब्लाडी ! किंवाड़ खोल, ओ भी खोल !

देवी की रही-उही हिम्मत भी जाती रही । श्यामकिशोर नशे में चूर थे । होश में शायद दया आ जाती, इसलिए शराब पीकर आये हैं । किंवाड़ तो न

खोलूँगी चाहे तोड़ ही डालो। अब तुम तुम्हे इस घर में पाओगे ही नहीं, मारोगे कहाँ से ? तुम्हें खूब पहचान गयी।

श्यामाकशार पन्डहन्त्रीम मिनट तक शार मचाने और किंवाड़ हिलाने के बाद ऊत-जलूल बक्ते चले गये। दा-चार पड़ामियों ने फटकारे भी सुनायी। आप भी तो पड़े-लिए आदमी होकर आधा रात को घर चलते हैं। नींद ही नो है, नहा खुलती, तो क्या कीजएगा ? जाइए, किसी यार-दोस्त के घर लेट राहए; सबंर आइएगा।

श्यामकिशार के जाते ही देवी ने बकुची उत्तायी और धीरे-धीरे नीचे उतरी। जगा देर उसने कान लगाकर आहट ली कि कहीं श्यामकिशोर खड़े तो नहीं हैं। जब विश्वास हा गया कि वह नन्हे गये, तो उसने धीरे से द्वार खोला आर बाहर निकल आयी। उसे जगा भी न्हाम, जरा भी दुःख न था। बस, केवल एक इच्छा थी कि वहाँ से बचकर भाग जाऊँ। काढ़े ऐसा आदमी न था, जिस पर वह भरोसा कर सके, जो इस संकट में काम आ सके। या तो वह वही मुन्न मेहतर। अब उसाँ के मिलने पर उसकी नारी आशार्द्ध अवलाभ्वत थी। उसी से मलकर वह न नशन करेंगी कि कहों जाय, कैंग रहे। मैंके जाने का अब उसका दरादा न था। उसे भय होता था कि मैंके में श्यामकिशोर से वह अपनी जान न बचा सकेंगी। उसे यहों न पाकर वह अवश्य उसके मैंके जार्यंग, और उस जवदस्ती न्हाव लायेंगे। वह भारी यातनार्द्ध, भारं अपमान महने को तयार थी, केवल श्यामाकशार की सूरत नहीं देखना चाहती थी। प्रेम अपमानत होकर दंप में बदल जाता है।

थाँड़ी ही दूर पर न्हारहा था, कई तांग बाले खड़े थे। देवी ने एक इक्का कना और उसमें स्टेशन चलने को कहा।

(१०)

देवी ने गत स्टेशन पर काया। प्रातःकाल उसने एक तोंगा किराये पर किया आर परदे में बैठ कर नांक जा पहुँची। अभी दूकानें न खुली थीं; लेकिन पूछने से रजा मियाँ का पता चल गया। उसकी दूकान पर एक लौंडा भाड़ दे रहा था। देवी ने उसे बुलाकर कहा—जाकर रजा मियाँ से कह दे कि शारदा की अम्माँ तुमसे मिलने आयी हैं, अभी चलिए।

इस मिनट में रजा आंग सुनू आ पहुँचे ।

देवी ने सजल-नेत्र होकर कहा—तुम लोगों के पीछे मुझे घर लोड़ना पड़ा । कल रात को तुम्हारा मेरे घर जाना गजब हो गया । जो कुछ हुआ, वह फिर कहूँगी । मुझे कहीं एक घर दिला दो । घर ऐसा हो कि बाबू साहब को मेरा पता न भिट्ठे । नहीं तो वह मुझे जीती न ले डेंगे ।

रजा ने मुनू की ओर देखा, मानो कह रहा है—देवी, चाल कैसी ठीक थी ! देवी से बोला—आप नियावातिर रहें; ऐसा घर दिला देंगा कि बाबू साहब के बाबा साहब को भी पता न लेगा । आपको किसी बात की तकलीफ न होगी । हम आपके पसीने की जगह खून बहा देंगे । सच पूछो तो बहूंजी, बाबू साहब आप के लायक ये नहीं ।

मुनू—कहाँ की बात भैश, आप रानी होने लायक हैं । मैं मालकिन से कहता था कि बाबूजी ने दा वमण्डी की हवा लग गयी है; पर आप मानती ही न थीं । आज गत ही का मैंने गुलाबजान के कोठे पर से उतरते देखा । नशे में चूर थे ।

देवी—भूमी बात । उनकी यह आदत नहीं । गुस्सा उन्हें जरूर बढ़ाता है, और गुस्से में आकर उन्हें नेक-बद कुछ नहीं गमता; लेकिन निगाह के बुरे नहीं ।

मुनू—हमारे मानती ही नहीं, तो क्या करूँ । अच्छा कभी दिखा देंगा, तब तो मानिएगा ।

रजा—अब देखना पोछे, इम वक्त आपका मेरे घर पहुँचा दे । ऊपर ले जाना । तब तक मैं एक मकान देखने जाना हूँ । आपके लायक बहुत ही अच्छा है ।

देवी—तुम्हारे घर में बहुत-सी आंखें होंगी ?

रजा—कोड नहीं है, बहूंजी, पिर्फ़ ! एक त्रुंडगा मासी है । वह आपके लिए एक कहारेन बुला देगी । आपको किसी बात की तकलीफ न होगी । मैं मकान देखने जा रहा हूँ ।

देवी—जरा बाबू साहब की तरफ भी हंते आना । देखना घर आये कि नहीं ।

रजा—बाबू साहब से तो मुझे चिढ़ हो गयी है। शायद नजर आ जायें, तो मेरी उनसे लड़ाई हो जाय। जो मर्द आप-जैसी हुस्न की देवी की कदर नहीं कर सकता, वह आदमी नहीं।

मुन्नू—बहुत ठीक कहते हों, मैया। ऐसी सरीकजादी को न-जाने किस मुँह से डॉटे हैं ! मुझे इतने दिन हजूर की गुलामी करते हो गये, कभी एक बात न कही।

रजा मकान देखने गया, और तागा रजा के घर की तरफ चला।

देवी के मन में इस समय एक शङ्का का आनास हुआ—कहीं ये दोनों सचमुच शाहदे तो नहीं हैं ? लेकिन कैसे मालूम हो ? यह सत्य है कि देवी ने जीवन-यन्त्र के लिए स्वामी का परित्याग किया था; पर इतनी ही देर में उसे कुछ पश्चात्याप होने लगा था। अकेली एक घर में कैसे रहेगी, बैठी-बैठी क्या करेगी, यह कुछ उसकी समझ में न आता था। उसने दिल में कहा—क्यों न घर लौट चलूँ ? ईश्वर करे, वह अभी घर न आये हां। मुन्नू से बोली—तुम जरा दौड़कर देखो तो, बाबूजी घर आये कि नहीं ?

मुन्नू—आप चलकर आराम से बैठें, मैं देख आता हूँ।

देवी—मैं अन्दर न जाऊँगी।

मुन्नू—युदा की वस्म खाके कहता हूँ, घर बिलकुल खाली है। आप हम लोंगों पर शक करती हैं। हम वह लोग हैं कि आपका हुक्म पायें, तो आग में कूद पड़ें।

देवी इकके से उतरकर अन्दर चली गयी। चिंडिया एक बार पकड़ जाने पर भी फड़फड़यी; किन्तु परां में लासा लगे होने के कारण उड़ न सकी, और शिकारी ने उस अपनी भोली में रख लिया। वह अभागिनी क्या फिर कभी आकाश में उड़ेगी ? क्या फिर उसे डाँलयो पर नहकना नसीब होगा ?

(११)

शामविशेष एवेरे घर लौटे, तो उनका चित्त शान्त हो गया था। उन्हें शङ्का हो रही थीं कि कदांचत् देवी घर में न होगी। द्वार के दोनों पट खुले देखं तो वलेजा सन-से हो गया। इतने सबेर चिंडियों का खुला रहना अरंगल-सूचक था। एक जण द्वार पर खड़े होकर अन्दर की आहट ली। कोई आवाज

न सुनायी दी । आँगन में गये, वहाँ भी सचाया, ऊपर गये, चारों तरफ सूता ! घर काटने को दौड़ रहा था । श्यामकिशोर ने अब जरा सतर्क होकर देखना शुरू किया । सन्दूक में रुपये नदारत । गहने का सन्दूक भी खाली । अब क्या भ्रम हो सकता था । कोई गंगा-स्नान के लिए जाता है, तो घर के रुपये नहीं उठा से जाता । वह चली गयी । अब इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं था । यह भी मालूम था कि वह कहाँ गयी है । शायद इसी वक्त लपककर जाने से वह वापस भी लायी जा सकती है ; लेकिन दुनिया क्या कहेगी ?

श्यामकिशोर ने अब चारपाई पर बैठकर ठण्डे दिल से इस घटना की विवेचना करनी शुरू की । इसमें तो उन्हें सन्देह न था कि रजा और उसके पितृ मुन्नू ने ही बहकाया है । तो आखिर बाबूजी का कर्तव्य क्या था ? उन्होंने वह पुराना मकान छोड़ दिया, देवी को बार-बार समझाया । इसके उपरान्त वह क्या कर सकते थे ? क्या मारना अनुचित था ? अगर एक लड़के के लिए अनुचित ही मान लिया जाय, तो क्या देवी को इस तरह घर से निकल जाना चाहिए था ? कोई दूसरी खीं, जिसके हृदय में पहते ही से विष न भर दिया गया हो, केवल मार खाकर घर से न निकल जातो । अवश्य ही देवों का हृदय कल्पित हो गया है ।

बाबू साहब ने फिर सांचा—अभी जरा देर में महरी आयेगी । वह देवी को घर में न देखकर पूछेगी, तो क्या जवाब दूँगा ? दम-के-दम में सारे महल्ले में यह खबर फैल जायगी । हाय भगवान् ! क्या कहूँ ? श्यामकिशोर के मन में इस वक्त जरा भी पश्चाताय, जरा भी दया न थी । अगर देवी किसी तरह उन्हें मिल सकती, तो वह उसकी हत्या कर डाजने में जरा भी प्रभावेश न करते । उसका घर से निकल जाना, चाहे आवेश के सिवा उमका और कोई कारण न हो, उनकी निगाह में अत्यध्य या, काथ बदुशा विरकि का रूप धारण कर लिया करता है । श्यामकिशोर का सपार से बृणा हा गयी । जब अपनी पक्की ही दगा कर जाय, तो किसी से क्या आशा की जाय ? जिस खीं के लिए हम जीते भी हैं और मरते भी, जिसको मुक्ति रखने के लिए हम अपने प्राणों का वनिशन कर देते हैं, जब वह अपनी न हुई, तो फिर दूसरा कौन अपना हो सकता है ? इसी खीं को प्रसन्न रखने के लिए उन्होंने क्या नहीं किया । घरवालों से लड़ाई की भाइयों से नाना ताङ्गा, यहाँ तक कि वे अब उनकी सूत भी नहीं देखना चाहते ।

उसकी कोई ऐसी इच्छा न थी, जो उन्होंने पूरी न की हो । उसका जरासा सिर भी दुखता या, तो उनके हाथों के तोते उड़ जाते थे । रात-की-रात उसकी सेवा शुश्रूषा में बैठे रह जाते थे । वही छी आज उन में दग कर गयी, केवल एक गुण्डे के बहकाने में आकर उनके मुँह में कालिख लगा गयी । गुण्डों पर इलजाम लगाना तो एक प्रकार से मन को समझाना है ! जिसके दिल में खोट न हो, उसे कोई क्या बहका सकता है ? जब इस छी ने धोखा दिया, तो फिर समझना चाहिए कि संसार में प्रेम और विश्वास का आभन्न ही नहीं । यह केवल भावुक प्राणियों की कल्पना-भाव है । ऐसे संसार में रहकर दुःख और दुराशा के सिवा और क्या मिलना है । हा दुष्टा ! ले, आज से तू स्वतन्त्र है ; जो चाहे कर ; अब कोई तेरा हाथ पकड़नेवाला नहीं रहा । जिस तू “प्रियतम” कहते नहीं यक्ती थी, उसके साथ तूने यह कुर्याल व्यवहार किया ! चाहूँ, तो तुम्हे अदालत में घसीर इस पाप का दण्ड दे सकता हूँ ; मगर क्या फायदा ! इसका फल तुम्हे ईश्वर देंगे ।

श्यामकिंशोर नुपनाम नीचे उतरे, न किसी में कुछ कहा न सुना, दाढ़ खुले छोड़ दिये और गङ्गा-तट की ओर चले ।

कजाकी

मेरी बाल-स्मृतियों में 'कजाकी' एक न मिट्ठेवाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुजर गये; लेकिन कजाकी की मूर्ति अभी तक आँखों के सामने नाच रही है। मैं उन दिनों अपने पिता के नाय ग्राजमगढ़ की एक तहसील में था। कजाकी जाति का पासी था, बड़ा ही हँसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिन्दादिल। वह रोज शाम को डाक का थैला लेकर आता, रात-भर रहता और सबेरे डाक लेकर चला जाता। शाम को फिर उधर से डाक लेकर आ जाता। मैं दिन-भर एक उद्धिग्र दशा में उसकी राह देखा करता। योद्धी चार बजते, व्याकुल होकर, सड़क पर आइए, खड़ा हो जाता, और योद्धी देर में कजाकी कन्धे पर बल्लम रखे, उसकी भुँकुनी बजाता, दूर से दाँड़ता हुआ आता दिखलायी देता। वह सौंवले रंग का गठीला, लम्बा जवान था। शरीर सौंचे में ऐसा ढला हुआ कि चतुर भूर्तिकार भा उसमें रुई दाप न निकाल सकता। उसकी छोटी-छोटी मूँछें, उसके मुड़ौल चंहरे पर बढ़त ही अच्छी भालूम होती थीं। मुझे देखकर वह और नेज़ दौड़ने लगता, उसकी भुँकनी और जार से बजने लगती, और मेरे हृदय में और जार से खुशी की धड़कन होने लगती। हर्षातिरेक में मैं भी दाँड़ पड़ता और एक ज्ञान में कजाकी का कन्धा मेरा सिंहासन बन जाता। वह स्थान मेरी अभिलापाओं का स्थर्ण था। हर्ष के निवासियों को भी शायद वह आनंदालित आनन्द न मिलता होगा जो मुझे कजाकी के विशाल कन्धों पर मिलता था। संवार मेरी आँखों में तुच्छ हो जाता और जब कजाकी मुझे कन्धे पर लिए हुए दौड़ने लगता, तब तो ऐसा मालूम होता, मानो मैं हवा के पोड़े पर उड़ा जा रहा हूँ।

कजाकी डाकखाने में पहुँचता, तो पसीने से तर रहता; लेकिन आराम करने की आदत न थी। थैला रखते ही वह हम लागों को लेकर किसी मैदान में निकल जाता, कभी हमारे साथ खेलता, कभी बिरहे गाकर सुनाता और कभी कहानियाँ सुनाता। उसे चोरी और डाकें, मार-पोट, भूत-प्रेत की सेकड़ों कहानियाँ याद थीं। मैं ये कहानियाँ सुनकर विस्मय-पूर्ण आनन्द में मग्न हो जाता। उसकी कहानियों के चांद और डाकू सच्चे योद्धा होते थे, जो अभी थे।

को लूटकर दीन-दुखी प्राणियों का पालन करते थे । मुझे उनपर धृणा के बदले भदा होती थी ।

(२)

एक दिन कजाकी को डाक का थैला लेकर आने में देर हो गयी । सूर्यास्त हो गया और वह दिखलायी न दिया । मैं खोया हुआ-सा सड़क पर दूर तक श्रौंखले पाढ़-फाढ़कर देखता था ; पर वह परिचित रेखा न दिखलायी पढ़ती थी । कान लगाकर सुनता था ; पर ‘भुन-भुन’ की वह आमोदमय ध्वनि न सुनायी देती थी । प्रकाश के साथ मेरी आशा भी मलिन होती जाती थी । उधर से किसी को आने देखता, तो पूछता—कजाकी आता है ? पर या तो कोई सुनता ही न था, या केवल सिर हिला देता था ।

सहसा ‘भुन-भुन’ की आवाज कानों में आयी । मुझे श्रौंखले में चारों ओर भूत ही दिखलायी देते थे—यहाँ तक कि माताजी के कमरे में ताक पर रखी हुई मिट्टाई भी श्रौंखले हो जाने के बाद, मेरे लिए त्याज्य हो जाती थी : लेकिन वह आवाज सुनते ही मैं उसकी तरफ जोर से दौड़ा । हाँ, वह कंजाकी ही था । उसे देखते ही मेरी विकलता कोध में बदल गयी । मैं उसे मारने लगा, फिर रुठ करके अलग लड़ा हो गया ।

कजाकी ने हँसकर कहा—मारोगे, तो मैं एक चीज़ लाया हूँ, वह न दूँगा ।

मैंने साहस करके कहा—जाओ, मत देना, मैं लूँगा ही नहीं ।

कजाकी—अभी दिखा दूँ, तो दाँड़कर गोद में उटा लोगे ।

मैंने पिशलकर कहा—अच्छा, दिखा दो ।

कजाकी—तो आकर मेरे कन्धे पर बैठ जाओ, भाग चलूँ । आज बहुत देर हो गयी है । बाबूजी बिगड़ रहे होंगे ।

मैंने अकड़कर कहा—पहिले दिखा ।

मेरी विजय हुई । अगर कजाकी को देर का डर न होता और वह एक मिनट भी और रुक सकता, तो शायद पैसा पलट जाता । उसने कोई चीज़ दिखलायी, जिसे वह एक हाथ से छाती से चिपटाये हुए था ; लम्बा मुँह था, और दो श्रौंखले चमक रही थीं ।

मैंने दौड़कर उसे कजाकी की गोद से ले लिया । वह हिरन का बचा था । आह ! मेरी उस खुशी का कौन अनुमान करेगा ? तब से कठिन परीक्षाएँ पास कीं, अच्छा पंद भी पाया, रायबहादुर भी हुआ; पर वह खुशी फिर न हासिल हुई । मैं उसे गोद में लिए, उसके कोमल स्पर्श का आनन्द उड़ाता घर की ओर दौड़ा । कजाकी को आने में क्यों इतनी देर हुई, इसका खयाल ही न रहा ।

मैंने पूछा—यह कहाँ मिला, कजाकी ?

कजाकी—मैया, यहाँ से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा जंगल है । उसमें बहुत-से हिरन हैं । मेरा बहुत जी चाहता था कि कोई बचा मिल जाय, तो तुम्हें दूँ । आज यह बचा हिरनों के झुएड़ के साथ दिलवायी दिया । मैं झुएड़ की ओर दौड़ा, तो सब-के-सब भागे । यह बचा भी भागा; लेकिन मैंने पीछा न की । और हिरन तो बहुत दूर निकल गये, यही पांछे रह गया । मैंने इसे पकड़ लिया । इसी से तो इतनी देर हुई ।

यां बातें करते हम दोनों डाकताने पहुँचे । बाबूजी ने मुझे न देखा, हिरन के बच्चे को भी न देखा, कजाकी ही पर उनकी निगाह पड़ो । बिंगड़कर बोले—आज इतनी देर कहाँ लगायी ? अब थैला लेकर आया है, उसे लेकर क्या करूँ ? डाक तो चली गयी । बता, तूने इतनी देर कहाँ लगायी ?

कजाकी के मुँह से आवाज न निकली ।

बाबूजी ने कहा—तुम्हे शायद अब नौकरी नहीं करनी है । नोच है न, पेट भरा तो मोटा हो गया ! जब भूखों मरने लगेगा, तो आँखें खुलेंगी ।

कजाकी चुपचाप बढ़ा रहा ।

बाबूजी का कोध आर बढ़ा । बोले—अच्छा, थैला रख दे और अपने घर की राह ले । सूअर, अब डाक लेके आया है । तेरा क्या बिंगड़ेगा, जहाँ चाहेगा, मजूरी कर लेगा । माथे तो मेरे जायगी—जवाब तो मुझसे तलब होगा ।

कजाकी ने रुचाँसे होकर कहा—सरकार, अब कपी देर न होगी ।

बाबूजी—आज क्यों देर की इसका जवाब दे ?

कजाकी के पास इसका कोई जवाब न था । आश्र्य तो यह था कि मेरी भी जवान बन्द हो गयी । बाबूजी बड़े गुस्सेवर थे । उन्हें काम बहुत करना

पड़ता था, इसी से बात-बात पर कुँभला पड़ते थे। मैं तो उनके सामने कभी जाता ही न था। वह भी मुझे कभी प्यार न करते थे। घर में केवल दो बार श्रेष्ठ-श्रेष्ठ भर के लिए भोजन करने आते थे; बासी सारे दिन दफ्तर में लिखा करते थे। उन्होंने बार-बार एक सहकारी के लिए अफसरों से विनय की थी; पर इसका कुछ असर न हुआ था। यहाँ तक कि तातील के दिन भी बाबूजी दृश्यतर ही में रहते थे। केवल माता-जी उनका क्रोध शान्त करना जानती थी, पर वह दफ्तर में कैसे आतीं। बेचारा कजाकी उसी वक्त मेरे देखते-देखते निकाल दिया गया। उसका बल्लम, चपरास और साफा छीन लिया गया और उसे डाकखाने में निकल जाने का नादिरी हुक्म मुना दिया। आह ! उस वक्त मेरा ऐसा जी चाहता था कि मेरे पास सांने की लङ्घा हांसी, तो कजाकी को दे देता और बाबूजी को दिखा देता कि आपके निशाल देने में कजाकी का बाल भी बोका नहीं हुआ। किसी यांदा को आपनी तलवार पर जिनना धमरड होता है, उतना ही धमरड कजाकी को आपनी चपरास पर था। जब वह चपरास खोलने लगा, तो उसके हाय कोप रहे थे और आँखों से आँख वह रहे थे। और इस सारे उपद्रव की जड़ वह कोमल बम्नु थी, जो मेरी गोद में मुर्ह छिपाये ऐसे चैन से बैठी हुई थी। माना माता की गोद में हा। जब कजाकी चला, तो मैं धीरे-धीरे उसके पीछे-पीछे चला। मेरे वर कंदार पर आकर कजाकी ने कहा —भैया, अब घर जाओ; सोभ छोड़।

मैं चुपचाप लड़ा अपने आँखुओं के बेंग को सारी शार्क से दबा रहा था।

कजाकी ५४ बाला—भैया, मैं कहीं बाहर योड़ ही चला जाऊँगा। फिर आँखें आंर तुम्हें कंधे पर बैठालकर कुदाऊँगा। बाबूजी ने नौकरी ले ली है, तो क्या इतना भी न करने देंगे ! तुमको छोड़कर मैं कहीं न जाऊँगा, भैया ! जाकर अम्मां से कह दो, कजाकी जाता है। उसका कहा-नुना माफ करं।

मैं दाँड़ा हुआ घर गया; लेकिन अम्मांजी से कुछ कहने के बदले बिलख-बिल वकर रहने लगा। अम्मांजी रसोई से बाहर निकलकर पूछने लगी—क्या हुआ, बेटा ? क्या ने मारा ? बाबूजी ने कुछ कहा है ? अच्छा, रह तो जाओ, आज घर आते हैं, तो पूछती हूँ। जब देखो, मेरे लड़के का मारा करने हैं। दूप रहो बेटा, अब तुम उनके पास कभी मत जाना।

मैंने बड़ी मुश्किल से आवाज सँभालकर कहा—कजाकी ...

अम्माँ ने समझा, कजाकी ने मारा है ; बोली—अच्छा, आने दो कजाकी को । देखो, खड़े-खड़े निकलवा देती हूँ । हग्कारा हाकर मेरे राजा बेया को मारे ! आज ही तो साफा, बल्लम, सब छिनवाये लेती हूँ । वाह !

मैंने जल्दी से कहा—नहीं, कजाकी ने नहीं मारा । बाबूजी ने उसे निकाल दिया है ; उसका साफा, बल्लम छीन लिया—चपरास भी ले ली ।

अम्माँ—यह तुम्हारे बाबूजी ने बहुत बुग किया । वह बेचारा अपने काम में इतना चंकस रहता है । फिर उसे क्यों निकाला ?

मैंने कहा—आज उस देर हो गयी थी ।

यह कहकर मैंने हिरन के बच्चे का गोद से उतार दिया । शर में उसके भाग जाने का भय न था । अब तक अम्मोजी की निगाह भी उस पर न पड़ी थी । उस फुटकते देखकर वह सहसा चाँक पड़ी और लपककर मेरा हाथ पकड़ लिया कि कहाँ वह भयंकर जीव मुक्त काट न ल्याय ! मैं कहाँ तो फूट-फूटकर रो रहा था और कहाँ अम्माँ की श्वराहट देखकर खिलनिलाकर हँस पड़ा ।

अम्माँ—अरे, यह तो हिरन का बचा है ! कहा मिला ?

मैंने हिरन के बच्चे का सारा इतिहास और उसका भीषण परिणाम आईं से अन्त तक कह मुनाया—अम्माँ, यह इतना तेज भागता था कि कोई दूसरा होता, ता पकड़ ही न सकता । सन्-सन्, हया की तरह उड़ता चला जाता था । कजाकी पोच-छु; वरेटे तरु के पीछे दौड़ता रहा । तब वही जाकर बचा मिले । अम्मोजी, कजाकी की तरह कोई दुनिया-भर में नहीं दौड़ सकता, इसी से तो देर हो गया । इसलिए बाबूजी ने बेचारे को निकाल दिया—चपरास, साफा, बल्लम, सब छीन लिया । अब बेचारा क्या करेगा ? भूतां मर जायगा ।

अम्माँ ने पूछा—कहाँ है कजाकी, जरा उसे बुला तो लाओ ।

मैंने कहा—बाहर तो ढङ्गा है । कहता था, अम्मोजी से मेरा कहा-मुना माफ करवा देना ।

अब तक अम्मोजी मेरे बृत्तान्त को दिल्लमी समझ रही थीं । शायद वह समझती थीं कि बाबूजी ने कजाकी को डॉया होगा ; लेकिन मेरा अन्तम बाय तुनकर संशय हुआ कि सचमुच तो कजाकी बरखास्त नहीं कर दिया

गया। बाहर आकर 'कजाकी ! कजाकी' पुकारने लगीं; पर कजाकी का कहीं पता न था। मैंने बार-बार पुकारा; सेकिन कजाकी वहाँ न था।

खाना तो मैंने खा लिया—बच्चे शोक में खाना नहीं छोड़ते, खासकर जब रबड़ी भी सामने हो ; मगर बड़ी रात तक पढ़े-गड़े सोचता रहा—मेरे पास रुपये होते, तो एक लाख रुपये कजाकी को दे देता और कहता—बाबूजी से कभी मत बोलना। बेचारा भूतां मर जायगा ! देखूँ, कल आता है कि नहीं। अब क्या करेगा आकर ? मगर आने का तो कह गया है। मैं कल उसे अपने साथ खाना बिलाऊँगा।

यही हवाई किले बनाते-बनाते मुझे नींद आ गयी।

(३)

दूसरे दिन मैं दिन-भर अपने हिरन के बच्चे के सेवा-सत्कार में व्यस्त रहा। पहले उसका नामकरण संस्कार हुआ। 'मुनू' नाम रखा गया। फिर मैंने उसका अपने सब हमजोलियाँ और सहपाठियाँ से परिचय कराया। दिन ही भर में वह मुझसे इतना हिल गया कि मेरे पीछे-नीछे दौड़ने लगा। इतनी ही देर में मैंने उसे अपने जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया। अरने भविष्य में बननेवाले विशाल भवन में उसके लिए अलग कमरा बनाने का भी निश्चय कर लिया ; चारपाई, सैर करने की फिटन आदि की भी आयोजना कर ली।

लेहिन सन्ध्या होते हो मैं सब कुछ छोड़-छोड़कर सड़क पर जा खड़ा हुआ और कजाकी की बाट जोहने लगा। जानता था कि कजाकी निकाल दिया गया है, अब उस यहाँ आने को काई जरूरत नहीं रहो। फिर भी न-जाने मुझे क्यों यह आशा हो रही थी कि वह आ रहा है। एकाएक मुझे खायाल आया कि कजाकी भूतां मर रहा होगा। मैं तुरन्त घर आया। अभ्माँ दिया-बत्ती कर रही थी। मैंने चुपके से एक याकरो में आदा निकाजा, आदा हाथा में लपेटे, योकरो से गिरते आटे की एक लकीर बनाता हुआ भागा। आकर सड़क पर खड़ा हुआ ही था कि कजाकी सामने से आता दिखलायी दिया ; उसके पास बल्लम भी था, कमर में चपरास भी थी, सिर पर साफा भी बैंधा हुआ था। बल्लम में डाक का थैला भी बैंधा हुआ था। मैं दौड़कर उसकी कमर से चिपट गया और विस्मित होकर बोला—तुम्हें चपरास और बल्लम कहाँ से मिल गया, कजाकी ?

कबाकी ने मुझे उड़ाकर कन्धे पर बैठालते हुए कहा—वह चूपाम किस काम की थी, मैया ? वह तो गुलामी की चपरास थी, यह पुरानी खृशी की चपरास है । पहले सरकार का नौकर था, अब तुम्हारा नौकर हूँ ।

यह कहते-कहने उसकी निगाह देकरी पर पड़ी, जो वही रखी थी । बोला—यह आदा कैसा है, मैया ?

मैंने सकुचाते हुए कहा—तुम्हारे ही लिए तो लाश हूँ । तुम भूखे होगे, आज क्या खाया होगा ?

कजाकी की आँखें तो मैं न देख सका, उसके कन्धे पर बैठा हुआ था; हाँ, उसकी आवाज से मालूम हुआ कि उसका गला भर आया है । बोला—मैया, क्या रुक्षी ही रोटियाँ खाऊँगा ? दाल, नमक, थी—और तो कुछ नहीं है । मैं अपनी भूल पर बहुत लजिंगत हुआ । सच ता है, बेनारा रुक्षी रोटियाँ कैसे खायगा ? लेकिन नमक, दाल, थी कैसे लाऊँ ? अब तो अभ्माँ चांके में हांगी । आदा लेकर तो किसी तरह भाग आया था (अभी तक मुझे न मालूम था कि मेरी चोरी पकड़ ली गयी; आटे की लकीर ने मुराग दे दिया है) । अब ये तोन-तीन चीजें कैसे लाऊँगा ? अभ्माँ से माँगूँगा, तो कभी न देंगी । एक-एक पैसे के लिए तो घरण्ठ रुकाती है, इतनी सारी चीजें कर्मों देने लगी ? एक-एक मुझे एक बात याद आयी । मैंने अपनी किताबों के बस्तों में कई आने पैसे रख छोड़े थे । मुझे पैसे जमा करके रखने में बड़ा आनन्द आता था । मालूम नहीं अब वह आदत क्यों बदल गयी । अब भी वही हानत होनी, तो शायद इतना फाकेमस्त न रहता । बाबूजी मुझे प्यार तो कभी न करते थे; पर पैसे खूब देते थे; शायद अपने काम में व्यस्त रहने के कारण, मुझसे पिण्ड छुड़ाने के लिए इसी नुस्खे को सब से आसान समझते थे । इनकार करने में मेरे रोने और मनलने का भय था । इस बाधा को वह दूर ही से शाल देते थे । अभ्माँजी का स्वभाव इससे ठीक प्रतिकूल था । उन्हें मेरे रोने आंर मलनने से किसी काम में बाधा पड़ने का भय न था । आदमी लेटेलेटे दिन-भर रोना सुन सकता है; हिसाब लगाते हुए जोर की आवाज से ध्यान बढ़ जाता है । अभ्माँ मुझे प्यार तो बहुत करती थी; पर पैसे कानाम सुनते ही उनकी ल्योरियाँ बदल जाती थीं । मेरे पास किताबें न थीं । हाँ, एक बस्ता था, जिसमें डाकखाने के दो-चार कार्म तह

करके पुस्तक रूप रखे हुए थे। मैंने सोचा—दाल, नमक और धी के लिए, क्या उतने पेसे काफी न होंगे? मेरी तो सुट्टी में नहीं आते। यह निश्चय करके मैंने कहा—अच्छा, मुझे उतार दो, तो मैं दाल और नमक ला दूँ; मगर रोज आया करागे न?

कजाकी—मैया, खाने का दांगे, तो क्यां न आऊँगा।

मैंने कहा—मैं रोज खाने को दूँगा।

कजाकी बोला—तो मैं रोज आऊँगा।

मैं नीचे उतार और दोइकर सारी पँजी उठा लाया। कजाकी को रोज बुलाने के लिए, उस वक्त मेरे पांस को हनूर हीरा भी होता, तो उसकी मेंट करने में मुझे पसांपेश न होता।

कजाकी ने विभिन्न हांकर पूछा—ये पेसे कहाँ पाये, मैया?

मैंने गर्व में कहा—मेरे ही ता हैं।

कजाकी—तुम्हारी अम्माँजी तुमको मारेंगी, कहेंगी—कजाकी ने फुसला-कर मगवा लिये होंगे। मैया, इन पैसों की मिठाई ले लेना और आदा मटके में रख देना। मैं भूखों नहीं मरता। मेरे दं। हाथ हैं। मैं भला भूखों मर सकता हूँ!

मैंने बहुत कहा कि पेसे मेरे हैं, लेकिन कजाकी ने न लिये। उसने बड़ी देर तक इधर-उधर की सैर करायी, गीत मनाये और मुझे घर पहुँचा कर चला गया। मेरे द्वार पर आटे की टोकरी भी रख दी।

मैंने घर में कढ़म रखा ही था कि अम्माँजी ने डॉटकर कहा—क्यों रे नार, तू आय कहो ले गया था? अब नारी करना सीखता है? बता, किसको आदा दे आया, नहीं तो तेरी खाल उधेइकर रख दूँगी।

मेरी नानी भर गयी। अम्माँ क्रोध-में सिंहनी हो जानी थी। भिट्पिण्ठाकर बोला—किसी का तो नहीं दिया।

अम्माँ—ूने आदा नहीं निकाला? देख किनना आदा सारे औँगन में बिलग पड़ा है?

मैं चुप खड़ा था। वह कितना ही धमकाती थी, चुपकारती थी, पर मेरी जबान न खुलती थी। आनेवाली विपत्ति के भय से प्राण सूख रहे थे। यहाँ तक कि

यह भी कहने की हिम्मत न पड़ती थी कि बिगड़ती बयों हों, आया तो द्वार पर रखा हुआ है, और न उठाकर लाते ही बनता था, माना क्रिया-शक्ति ही खुस हो गयी हो; मानो पैरों में हिलने की सामर्थ्य ही नहीं।

सहसा कजाकी ने पुकारा—बहूजी, आया द्वार पर रखा हुआ है। भेगा मुझे देने को ले गये थे।

यह मुनते ही अम्मौं द्वार की ओर नली गर्ती। कजाकी से वह परदा न करती थी। उन्होंने कजाकी से कोई बात की या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता; लेकिन अम्मौंही खाली टोकरी लिये हुए घर में आयी। फिर कोठरी में जाकर सन्दूक से कुछ निकाला और द्वार की ओर गर्ती। मैंने देखा कि उनकी पुट्ठी बन्द थी। अब मुझसे वहाँ खड़े न रहा गया।

अम्मौंजी के पीछे-पीछे मैं भी गया। अम्मौं ने द्वार पर कई बार पुकारा; मगर कजाकी चला गया था।

मैंने बड़ी बोलता से कहा—मैं जाकर स्वोज लाऊँ, अम्मौंजी? अम्मौंजी ने कियाँ है बन्द करते हुए कहा—तुम अँधेरे में कहाँ जाओगे, अभी तो यही खड़ा था। मैंने कहा कि यही रहना; मैं आती हूँ। तबतक न-जाने कहाँ खसक गया। बड़ा सकानी है! आया तो लेता ही न था। मैंने जवरदस्ती उसके गांठ में बोध दिया। मुझे तो बेचारे पर बड़ी दया आती है। न-जाने बेचारे के घर में कुछ खाने को है कि नहीं। रुपये लायी थी कि दे दूँगी; पर न-जाने कहाँ कह डाली। बच्चों के साथ समझदार बच्चे बनाकर माँ-बाप उनसे जितना असर काल सकते हैं, जितनी शिक्षा दे सकते हैं, उनसे खूँड़ बनाकर नहीं।

अम्मौंजी ने कहा—तुमने मूँसं पूँछ नयाँ न लिया! क्या मैं कजाकी को योङ्ग-सा आया न देनी?

मैंने इनका उत्तर न दिया। दिल में कहा—इस बक्क गुम्हे कजाकी पर दया आ गयी है, जो जागे दे डालो; लें-हन मैं भाँगना, तो मारने दौड़ानी। हाँ यह सोचकर नित प्रसन्न हुआ कि अब कजाकी भूखी न भरेगा। अम्मौंजी उसे रोज खाने का देंगी और वह रोज नुझे बन्वे पर बिटाकर सैर करायेगा। दूसरे दिन मैं दिनभर मुन्नू के साथ खेलता रहा।^१ शाम को सङ्क पर

जाकर खड़ा हो गया। मगर अँधेरा हो गया और कजाकी का कहीं पता नहीं। दिये जल गये, रास्ते में सजाई छा गया; पर कजाकी न आया।

मैं रोता हुआ घर आया। अम्माँजी ने पूछा—क्यों रोते हो, बेटा? क्या कजाकी नहीं आया?

मैं और जार से रोने लगा। अम्माँजी ने मुझे छाती से लगा लिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उनका भी कण्ठ गदाद् हो गया है।

उन्होंने कहा—बेटा, चुप हो जाओ। मैं कल किसी हरकारे को भेजकर कजाकी को बुलवाऊंगी।

मैं रोते-ही-रोते सो गया। सबेरे ज्यांही आँखें खुलीं, मैंने अम्माँजी से कहा—कजाकी को बुलवा दो।

अम्माँ ने कहा—आदमी गया है, बेटा! कजाकी आता होगा। खुश होकर खेलने लगा। मुझे मालूम था कि अम्माँजी जो बात कहती हैं, उसे पूरा जलूर करती हैं। उन्होंने सबेरे ही एक हरकारे को भेज दिया था। दस बजे जब मैं मुन्नू को लिए हुए घर आया, तो मालूम हुआ कि कजाकी अपने घर पर नहीं मिला। वह रात को भी घर न गया था। उसकी छोटी रो रही थी कि न-जाने कहाँ चले गये। उसे भय था कि वह कहीं भाग गया है।

बालकों का हृदय कितना कोमल होता है, इसका अनुमान दूसरा नहीं कर सकता। उनमें अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं हैं। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि कौन-सी बात उन्हें विकल कर रही है, कौन-सा कौश उनके हृदय में स्थाप रहा है, क्यों बार-बार उन्हें रोना आता है, क्यों वे मन मारे बैठे रहते हैं, खेलने में जो नहीं लगता? मेरी भी यही दशा थी। कभी घर में आता, कभी बाहर जाता, कभी सड़क पर जा पहुँचता। आँखें कजाकी को ढूँढ़ रही थीं। वह कहाँ चला गया? कहीं भाग तो नहीं गया!

तीसरे पहर को मैं खोया हुआ-सा सड़क पर खड़ा था। सहस्रा मैंने कजाकी को एक गली में देखा। हाँ, वह कजाकी ही था। मैं उसकी ओर चिल्ला। हुआ दोइँ; पर गली में उसका पता न थ., न-जाने किधर गायब हो गया। मैंने गली के इस सिरे से उस सिरे तक देखा; मगर कहीं कजाकी की गन्ध तक न मिली।

धर आकर मैंने अम्माँजी से यह बात कही । मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह यह बात सुनकर बहुत चिनित हो गयी ।

इसके बाद दो-तीन दिन तक कजाकी न दिखलायी दिया । मैं भी अब उसे कुछ-कुछ भूलने लगा । बच्चे पहले जितना प्रेम करते हैं, बाद को उतने ही निष्ठुर भी हो जाते हैं । जिस खिलाने पर प्राण देते हैं, उसी को दो-चार दिन के बाद पटककर फोड़ भी ढालते हैं ।

दस-बारह दिन और बीत गए । दोपहर का समय था । बाबूजी खाना खा रहे थे । मैं मुन्नू के पैरों में पीनस की पैजनियाँ बौंध रहा था । एक औरत पूँछ निकाले हुए आयी और आँगन में लड़ी हो गयी । उसके कपड़े फटे हुए और मैले थे, पर गारी, सन्दर खो थी । उसने मुझसे पूछा—मैया, बहूजी कहाँ हैं ?

मैंने उसके पास जाकर उसका मुँह देखते हुए कहा—तुम कौन हो, क्या बेचती हो ?

औरत—कुछ बेचती नहीं हूँ, तुम्हारे लिए ये कमल गड़े लायी हूँ । मैया, तुम्हें तो कमल गड़े बहुत अच्छे लगते हैं न ?

मैंने उसके हाथों से लटकती हुई पोटली को उत्सुक नेत्रों से देखकर पूछा—कहाँ से लायी हाँ ? देखें ।

औरत—तुम्हारे हरकारे ने भेजा है, मैया !

मैंने उछलकर पूछा—कजाकी ने ?

औरत ने सिर हिलाकर ‘हाँ’ कहा और पोटली खोलने लगी । इतने में अम्माँ जी भी रसोई से निकल आयीं । उसने अम्माँ के पैरों को स्पर्श किया । अम्माँ ने पूछा—तू कजाकी की घरवाली है ?

औरत ने भिर झुका लिया ।

अम्माँ—आजकल कजाकी क्या करता है ?

आंरत ने रोकर कहा—बहूजी, जिस दिन से आपके पास से आया लेकर गये हैं, उसी दिन से बीमार पड़े हैं । बस, मैया-मैया किया करते हैं । मैया ही मैं उनका मन बसा रहता है । चौंक-चौंककर ‘मैया ! मैया !’ कहते हुए द्वार की ओर दौड़ते हैं । न जाने उन्हें क्या हो गया है, बहूजी ! एक दिन मुझसे कुछ वहा न सुना, धर से चल दिये और एक गली में छिपकर मैया को देखते रहे । जब मैया ने उन्हें देख लिया, तो भागे । तुम्हारे पास आते हुए लजाते हैं ।

मैंने कहा—हाँ-हाँ, मैंने उस दिन तुमसे जो कहा था, अम्मौजी !

अम्मौ—घर में कुछ खाने-रीने को है ?

आंगत—हाँ बहूजी, तुम्हारे आसिरबाद से खाने-रीने का दुःख नहीं है । आज सबंध उठे आंगत तालाव की ओर चले गये । बहुत कहती रही, बाहर मत जाओ, हवा लग जायगी । मगर न माना ! मारे कमज़ोरी के पैर कौपने लगते हैं; मगर तालाव में वृक्षकर ये कमल गढ़े तोड़ लाये । तब मुझ से कहा—ले जा, भैया को दे आ । उन्हें कमल गढ़े बहुत अच्छे लगते हैं । कुशल-छेम पूछती आना

मैंने पांटली से कमल गढ़े निकाल लिये थे और मजे से चल रहा था । अम्मौ ने बहुत आंखें दिखायी ; मगर यहाँ इतना सब्र कहो !

अम्मौ ने कहा—कह देना, सब कुशल है ।

मैंने कहा—यह भी कह देना कि भैया ने बुलाया है । न जाओगे तो फिर तुमसे कभी न बालेंगे, हाँ !

बाबूजी खाना खाकर निकल आये थे । तालिये से हाथ-मुँह पांछते हुए बोले—आंगत यह भी कह देना कि साहब ने तुमको बहाल कर दिया है । जल्दी जाओ, नहीं तो कोई दूसरा आदमी रख लिया जायगा ।

आंगत ने अपना कपड़ा उठाया आंगत नली गयी । अम्मौ ने बहुत पुकारा; पर वह न रुकी । शायद अम्मौजी उसे सीधा देना चाहती थी ।

अम्मौ ने पूछा—सचमुच बहाल हो गया ?

बाबूजी—आंगत क्या भूठे ही बुला रहा हूँ । मैंने तो पाँचवें ही दिन उमकी बहाली की रिपोर्ट की थी ।

अम्मौ—यह तुमने बहुत अच्छा किया ।

बाबूजी—उस साथीमारी का यही दशा है ।

(४)

प्रातःकाल में उठा, तो क्या देखता हूँ । कक्ष मार्गी लाडो टेकता हुआ चला आ रहा है । वह बहुत दुखला हा गया था । मातृसंहोता था, चूँड़ा हा गया है । हरा-भरा पेंड़ सुखकर ढूँढ़ा हा गया था । मैं उस ही आंगत दोङ़ा आंगत उसकी कमर से निमट रखा । कजाकी ने मेरे गाल चूमे आंगत सुझे उठाकर कन्धे पर बैठाने की चेष्टा करने लगा; पर मैं न उठ सका । तब वह जानवरों की भौंति

भूमि पर हाथों और तुड़नों के बल खड़ा हो गया और मैं उसकी पीठ पर सवार होकर डाकताने की ओर चला। मैं उस वक्त फूला न समाता था और शायद कजाकी मुझसे भी ज्यादा खुश था।

बाबूजी ने कहा — कजाकी, तुम बहाल हो गये। अब कभी देर न करना।

कजाकी रोता हुआ पिताजी के पैरों पर गिर पड़ा; मगर शायद मेरे भाष्य में दोनों मुख भोगना न लिखा था—मुन्तू मिला, तो कजाकी छूया; कजाकी आया, तो मुन्तू हाथ से गया और ऐसा गया कि आज तक उसके जाने का दुःख है। मुन्तू मेरी ही थाली में खाता था। जब तक मैं खाने न बेठूँ, वह भी कुत्ते न खाता था। उसे मात से बहुत ही रुच थी; लेकिन जब तक खूब थी न पड़ा हो, उसे सन्तोष न होता था। वह मेरे ही साथ सोता था और मेरे ही भाष्य उठता भी था। सफाई तो उसे इतनी प्रबन्ध थी कि मल-मूत्र ल्याग करने के लिए घर से बाहर मैदान में निकल जाना था। कुत्ता ने असे निंद थी, कुत्तों को घर में न बुझने देता। कुत्ते को देखने ही थाली से उठ जाना और उसे द्वाइकर घर से बाहर निकाल देता था।

कजाकी को डाकताने में ल्योडकर जब मैं खाना खाने गया, तो मुन्तू भी आ वैया। अभी दो-चार ही कोर लाये थे कि एक बड़ा-भा भवरा कुत्ता गाँगन में दिल्लायी दिया। मुन्तू उसे देखने ही दौड़ा। दूसरे घर में जाकर कुना नूहा हो जाता है। भवरा कुत्ता उसे आते देखकर भगा। मुन्तू को अब लाट आना चाहेये था; मगर वह कुत्ता उसके लिए यमराज का दूत था। मुन्तू को उसे घर से निकालकर ही सन्तोष न हुआ। वह उसे घर के बाहर मैदान में भी दौड़ने लगा। मुन्तू को शायद ख्याल न रहा कि यहाँ मेरी अपनाई नहीं है। वह उस त्रित्रे में पहुँच गया था; जहाँ भवरे का भी उनाहा ही अधिमार था, जिनमा मुन्तू का। मुन्तू कुत्ता का भगाने-भगाने कशनिर् अपने बादुबल पर घमएड करने लगा था। वह यह न समझता था कि घर में उसकी पीठ पर घर के स्वामी का भग जाम किया करता है। भवरे ने इस मैदान में आने ही उलटकर मुन्तू की गरदन दबा दी। बचार मुन्तू के मुँह से आवाज तक न निकली। जब पड़ासियों ने शोर मचाया, तो मैं दौड़ा। देखा, तो मुन्तू मरा पड़ा है और भवरे का कहीं पता नहीं।

आँगुओं को होली

नामों को बिगाड़ने कि प्रथा न-जाने कब चली और कहाँ शुरू हुई । कोई इस संसार-व्यापी रोग का पता लगाये तो ऐतिहासिक संमार में अवश्य ही अपना नाम छोड़ जाय । पर्सियन का नाम तो श्री विलास था: पर मित्र लोग मिलबिल कहा करते थे । नामों का असर न्यरित पर कुछु न कुछु पढ़ जाता है । बेचारे सिंलबिल सचमुच ही सिलबिल थे । दफ्तर जा रहे हैं: मगर पाजामे का इजार-बन्द नीचे लटक रहा है । सिर पर फेल्ट-कैप है; पर लम्बी-मी चुटिया पांछ, भाँक रही है, अचकन यां बहुत मुन्दर है । न जाने उन्हें ल्योहारों से वया चिढ़ थी । दिवाली गुजर जाती पर वह भलामानस काँड़ी हाथ में न लेता । और होली का दिन तो उनकी भीदण परीक्षा का दिन था । तीन दिन वह प्रर से बाहर न निकलते । घर पर भी काले कपड़े पहने बैठे रहते थे । यार लोग दोहर में रहते थे कि कहीं बचा फँस जायँ; मगर घर में चुसकर तो फौजदारी नहीं की जानी । एक-आध बार पैसे भी, मगर धर्यांश्या पुतथा कर बेदाग निकल गये ।

लोकन अबकी समरया बहुत कंठन हा गयी थी । शास्त्रों के अनुसार २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद उन्होंने विवाह किया था । ब्रह्मचर्य के परिपक्व होने भे जो योङ्गी-बहुत कमर रही, वह तीन वर्ष के गंगे की मुद्रत ने पूरी कर दी । यथापि छी में उन्हें कोई शंखा न थी, तथापि वह आरतों को सिर चढ़ाने के हासी न थे । इस मामले में उन्हें अपना वहाँ पुरान-धुराना दड़ पसन्द था । बीवी को जब कसकर ढोंठ दिया, तो उसकी मजाल है कि रंग हाथ से कुए । विषति यह थी कि समुराल के लोग भी हंली मनाने आनेवाले थे । पुरानी मसल है, 'बहन अन्दर तो भाई सिकन्दर' । इन सिकन्दरों के आकमण से बचने का उन्हें कोई उपाय न सूझता था । मित्र लोग घर में न जा सकते थे; लेकिन सिकन्दरों को कान रोक सकता है ।

खी ने आँख फ़ाइकर कहा—अरे भैया ! वया सचमुच रंग न घर लाओगे ? यह कैसी होली है, बाबा ?

सिनिविल ने त्योरियों चढ़ाकर कहा—बस, मैंने एक बार कह दिया और बात दोहराना मुझे पसन्द नहीं। घर में रंग नहीं आयेगा और न होई कुयेगा। मुझे कपड़ों पर लाल लीटे देखकर मचजी आने लगती है। हमारे घर में ऐसी ही होली होती है।

छो ने सिर झुकाकर कहा—तो न लाना रंग-संग, मुझे रंग लेकर क्या करना है। जब तुम्हीं रंग न कुप्राप्त, तो मैं कैसे कू सकती हूँ। सिनिविल ने प्रसन्न हाकर कहा—निस्पत्तेह यही साध्यो छो का धर्म है।

‘लेकिन भैया तो आनेवाले हैं। वह क्यों मानेंगे?’

‘उनके लिए भी मैंने एक उगासाव तिरा है। उते सक्त भरना तुम्हारा काम है। मैं बोमार बा जाऊँ॥। एक चाइर प्राइडहर लें रहूँगा। तुम कहता, हन्हैं जबर आ गया। बस, चजो कुद्रो हुरू॥’

छो ने आँखें नचाकर कहा—ऐ नाज, कैसे बातें मुँह से लिखते हो! जबर जाप मुद्रा के घर, यहाँ आये तो मुँह कुज़स दूँ निगाड़े का।

‘तो फिर दूसरा उपाय ही क्या है?’

‘तुन ऊरवाली क़ियो कोठरो मैं क़िरा रहा। मैं रुइ दूँगो, उन्होंने बुताब लिया है। बाहर निकलेंगे तो हवा लग जायगी।

पाएँडतजो खिल उठे—बस, बस, यही सबसे अच्छा।

(२)

होली का दिन है। बाइर हाशमार मता हुआ है। पुराने जगते में अबतर और गुजार के सिवा और काई रंग न खेला जाता था। अब नीले, हरे, काते, सभा रंगों का मेतह हो गया है और इस संगठन से बवा आइपो के लिए तो संभव नहीं। हाँ, देवता बवं। सिनिवेन के दानों माने मुइत्तेभर के मर्दी, ओरतां, बबां और कूदां का नियामा बते हुए थे। बाहर के दिनान-लाने के कर्ता, दोवाँ—यहाँ तक कि तउगाँ भी रंग उड़ो था। घर में भी यही हाज था। मुइत्तेकी नकदें भवा कब मानने लगी थीं। परमाला तरु रंगीन हो गया था।

बड़े साते ने गूँजा—इसीं रंग चम्पा, चम्पा सबुत उनको तजोयत अच्छी; नहीं? खाना खाने भी न आये?

चम्पा ने सिर झुकाकर कहा—हों मैया, रात ही से पेट में कुछ दर्द होने लगा। डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है।

जरा देर बाद छुटे साले ने कहा—क्यों जीजीजी, क्या भाई साहब नीचे नहीं आयेंगे ? ऐसी भी क्या बीमारी है ! कहो तो ऊपर जाकर देख आऊँ।

चम्पा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—नहीं-नहीं, ऊपर मत जैयो ! वह रंग-बंग न खेलेंगे। डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है।

दोनों भाई हाथ मलकर रह गये।

सहसा छुटे भाई को एक बात सूझी—जीजाजी के कपड़ों के साथ क्यों न होली खेलें ; वंतों नहीं बीमार हैं।

बड़े भाई क मन में भी यह बात बैठ गयी। बहन बेचारी अब क्या करती ? निकन्द्रा ने कुछियों उसके हाथ से ले लीं और सिलबिल के सारे कपड़े निकाल-निकालकर रंग डाले। रुमाल तक न लूँडा। जब चम्पा ने उन कपड़ों को ओगन में अलगनी पर सूखने को डाल दिया तो ऐसा जान पड़ा, मानो विसी रंगरेज ने आह के जोङ रँग हैं। सिलांबल ऊपर बैठे-बैठे यह तमाशा देख रहे थे; पर जवान न खालते थे। छाती पर सर्प-सा लोट रहा था। सरंवर्षे खराब हो गये, दफ्तर जाने को भी कुछ न बचा। इन दुर्दाँ को मेरे कपड़ों से न जाने क्या बेर था।

धर में नाना प्रकार के स्वार्दिष्ट व्यञ्जन बन रहे थे। मुहल्ले की एक ब्राह्मणी के साथ चम्पा भी जुती हुई थी। दोनों भाई और कई अन्य सज्जन ओगन में भोजन करने बैठे, तो बड़े साले ने चम्पा से पूछा—कुछ उनके लिए भी दिनचरी-वच्चडी बनायी हैं ? पूरियाँ तो बेचारे आज खा न सकेंगे !

चम्पा ने कहा—अभी तो नहीं बनायी, अब बना लूँगी।

‘वाह री तेरी अबल ! अभी तक नुझे इतनी पिक्र नहीं कि वह बेचारे खायेंगे क्या। तो इतनी लापरवाह कर्मा न थी। जा निकाल ला जल्दी से चावल और मूँग की दाल।’

लीजिए—खिंचड़ी पकने लगी। इधर मित्रों ने भोजन करना शुरू किया। सिलबिल ऊपर बैठे अपनी किस्मत को रो रहे थे। उन्हें इस सारी विरास्त का एक ही कारण मालूम होता था—विवाह ! चम्पा न आती, तो ये साले क्यों

आते, कपड़े क्यों खराब होते, होली के दिन मँग की लिचड़ी क्यों खाने से मिलती ? मगर अब पछताने से क्या होता है ? जितनी देर में लागों ने भोजन किया, उतनी देर में लिचड़ी तैयार हो गयी । बांड़ साले ने खुद नम्मा को ऊर भेजा कि लिचड़ी की याली ऊपर दे आये ।

सिलविल ने यालों की आर कुपित नेवा से देखफर कहा—इसे मेरे सामने से हटा ले जाव ।

‘क्या आज उपास ही करंगे ?’

‘तुम्हारी यही इच्छा है, तो यही सही ।’

‘मैंने क्या किया । सबेरे से जुती हुई हूँ । मैया ने खुंद लिचड़ी डलवायी और मुझे यहाँ भेजा ।’

‘हाँ, वह तो मैं देख रहा हूँ कि मैं घर का स्वामी नहीं । सिरकन्दरों ने उस पर कब्जा जमा लिया है. मगर मैं यह नहीं मान सकता कि नुम चाहीं, तो आंर लागों के पहले ही मेरे पास याला न पहुँच जानी । मैं इसे पतिक्रत धर्म के विरुद्ध समझता हूँ, आंर क्या कहूँ ?’

‘तुम तो देख रहे थे कि दोनों जने मेरे सिर पर सवार थे ।’

‘अच्छी दिल्ली है कि आंर लोग नामसंनें आंर खस्ते उड़ायें और मुझे मँग की लिचड़ी दी जाव । वाह रे नसीब !’

‘नुम इसे दो-चार कोर ना लो, नुझे ज्याही अवसर मिनेगा, दूसरी याली लाऊँगी ।’

‘सारे कपड़े रँगवा डाने, दफ्तर कैसे जाऊँगा ? यह दिल्ली मुझे जरा भी नहीं भाती । मैं इसे बदमाशी कहता हूँ । तुमने सन्दूक की कुञ्जी क्यों दे दी ? क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ ?’

‘जबरदस्ती छीन ली । तुमने नुना नहीं ? करती क्या ?’

‘अच्छा, जो हुआ सो हुआ, यह याली ले जाव । धर्म सप्रकाना, तो दूसरी याली लाना, नहीं तो आज व्रत ही सही ।’

एकाएक पैरों की आहट पाकर सिलविल ने सामने देता, तो दोनों साले आ रहे हैं । उन्हें देखते ही बिनारे ने मुँह बना लिया, चादर मेर शरीर ढक लिया और कराहने लगे ।

बड़े साले ने कहा—कहाए, कैसी तबीयत है? योङ्गी-सी खिचड़ी खा लीजिए।

सिलबिल ने मुँह बनाकर कहा—अभी तो कुछ खाने की इच्छा नहीं है।

‘नहीं, उपवास करना तो हार्निकर होगा। खिचड़ी खा लीजिए।’

बेचारे सिलबिल ने मन में इन दोनों शैतानों को खूब कोसा और विष की भौंति झुचड़ी करठ के नीचे लटारी। आज होली के दिन खिचड़ी ही भाग्य में लिखी थी ! जब तक सारी झुचड़ी समाप्त न हो गयी, दोनों वहाँ ढटे रहे, मानो जेल के अधिकारी किसी अनशन व्रतधारी कैदी को भोजन करा रहे हों। बेचारे को टूस-टूस खिचड़ी खानी पड़ी। पकवानों ने लए, गुजायश ही न रही।

(३)

दस बजे रात को चम्पा उत्तम पदार्थों का थाल लिये पतिदेव के पास पहुँची। महाशय गन्ही-मन भुँभला रहे थे। भाइयों के सामने मेरी परवाह कौन करता है। न जाने कहों से दोनों शैतान कट पढ़े। दिन-मर उपवास कराया और अभी तक भोजन का कहीं पता नहीं। बांर चम्पा का थाल लाते देखकर कुछ अग्रि शान्त हुँदे। बाले—आ तो बहुत संघरा है, एक-दो घण्टे बाद क्यों न आयीं ? चम्पा ने सामने थाली रखकर कहा—तुम तो न हारी ही मानते हो, न जीतीं। अब आंखर ये दो मेहमान आये हुए हैं, इनका संवासत्कार न करूँ तो भी तो काम नहीं चलता। तुम्हाँ को बुरा लगेगा। कौन रोज आयेंगे।

‘ईश्वर न करे कि रोज आयें, यहों तो एक ही दिन में बधिया बैठ गयी।’

थाल की मुग्धन्धमय, तरबतर चीजें देलकर सहसा परिणतजी के मुखार-विन्द पर मुख्कान की लाली दाँड़ गयी। एक-एक चीज खाते थे और चम्पा को सराहते थे—सच कहता हूँ, चम्पा, मैंने ऐसी चीजें कभी नहीं खायी थीं। हलवाई साला क्या बनायेगा। जी नाहता है, कुछ इनाम दूँ।

‘तुम मुझे बना रहे हों। क्या करूँ, जैसा बनाने आता है, बना लायी।’

‘नहीं जी, सच कह रहा हूँ। मेरों तो आत्मा तक तृप्त हो गयी। आज मुझे शत हुआ इंक भोजन का सम्बन्ध उदर से इतना नहीं, जितना आत्मा से है। बतलाओ, क्या इनाम दूँ ?’

‘जो मोगू, वह दोगे ?’

‘दूँगा—जनेऊ की कसम खाकर कहता हूँ।’

‘न दो तो मेरी बात जाय।’

‘कहता हूँ भाई, अब कैसे कहूँ। कशा लिखा-पढ़ो कर दूँ?’

‘अच्छा, तो माँगती हूँ। मुझे अरने साथ होली खेलने दो।’

परिणतजी का रंग उड़ गया। आँखें फाढ़कर बोले—होली खेलने दूँ? मैं तो होली खेलता नहीं। कभी नहीं खेला। होला खेलना होता, तो घर में छिप-कर क्यों बैठता।

‘आरों के साथ मत खेलो; लेकिन मेरे साथ तो खेलना ही पड़ेगा।’

‘यह मेरे नियम के विरुद्ध है। जिस चीज़ का अपने घर में उचित समझूँ’
उसे किस न्याय से घर के बाहर अनुचित समझूँ, साचो।’

चम्पा ने सिर नीचा करके कहा—घर में ऐसी कितनी बातें ऊचित समझते हो, जो घर के बाहर करना अनुचित हो नहीं पाप भी है।

परिणतजी भैरवे हुए बोले—अच्छा भाई, तुम जोतो, मैं हाय। अब मैं तुम से यहीं दान माँगता हूँ...

‘पहले मेरा पुरस्कार दे दो, पीछे मुझने दान माँगना’—यह कहते हुए चम्पा ने लाटे का रंग उठा लिया और परिणतजी का भिर सं पाँव तक नहला दिया। जबतक वह उठकर भाँगउसने भट्ठा-भर गुगाज लेकर सारे मुँह में पांत दिया।

परिणतजो रोनी सूरत बनाकर बोले—अभी आंर कसर बाकी हा, तो वह भी पूरी कर लो। मैं न जानता या कि तुम मेरो आस्तोन की साप बनाओ। अब और कुछ रंग बाकी नहीं रहा।

चम्पा ने पति के मुव की आर देखा, तो उस पर मनाविदना का गहरा रंग भलक रहा था। पक्षता घर बाली—क्या तुम सचनुच बुरा मान गये हो? मैं तो समझती थी कि तुम के बल मुझे चिढ़ा रहे हो।

श्रोवलास ने काँसते हुए स्वर में कहा—“नहां चम्पा, मुझे बुरा नहीं लगा। हाँ, तुमने मुझे उस कर्तव्य को याद दिला दो, जो मैं अरनो कायरता के कारण भुला बैठा था। वह सामने जां चित्र देख रहा हो, मेरे परम मित्र मनहरनाथ का है, जो अब संसार में नहीं है। तुमसे क्या कहूँ, कितना सरस, कितना भावुक कितना साहसी आदमी था! देश को दशा देख-देखकर उसका खून जलता रहता था। १६-२० भी कोई उम्र होती है; पर वह उसी में अपने जीवन

का मार्ग निश्चित कर चुका था । सेवा करने का अवसर पाकर वह इस तरह उसे पकड़ता था, मानो सम्पत्ति हो । जन्म का ऊंचागी था । बासना तो उसे छू ही न गयी थी । हमारे आंर साथी मैर-सपाटे करते थे ; पर उसका मार्ग सबसे अलग था । सत्य के लिए प्राण देने को तैयार, कहीं अन्याय देखा और भवें तन गर्थी, कहीं पत्रों में अत्याचार की खबर देखी और चेहरा तमतमा उठा । ऐसा तो मैंने आदमी ही नहीं देखा । ईश्वर ने अकाल ही बुला लिया, नहीं तो वह मनुष्यों में रज़ होता । किसी मुझीबत के मारे का उद्घार करने को अपने प्राण हथेली पर लिए, फरता था । खां-जानि का इतना आदर आंर सम्मान कोई क्या करेगा ? खी उम्रके लिये पूजा आंर भक्त की नस्तु थी । पौँन वर्ष हुए, यही होली का दिन था । मैं भग क नशे में चूर, रंग में सिर से पाँव तक नहाया हुआ, उसे गाना मुनने के लिए बुलाने गया, तो देखा कि वह कपड़े पहने कहीं जाने को तैयार है । पूछा—कहाँ जा रहे हों ?

‘उमने नेरा हाय पकड़कर कहा—तुम अच्छे बक पर आ गये, नहीं तो मुझे जाना पड़ता । एक अगाध तुढ़या मर गयी है, काई उसे कन्धा देनेवाला नहीं मिलना । काई किर्मा मित्र न मिलने गया हुआ है, काई नशे में चूर पड़ा हुआ है, काई मित्रों की दावत कर रहा है, काई महफज सजाय बैता है । काई लाश का उठानेवाला नहीं । ब्राह्मण-कृत्रिय उस चमारिन की लाश कैसे छुयेंगे, उनका तो भर्म भ्रष्ट होता है, काई तैयार नहीं होता । बड़ी मुश्किल से दो कहार मिले हैं । एक मैं हूँ, जाथ आदमी की कमी थी, सां ईश्वर ने तुम्हें भेज दिया ।

चलो, चलें !

‘हाय ! अगर मैं जानता कि यह प्यारे मनहर का आदेश है, तो आज मेरी आत्मा को इतनी ग्लाने न होती । मेर घर कई मित्र आये हुए थे । गाना हो रहा था । उस बक लाश उठाकर नदी जाना मुझे अप्रिय लगा । बोला—इस बक तो भाई, मैं नहीं जा सकूँगा । घर पर मेहमान बैठे हुए हैं । मैं तुम्हें बुलाने आया था ।’

‘मनहर ने मेरी आंर तिरस्कार के नेत्रों से देखकर कहा—अच्छी बात है, तुम जाओ ; मैं आंर कोई साथी खोज लूँगा । मगर तुमसे मुझे ऐसी आशा नहीं थी । तुमने भी वही कहा, जो तुमसे पहले आौरां ने कहा था । कोई नयी

बात नहीं थी । अगर हम लोग अपने कर्तव्य को भूल न गये होने, तो आज वह दशा ही क्यों होती ? ऐसी होली को धिक्कार है ! योहारं तमाशा देखने, अच्छी-अच्छी चीजें खाने और अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने का नाम नहीं है । यह ब्रत है, तप है, अपने भाइयों से प्रेम और सहानुभूति करना ही योहारों का खास मतलब है । और कपड़े लाल करने के पहले खून को लाल कर लो । सुकेद खून पर यह लाली शोभा नहीं देती ।'

'यह कहकर वह चला गया । मुझे उस बक्त यह फ़रकारें बहुत बुरी मालूम हुईं । अगर मुझमें वह सेवा-भाव न था, तो उसे मुझे यीं धिक्कारने का बोई अधिकार न था । वर चला आगा ; पर वे बातें बराबर मेरे कानों में गँजती रहीं । होली का सारा मजा बिगड़ गया ।'

'एक महीने तक हम दोनों से मुलाकात न हुईं । कालेज इम्तहान की तैयारी के लिए बंद हो गया था । इमलिए कालेज में भी भेट न होती थी । मुझे कुछ खबर नहीं, वह कब और कैसे बीमार पड़ा, कब अपने घर गया । सहसा एक दिन मुझे उसका एक पत्र मिला । हाय ! उस पत्र को पढ़कर आज भी छाती फटने लगती ।'

श्रीविलास एक नृण तक गला ऊंक जाने के कारण बोल न सके । किर बोले—किसी दिन तुम्हें फिर दिखाऊंगा । लिखा था, मुझसे आविरी बार मिल जा, अब शायद इस जीवन में भेट न हो । बत मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ा । उसका घर मेरठ के जिले में था । दूसरी गाड़ी जाने में आधा धरेटे की कमर थी । तुरन्त चल पड़ा । मगर उसके दर्शन न वदे थे । मेरे पहुँचने के पहले ही वह सिधार चुका था । चम्पा, उसके बाद मैंने होली नहीं खेली, होली ही नहीं, और सभी योहार छोड़ दिये । ईश्वर ने शायद मुझे किया की शक्ति नहीं दी । अब बहुत चाहता हूँ कि कोई मुझसे संवाद का काम ले । सुद आगे नहीं बढ़ सकता ; लेकिन पीछे चलने को तैयार हूँ । पर मुझसे कोई काम लेनेवाला भी नहीं ; लेकिन आज वह रंग डालकर तुमने मुझे उस धिक्कार की याद दिला दी । ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं मन में ही नहीं, कर्म में भी मनहरन बनूँ ।

यह कहते हुए श्रीविलास ने तश्तरी से गुलाल निकाला और उसे चिन्ने पर छिन्नकर प्रणाम किया ।

अभिसमाधि

सायु-संतो के सत्संग से बुरे भी अच्छे हो जाते हैं, किंतु पयाग का दुभांग्य था। के उस पर सत्संग का उल्या ही असर हुआ। उसे गाँजे, चरस और भंग का चक्का पड़ गया, जिसका फल यह हुआ कि एक मेहनता, उद्यमशोल युवक आलत्य का उपासक बन चैठा। जीवन संग्राम में यह आनन्द कहाँ! किसी बट-तृन के नीचं धूनी जल रही है, एक जटाधारी महात्मा विराज रहे हैं, भक्तजन उन्हें धेरे बैठे हुए हैं, और तिल-तिल पर चरस के दम लग रहे हैं। बीच-बीच में भजन भी हो जाते हैं। नजूरी-धूरो में यह स्वर्णमुख कहाँ! चिलम भरना पयाग का काम था। भक्तों को परलोक में पुण्यफल की आशा थी, पयाग को तत्काल फल मिलता था—चिलमों पर पहला हक उसा का होता था। महात्माओं के श्रीमुख से भगवत् चर्चा मुनते हुए वह आनन्द से घिहज हो उठता था, उस पर आत्मावस्मृति सी छा जाती थी। वह सांरभ. संगीत और प्रकाश से भरे हुए एक दूसरे हो संसार में पहुँच जाता था। इसलिए जब उसकी छी रुकिमन रात के दस-ग्यारह बज जाने पर उसे बुलाने आते, तो पयाग का प्रत्यक्ष का क्रूर अनुभव हाता, संसार उसे कोटों से भरा हुआ जगल-सा दीखता, विशेषतः जब घर आने पर उसे मालूम होता कि अभी चूल्हा नहीं जला और चने-चैठे की कुछ फिक्र करनी है। वह जानि का भर था, गोव की चोकीदारी उसकी मीरास थी, दो रुपये और कुछ आने वेतन मिलता था। बरदी और सापा मुफ्ते। काम या ससाह में एक दिन याने जाना, वहाँ अफसरों के द्वार पर भाड़ लगाना, अस्तवल साफ करना, लकड़ी चीरना। पयाग रक्त के बैंड पी-पीकर ये काम करता, क्योंकि अवज्ञा शारीरिक और आर्थिक दानों हो दाढ़ से महँगा पड़ती थी। आँमू यां मुक्कते थे कि चोकीदारी में यांद कई काम था, तो इतना ही, और महीने में चार दिन के लिए दो रुपये और कुछ आने कम न थे। फिर, गोव में भी अगर बड़े आदिमियों पर नहीं, तो नीचों पर रोष था। वेतन पंशन थी और जब से महात्माओं का सम्पर्क हुआ, वह पयाग के जेब-खर्च की मद में

आ गयी। अतएव जीविका का प्रश्न दिनोंदिन चिन्तोन्पादक रूप भारण करने लगा। इन सत्संगों के पहले यह दर्शात् गाँव में मजदूरी फरता था। रुक्मिन लकड़ियाँ तोड़कर बाजार ले जाती, पयाग कभी आरा चलाता, कभी हल जोतता, कभी पुर हाँकता। जो काम सामने आ जाय, उसमें जुट जाता था। हँसमुख, श्रमशील, विनोदी, निर्बन्ध आदमी या आँर ऐसा आदमी कभी भूखी नहीं मरता। उसपर नम्र इतना कि किसी काम के लिए ‘नहीं’ न करता। किसी ने कुछ कहा और वह ‘अच्छा भेगा’ कहकर दौड़ा। इसलिए उसका गाँव में मान था। इसी की बदौलत निरुद्यम हो जाने पर भी दो-तीन साल उस अधिक कष्ट न हुआ। दोनों जन की तो बात ही क्या, जब महतों का यह ऋद्धि न प्राप्त थी, जिनके द्वार पर बैलों का तीन-तीन जांड़ियाँ बंधती था, तो पयाग किस गिनती में था। हाँ, एक जून की दाल-राणी में सदेह न था। परन्तु अब यह समस्या दिन-पर-दिन विषयतर होती जाती थी। उसपर विपर्ति यह थी कि रुक्मिन भी अब किसी कारण में उतनी पतिपरायण उतनी सेवा-शील, उतनी तप्तर न थी। नहीं, उसकी प्रगल्भता आँर वाचालता में आशन्य-जनक विकास होता जाता था। अतएव पयाग को किसी ऐसी धिंदि की आवश्यकता थी, जो उस जीविका की चिन्ता से मुक्त कर दे आँर वह निश्चन्त दौकर भगवद्भजन आँर साधुसेवा में प्रवृत्त हो जाय।

एक दिन रुक्मिन बाजार से लकड़ियाँ बेचकर लांगी, तो पयाग ने कहा—
ला, कुछ पैसे मुझे दे दे, दम लगा आऊँ।

रुक्मिन ने मुँह फेरकर कहा—दम लगाने की ऐसी चाट है, तो काम क्यों नहीं करते? क्या आजकल कोई बाबा नहीं है, जाकर चिलम भरो?

पयाग ने त्योरी चढ़ाकर कहा—भला चाहती हूँ तो पैसे दे दे; नहीं तो इस तरह तंग करेगी, तो एक दिन कहीं निकल जाऊँगा, तब रोयेगी।

रुक्मिन अँगूष्ठा दिखाकर बालो—राये मेरा बला। तुम रहते ही हो, तो कौन सोने का कौर खिला देते हो? अब भी छाती फाइती हूँ, तब भी छाती फाइती।

‘तो अब यहीं फैसला है!'

‘हाँ, हाँ, कह तो दिया, मेरे पास पैसे नहीं हैं।'

‘गहने बनवाने के लिए पैसे हैं और मैं चार पैसे माँगता हूँ, तो यों जवाब देती है !’

रुक्मिन तिनकर बोली — ‘गहने बनवाती हूँ, तो तुम्हारी छाती क्यों फ़र्श्ही है ? तुमने तो पीतल का लुला भी नहीं बनवाया, या इतना भी नहीं देखा जाता ?’

पयाग उस दिन घर न आया। रात के नी बज गये, तब रुक्मिन ने किवाड़ बन्द कर लिये। समझी, गाँव में कहीं लिपा बैठा होगा। समझता होगा, मुझे मनाने आयेगा, मेरी बला जाती है।

जब दूसरे दिन भी पयाग न आया, तो रुक्मिन को चिन्ता हुई। गाँव-भर छान आयी। चिराङ्गा किसी अद्वैत पर न मिली। उस दिन उसने रसाह नहीं बनायी। गत का लेटी भी नों बहुत देर तक आखिं न लगी। शंका हो रही थी, पयाग मच्चमुन तो विरक्त नहीं हो गया। उसने सोचा, प्रातःकाल पत्ता-पत्ता छान डालेंगी, किमी माधु-मन्त्र के साथ होंगा। जाकर याने में रपट कर दूँगी।

अभी तड़का ही या कि रुक्मिन थाने में चलने को तैयार हो गयी। किवाड़ बन्द करके निकली ही थी। इके पयाग आता हुआ दिल्लाई दिया। पर वह अकेला न था। उसके पीछे-पीछे एक स्त्री भी थी। उसकी लंबाई की साझी, रँगी हुई चादर, लम्बा वूँव आंर शर्मीला चाल देखकर रुक्मिन का कलेजा धक से हो गया। वह एक लाल गंध हत-चुद्ध-सी बड़ी रही, तब बढ़कर नयी सौत को ढोनां हाथों के बीच में ले लिया और उसे इस भाँति धीरे-धोरे घर के अन्दर ले चली, जैस कोई रोगी जीवन से निराश होकर विष-पान कर रहा हो।

जब पड़ोसिनों की भोड़ लूँग गयी, तो रुक्मिन ने पयाग से पूँछा—इसे कहाँ मे लाये ?

पयाग ने हँसकर कहा—‘घर से भागी जाती थी, मुझे रास्ते में मिल गयी। घर का काम-धन्वा करेगी, पड़ी रहेगी।’

‘मालूम होता है, मुझसे तुम्हारा जी भर गया !’

पयाग ने तिरङ्गी चितवनों से देखकर कहा—‘दुन् पगली, इसे तेरी सेवा-दहल करने को लाया हूँ।’

‘नयी के आगे पुरानी को कौन पूछता है ?’

‘चल, मन जिससे मिले वही नयी है, मन जिससे न मिले वही पुरानी है।’

ला, कुछ पैसे हो तो दे दे, तीन दिन से दम नहीं लगाया, पैर सीधे नहीं पड़ते। हाँ, देख दो-चार दिन इस बेचारी को बिला-पिला दे, फिर तो आप ही काम करने जरेगी।'

रविमन ने पूरा रुपया लाकर पयाग के हाथ पर रख दिया। दूसरी बार कहने की जरूरत ही न पड़ी।

(२)

पयाग में चाहे और कोई गुण हो या न हो, यह मानना पड़ेगा कि वह शासन के मूल सिद्धान्तों से परिचित था। उसने भेद-नोंत को अपना लक्ष्य बना लिया था।

एक मास तक किसी प्रकार की विप्र-बाधा न पड़ी। रविमन अपनी सारी चोकड़ियाँ भूल गयी थीं। बड़े तड़के उट्टी, कभी लकड़ियाँ तोड़कर, कभी नाग काटकर, कभी उपले पाथकर बाजार ले जाती। वहाँ जो कुछ मिलता, उसका आधा तो पयाग के हथ्ये चढ़ा देती। आधे में घर का काम चलता। वह सात को कोई काम न करने देती। पड़ोसिनों से कहती—बहन, साँत हैं तो क्या, हैं तो अभी कल की बदुरिया। दो-चार महीने भी आराम से न रहेगी, तो क्या याद करेगी। मैं तो काम करने को हूँ ही।

गाँव-भर में रविमन के शाल-स्वभाव का बखान होता था, पर सत्संगी धार पयाग सब कुछ समझता था और अपनी नीरि की सफलता पर प्रसन्न होता था।

एक-दिन बहू ने कहा—दीनी, अब तो घर में बेठ-बैठे जो ऊबता है। मुझे भी कोई काम दिला दो।

रविमन ने स्नेह-सिंचित स्वर में कहा—क्या मेरे मुख में कानिल युतयाने पर लगी हुई है? भीतर का काम किये जा, बाहर के लिए तो मैं हूँ ही।

बहू का नाम कौसल्या था, जो बिगड़कर सिलिया हा गया था। इस वक्त सिलिया ने कुछ जवाब न दिया। लेकिन यह लौंगरों की दशा अब उसके लिए असद्य हो गयी थी। वह दिन-भर घर का काम करते-करते मरे, कोई नहीं पूछता रविमन बाहर से चार पैसे लाती है, तो घर की मालकिन बनी हुई है। अब सिलिया भी मजूरी करेगी और मालकिन का घमण्ड तोड़ देगी। पयाग पैसों

का यार है, यह बात उससे अब लियी न थी। जब रुक्मिन चारा लेकर बाजार चली गयी, तो उसने घर की टट्ठी लगाइ और गाँव का रंग-ढंग देखने के लिए निकल पड़ी। गाँव में ब्राह्मण, डाकुर, कायस्थ, बनिये सभी थे। सिलिया ने शील और मंकोच का कुछ ऐसा स्वाँग रचा कि सभी लियाँ उस पर मुग्ध हो गयी। किसी ने चार गल दिया, किसी ने दाल, किसी ने कुछ। नयी बहू की आवभगत कौन न करता? पहले ही दौरे में सिलिया को मालूम हो गया कि गाँव में पिसनहारी का श्याम ल्याली है और वह इस कमी को पूरा कर सकती है। वह यहाँ संधर लोडी, तो उसके सिर पर गेहूँ से भरी ढुई एक टोकरी थी।

पयाग ने पहर रात ही भें चक्की की आवाज मुनी, तो रुक्मिन से बोला—
आज तो मिलिया अभी मेरी सेवने लगी।

रुक्मिन बाजार से आदा लाया था। अनाज और आटे के भाव में विशेष अन्तर न था। उसे आश्र्वय दुआ कि सिलिया इतने सबेरे क्या पीस रही है। उठकर काठरी में गयी, तो देखा कि सिलिया अंधेरे में बैठी कुछ पीस रही है। उसने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और टोकरी को उठाकर बोली—तुमसे किसने पीसने को बहा है? किसका अनाज पीस रही है?

सिलिया ने निरशक हँसकर कहा—तुम जाकर आराम से सोती क्यों नहीं। मैं पीसती हूँ, ता तुम्हरा क्या रिगड़ता है! चक्की की शुमर-धुमर भी नहीं महा जाती! लाओ, टोकरी दे दो, वैठें-वैठे कबतक ल्याऊँगी, दो महीने तो हो गये।

‘मैंने तो तुमसे कुछ नहीं कहा!'

‘तुम कहा, चाहे न कहो; अपना धरम भी तो कुछ है।'

‘तू अभी यहाँ के आदमयों को नहीं जानती। आदा तो पिसाते सबका अच्छा लगता है। पैस देते रोती हैं। किसका गेहूँ है? मैं सबेरे उसके सिर पटक आऊँगा।'

सिलिया ने शाकमन के हाथ से टोकरा लीन ली आंर बोली—पैसे क्यों न देंगे? कुछ बेगार करती हूँ?

‘तू न मानेगी?'

‘तुम्हारी लौड़ी बनकर न रहूँगी।'

यह तकरार मुनकर पयाग भी आ पहुँचा और रुक्मिन से बोला—काम

करती है तो करने क्या नहीं देती ? अब क्या जनम-भर बहुरिया ही बनी रहेगी ? हो तो गये दो महीने ।

‘तुम क्या जानो नाक तो मेरी कटेगी ।’

सिलिया बोल उठी— तो क्या कोई थैठे विलाता है ? चौका-बरतन, आङ्-बहारू, रोटी-पानी, पीसना-कृष्णा, यह कौन करता है ? पानी लीचते-खांनते मेरे हाथों में थट्टे पड़ गये । मुझसे अब यह सारा काम न होगा ।

पयाग ने कहा—तो तू ही बाजार जाया फर । फर का काम रहने ते । रुकिमन कर लेगी । रुकिमन ने आपत्ति की - ऐसी बात भूँह गे निकालते लाज नहीं आती ! तीन दिन की बहुरिया बाजार में घूमेगी, तो ससार क्या कहेगा ।

सिलिया ने आग्रह करके कहा—संमार क्या कहेगा, क्या कोई ऐब करने जाती हूँ ?

सिलिया की डिग्री हो गयी । आधिपत्य रुकिमन के हाथ से निकल गया ।

सिलिया की अमलदारी हो गयी । जवान औरत थी । गेहूँ पीसकर उठी तो औरों के साथ प्रास छीलने चली गयी, और इतनी प्रास छीली कि सब दंग रह गयी ! गट्टा उटाये न उठता था । जिन पुरुषों को प्रास छीलने का बड़ा अभ्यास था, उनसे भी उसने बाजी मार ली ! यह गट्टा बारह आने को विका । सिलिया ने आया, चावल, दाल, तेल, नमक, तरकारी, मसाला सब कुछ लिया, और चार आने बचा भी लिये । रुकिमन ने समझ रखा था कि सिलिया बाजार से दो-चार आने पैसे लेकर लौटेगी तो उसे ढौँटूँगी और दूसरे दिन से फिर बाजार जाने लगूँगी । फर मेरा राज्य हो जायगा । पर यह सामान देखे, तो औँखें झुल गयीं । पयाग खाने बैठा तो मसालेदार तरकारी का बलात् करने लगा । महीनों से ऐसी स्वार्दृष्ट वस्तु मर्यास्तर न हुई थी । बद्रुत प्रसन्न हुआ । भोजन करके बह बाहर जाने लगा, तो सिलिया बरोठे में खड़ी मिल गयी । बोला—आज कितने पैसे मिले ?

‘बारह आने मिले थे ।’

‘सब खर्च कर दाले ? कुछ बचे हों तो मुझे दे दे ।’

सिलिया ने बचे हुए चार आने पैसे दे दिये । पयाग पैसे खनखनाता हुआ

बोला—तूने तो आज मालामाल कर दिया। रुक्मिन तो दो-चार पैसां ही में टाल देती थी।

‘मुझे गाड़कर स्वतन्त्र योड़ी ही है। पैसा खाने-पाने के लिए है कि गाड़ने के लिए?’

‘अब तू ही बाजार जाया कर, रुक्मिन घर का काम करेगी।’

(३)

रुक्मिन और सिलिया में संग्राम छिड़ गया। सिलिया पश्चात् पर अपना आधिकार जमाये रखने के लिए जान तोड़कर परिश्रम करती। पहर रात ही से उसकी चक्की की आवाज कानों में आने लगती। दिन निकलते ही शास लाने चली जाती और जरा देर मुस्ताकर बाजार की राह लेती। वहाँ से लौटकर भी वह बेकार न बैठती, कभी युन कातती, कभी लकड़ियाँ तोड़ती। रुक्मिन उसके प्रबन्ध में बरावर और निकालनी और जब अवसर मिलता तो गोबर बटाकर उपले पार्थी आंग गोबर में बेचती। पश्चात् के दानों हाथों में लड्डू थे। छियाँ उसे अधिक-से-अधिक पैस देने और स्नेह का अधिकांश अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न करती रहती, पर सिलिया ने कुछ ऐसी ददना से आसन जमा लिया था कि किंगी तरह हिलाये न हिलती थी। यहाँ तक कि एक दिन दोनों प्रतियोगियों में मुहळमगुल्ला ठन गयी। एक दिन सिलिया शास लेकर लौटी तो पसीने में तर थी। फागुन का महीना था; धूप तेज थी। उसने सोचा, नहाकर तब बाजार जाऊँ। शास द्वार पर ही रस्तकर वह तलाव में नहाने चली गयी। रुक्मिन ने योड़ी-री शास निकालकर पड़ोसिन के घर में लिपा दी और गढ़े को ढीला करके बरावर कर दिया। सिलिया नहाकर लौटी तो शास कम मालूम हुई। रुक्मिन में पूछा। उसने कहा —मैं नहीं जानती। सिलिया ने गालियाँ देनी शुरू की—जिसने मरी शास लुई हां, उसकी देह में कोइ पड़, उसके बाप और भाई मर जायें, उसकी आखेर फूट जायें। रुक्मिन कुछ देर तक तो जब्त किये बैठी रही, आंधेर धूत में उताल आ ही गया। झक्काकर उठो और सिलिया के दातीन तमाचे लगा दिये। सिलिया छाती पीट-पीटकर रोने लगी। सारा मुहळा जमा हो गया। सिलिया की सुरुदृढ़ और कार्यशीलता सभी का ओरों से खटकती थी—वह सबसे अधिक शास क्यों छोलती है, सबसे ज्यादा लकड़ियाँ क्यों लाती

है, इतने सबेरे क्यों उठती है, इतने पैसे क्यों लाती है, इन कारणों ने उसे पड़ो-सियां की सहानुभूति से बंचित कर दिया था। सब उसों का बुरा-मला कहने लगी। मुट्ठी-भर धास के लिए इतना ऊधम मना डाला, इतनी धास तो आदमी भाङ्कर फेंक देता है। धास न हुई, सोना हुआ। तुझे तो राचना चाहिये यह कि अगर किसी ने ले ही लिया, तो है तो गौव-पर ही का। बाहर का कोई चोर तो आया नहीं। तूने इतनी गालियों दीं, तो किसको दीं? पड़ासियां ही का तो?

संयोग से उस दिन पयाग थाने गया हुआ था। शाम को यका-मैंदा लौग, तो खिलिया से बोला—ला, कुछ पैसे दे दे, तौ दम लगा आऊ। थक-कर चूर हो गया हूँ।

खिलिया उसे देखते ही हाय-हाय करके रोने लगी। पयाग ने घबड़ाकर पूछा—क्या हुआ, क्या? क्यों रोती है? कहीं गमी तो नहीं हो गयी? नैहर से कोई आदमी तो नहीं आया?

“अब इस घर में मेरा रहना न होगा। अपने घर जाऊँगी।”

“अरे, कुछ मुँह से तो बोल; हुआ क्या? गौव में किसी ने गाली दी है? किसने गाली दी है? घर फूँक दूँ, उसका चालान करवा दूँ।”

सिंलिया ने रो-रंकर सारी कथा कह सुनायी। पयाग पर आज थाने में खूब मार पड़ी थी। भक्षाया हुआ था। यह कथा मुँही, तो देह में आग लग गयी। रुकिमन पानी भरने गयी थी। वह अभी बड़ा भी न रखने पायी थी कि पयाग उसपर दूर पड़ा और मारते-मारते बेदम कर दिया। वह मार का जवाब गालियों से देती थी और पयाग हरएक गाली पर आंर भी भक्षा-भक्षाकर मारता था। यहाँ तक कि रुकिमन के मुन्हे पूँछ गये, चूँड़ियों दूर गयीं। खिलिया बीच-बीच में कहती जाती थी—वाह रे तेरा दीदा! वाह रे तेरी जवान! ऐसी तो औरत ही नहीं देखी। औरत काहे को, डाइन है, जरा भी मुँह में लगाम नहीं! किंतु रुकिमन उसकी बातों को मानना मुनती ही न थी। उसकी सारी शक्ति पयाग को कोसने में लगी हुई थी। पयाग मारते-मारते यक गया, पर रुकिमन की जबान न थकी। बस, यही रट लगी हुई थी—तू मर जा तेरी मिट्ठी निकले, तुझे भवानी खायें, तुझे मिरगी आये। पयाग रह-रहकर क्रोध से तिलमिला उठता और आकर दो-चार लातें जमा देता। पर रुकिमन को अब शायद चांद ही न लगती

थी। वह जगह से हिलती भी न थी। सिर के बाल खेले, जमीन पर बैठी इन्हीं मन्त्रों का पाठ कर रही थी। उसके स्वर में अब कोध न था, केवल एक ऊमादमय प्रवाह था। उसकी समस्त आत्मा हिंसा-कामना की अग्नि से प्रज्जर्वलित हो रही थी।

अँखेरा हुआ तो रुकिमन उठकर एक और निकल गयी, जैसे आँखों में आँमूँ की धार निकल जाती है। सिलिया भोजन बना रही थी। उसने उसे जाते देखा भी, पर कुछ पूछा नहीं। दार पर पश्चात् वैठा चिलम पी रहा था। उसने भी कुछ न कहा।

(४)

जब फसल पकने लगती थी, तो डेढ़-दो महीने तक पश्चात् की हार की देखभाल करनी पड़ती थी। उसे किसानों से दोनों फसलों पर हल पीछे कुछ अनाज बेंधा हुआ था। मात्र ही में वह हार के बीच में थोड़ी-सी जमीन साफ करके एक मढ़ीया ढाल लेता था और रात को खा-पीकर आग, चिलम और तमाखू-नरस। लए हुए इसी मढ़ीया में जाकर पड़ रहता था। चैत के अन्त तक उसका यही नियम रहता था। आजकल वही दिन थे। फसल पकी हुई सैंगार बड़ी थी। दो-चार दिन में कटाई शुरू होनेवाली थी। पश्चात् ने दस बजे रात तक रुकिमन वीराह देखी। फिर यह समझकर, कि शायद किसी पड़ोंसिन के घर सो रही होगी, उसने खा-पीकर अपनी लाठी उठायी और सिर्लिया से बोला—किवाड़ बन्द कर ले, अगर रुकिमन आये तो खोल देना और मना-जुगाकर थोड़ा-बहुत खिला देना। तेरे पीछे आज इतना तूफान हो गया। सुझे न-जाने इतना गुस्सा कैसे आ पाया। मैंने उसे कभी फूल की छुड़ी से भी न लुआ था। कहीं बूँझ-धूँस न मरी हो, तो कल आफत आ जाय।

सिर्लिया बोली—न-जाने वह आयेगी कि नहीं। मैं अंतली कैसे रहूँगी। भूरे ढर लगता है।

‘तो घर में कौन रहेगा? सूना घर पाकर कोई लोटा-याली उठा ले जाय ना? ढर अंकस बात का है? फिर रुकिमन तो आती ही होंगी।’

सिर्लिया ने अन्दर से टट्टी बन्द कर ली। पश्चात् हार की ओर चला। चरस की तरंग में यह भजन गाता जाता था—

ठगिनी ! क्या नैना भमकावे ।

कंदूदू कट मुदंग बनावे, नीबू काट मजीया ;

पाँच तरोई मंगल गाँवे, नाचे बालम खीरा ।

रुपा पहिर के रुप दिलावे, सोना पहिर रिमावे ;

गले दाल तुलसी की माला, तीन लोक भरमावे ।

ठगिनी० ।

सहसा चिवाने पर पहुँचने ही उसने देना क्या नने हार में केसों ने आग जलायी । एक तरण में एक ज्वाजा-सो दृढ़क उठा । उसने चिङ्गासर युकारा — कौन है वहाँ ? अरे, यह कान आग जलाना है ?

ऊर उठती हुई ज्वाजाओं ने अपनो आगेय चिङ्हा से उतर दिया ।

अब पशां का मातूर हुआ कि उसको मङ्गेया में आग लगी हुरे है । उसकी छाता धड़ने लगी । इस मङ्गेया में आग लगाना दूर के डेव में आग लगाना था । हवा चत रही था । मङ्गेया के चारों ओर एक हाव हटकर पक्की हुई कपत द्वारा चारों सो बेंडों हुई थीं । रात में भा उनका नुइरा रंग कलक रहा था । आग की एक तरफ, तरफ एक ज्वाजा-सो चिङ्गारा सार हार का मध्य कर देगा । सारा गाँव तबाइ हो जायगा । इसी हार से मिले हुर दूपरे गाँव के भी हार थे । वे भा जत उठंगे । आह ! लरं बढ़ती जा रही है । अब चिलम्ब करने का समय न था । परा ने अपना उत्ता और चित्त वर्ष पटक दिया और कवे पर लाहवन्द लाडो रवहर बैद्यशया मङ्गेया की तरफ दौँड़ा । मेंडों से जाने में चहर था, इसलेट वह खेतों में सं हांकर मागा जा रहा था । प्रति तरण ज्वाला प्रवरण-नर हातों जानी थी, अर पशां के पाँच ओर भी तेजों से उठ रह थे । कई तेज चाढ़ा भी इस वक्त उते पा न सकता । अरामो तेजों पर उसे स्वयं आश्चर्य हा रहा था । जान पड़ता था, पांच भूमि पर पड़ते हो नहीं । उसको अचिंत्य मङ्गेया पर लगा हुई थां—शाहिने-बाँवे उसे अर कुछ न पूरता था । इसी एकाग्रता ने उसके पैरों में पर लगा दिये थे । न दर कूरता था, न पाँच यहते थे । तान-चार करतांग उसने दा मिठां में तर कर लिर अर मङ्गेया के पास जा पहुँचा ।

मङ्गेया के आवश्यक कोई न था । किसने यह कर्म किया है, यह साच्चे

का मौका न था। उसे खोजने की तो बात ही और थी। पयाग का सन्देह रुकिमन पर हुआ। पर यह क्रोध का समय न था। ज्वालाएँ कुचाली बालकों की भाँति छट्टा मारती, धबकम-धबका करती, कभी दांहनी और लपकती और कभी बायी तरफ। बस, ऐसा मालूम होता था कि लपट अब खेत तक पहुँची, अब पहुँची। मानो ज्वालाएँ आग्रह-पूर्वक बयारियों की ओर बढ़ती और असफल होकर दूसरी बार किर दूने बेग से लपकती थीं। आग कैसे बुझे! लाटी से पीटकर बुझने का गौं न था। वह तो निरी मूर्खता थी। फिर क्या हो! फसल जल गयी, तो फिर वह किसी बो मुँह न दिखा सकेगा। आह! गाँव में कोहगम मच जायगा। स्वर्वनाश हो जायगा। उसने उदादा नहीं सोचा। गंवारों को सोचना नहीं आता। पयाग ने लाटी संभाली, जोर से एक छुलोग मारकर आग के अंदर मड़ैया के ढार पर जा पहुँचा। जलती हुई मड़ैया को अपनी लाटी पर उठाया और उसे सिर पर लिए सब से चाँड़ी मेड़ पर गाँव की तरफ भागा। ऐसा जान पढ़ा, मानो कोई आश़ियान हवा में उड़ता चला जा रहा है। फूस की जलती हुई धज्जियाँ उसके ऊपर गंगर रही थीं, पर उसे इसका जान तक न होता था। एक बार एक मूठा अलग होकर उसने हाथ पर गिर पड़ा। सारा हाथ भुन गया। पर उसके पाँव पल-भर भी नहीं रुके, हाथों में जरा भी हंचक न हुई। हाथों का हिलना खेती का तबाह होना था। पयाग की आर में अब कोई शंका न थी। अगर भय था तो यही कि मड़ैया का वह केंद्र-भाग, जहाँ लाटी का कुंदा डालकर पयाग ने उसे उठाया था, न जल जाय; क्योंकि छेद के फैलते ही मड़ैया उसके ऊपर आ गिरेगी और उसे अग्नि-समर्पण में मग्न कर देगी। पयाग यह जानता था और हवा की चाल से उड़ा जाता था। चार फरलाँग का दौड़ है। मृत्यु अग्नि का रूप धारण किये हुए पयाग के सिर पर खेल रहा है और गाँव की फसल पर। उसकी दौड़ में इतना बेग है कि ज्वालाओं का मुँह पीछे को फिर गया है और उनकी दाहक शक्ति का आधिकांश वायु से लहने में लग रहा है। नहीं तो अब तक बीच में आग पहुँच गयी होती और हाहाकार मच गया होता। एक फरलाँग तो निकल गया, पयाग की हिम्मत ने हार नहीं मानी। वह दूसरा फरलाँग भी पूरा हो गया। देखना पयाग, दो फरलाँग की और कसर है। पाँव भरा भी खुस्त न हों। ज्वाला लाटी के कुन्दे पर पहुँची और तुम्हारे जीवन का

अन्त है। मरने के बाद भी तुम्हें गालियाँ मिलेंगी, तुम अनन्त काल तक आहों की आग में जलते रहोगे। बस, एक मिनट और! अब केवल दो खेत और रह गये हैं। सर्वनाश! लाकी का कुन्दा ऊपर निकल गया। मढ़ेया नीचे लिपक रही है, अब कोई आशा नहीं। पयाग प्राण छोड़कर दोड़ रहा है, वह किनारे का खेत आ पहुँचा। अब केवल दो सेकेंड का और मामला है।। बंजर का द्वार सामने बीम हाथ पर खड़ा स्वागत कर रहा है। उधर स्टग है, इधर नरक। मगर वह मढ़ेया लिसकती हुई पयाग के सिर पर आ पहुँची। वह अब भी उसे पंखकर अपनी जान बचा सकता है। पर उसे प्राणी का मोह नहीं। वह उथ जलती हुई आग को सिर पर लिये भागा जा रहा है। वह उसके पौँछ लड़वड़ाये। हाय! अब यह कूर अग्नि-लीला नहीं देखी जानी।

एकाएक एक छोटी सामने के दृढ़ के नीचे से दोड़ती हुई पयाग के पास पहुँची। यह रुकिमन थी। उसने तुरन्त पयाग के सामने आकर गरदन कुम्हारी और जलती हुई मढ़ेया के नीचे पहुँचकर उसे दोनों हाथों पर ले लिया। उसी दम पयाग मूर्ढ्युर हांकर गिर पड़ा। उसका मारा मुँह झुकस गया था।

रुकिमन उस अलाव का लिए एक नेंखेड़ में खेत के डॉडे पर आ पहुँची, मगर इतनी दूर में उसके हाथ जन गये, मुँह जन गया और करड़ी में आग लग गयी। उस अब इतनी मुर्धा भी न थी कि मढ़ेया के बाहर निकल आये। वह मढ़ेया को लिए हुए गर रहा। इसके बाद कुछ देर तक मढ़ेया हिलती रही। रुकिमन हाथ-न्यौंच फेंकतो रही, किर अग्नि ने उसे तिगल लिया। रुकिमन ने अग्नि-समाधि ले ली।

कुछ देर के बाद पयाग को हांश आया। मारी देह जल रही थी। उसने देखा, दृढ़ के नीचे फूस की लाल आग चमक रही है। उठकर दोड़ा और पैर से आग को हटा दिया—नीचे रुकिमन को अब जली लाश पड़ी हुई थी। उसने घैरकर दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया और रोने लगा।

प्रातःकाल गाँव के लाग पयाग को उठाकर उसके घर ले गये। एक सप्ताह तक उसका हलाज होता रहा, पर बचा नहीं। कुछ तो आग ने जनाया था, जो कुछ कसर थी, वह शोकमि ने पूरी कर दी।

सुजान भगत

(१)

सीधे-सादे किसान धन हाथ आने ही धर्म और कीर्ति की ओर मुक्ते हैं ; दिव्य समाज की भाँति वे पहले अपने भाग-विलास की ओर नहीं दौड़ते । सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था । मेहनत तो गाँव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चन्द्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना क्षीट आता, तो कुछ-न-कुछ पैदा हो जाता था । तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गयी । उधर गुड़ का भाव तेज था । कोई दो-दोइ हजार हाथ में आ गये । बस, चित की दृष्टि धर्म की ओर मुक पड़ी । साझु-संतो का आदर-संकार होने लगा, द्वार पर भूनी जलने लगी, कानूनगो इलाके में आते, तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते । हल्के के टेढ़ कांस्टेबल, धानेदार, शिक्षा-विभाग के अफसर, एक-न-एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता । महतो मारे खुशी के फूल न समाते । अन्य भाग ! उनके द्वार पर अब इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं । जिन हाकिमों के सामने उनका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अब 'महतो-महतो' कहते जबान सूखती थी । कभी-कभी भजन-भाव हो जाता । एक महात्मा ने डाल अच्छा देखा तो गाँव में आसन जमा दिया । गाँजे और चरस की बहार उड़ने लगी । एक ढोलक आयी, मजारे मंगवाये गये, सत्संग होने लगा । यह सब सुजान के दम का जल्स था । पर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कंठ-तले एक बूँद भी जाने की कसम थी । कभी हाँकम लोग चलते, कभी महात्मा लोग । किसान को दूध-न्धी से क्या मतलब, उस तो रोंटी आंवर साग चाहिए । सुजान की नम्रता का अब बारापार न था । सबके सामने चिर भुकाये रहता, कहीं लोग यह न कहने लगे कि धन पाकर इस धर्म द्वारा हो गया है । गाँव में कुल तीन ही कुर्ँे थे, बहुत-से खेतों में पानी न पहुँचता था, खेती मारी जाती थी । सुजान ने एक पनका कुआँ बनवा दिया । कुर्ँे का विवाह हुआ, यज्ञ हुआ, ब्रह्मोज हुआ । जिस दिन पहली बार पुर चला, सुजान को मानों चारों पदार्थ मिल गये । जें

काम गाँव में किसी ने न किया था; वह बाप-दादा के पुरुष-प्रताप से सुजान ने कर दिखाया।

एक दिन गाँव में गया के यात्री आकर उहरे। सुजान ही के द्वार पर उनका भोजन बना। सुजान के मन में भी गया करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अब्ज़ा अब्ज़ार देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी छोटी बुलाकी ने कहा—अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।

सुजान ने गंभीर भाव से कहा—अगले साल क्या होगा, कान जानता है। धर्म के काम में मीन-मेष निकालना अच्छा नहीं। जिंदगानी का क्या भरोसा ? बुलाकी—हाथ खाली हो जायगा।

सुजान—भगवान् की इच्छा होंगी, तो फिर रुपये हां जायेंगे। उनके यहाँ किस बात की कमी है।

बुलाकी इसका क्या जवाब देती ? सन्कार्य में बाधा डालकर अपनी मुक्ति क्यां बिगाड़ती ? प्रातःकाल छोटी ओर पुष्प गया करने चले। वहाँ से लांटे, तो यज और ब्रह्ममोल की उड़री। सारी बिरादरी निमन्त्रित हुई, घारह गाँवों में नृपारी बैठी। इस धूम धाम से कार्य हुआ कि नारं आर वाह-वाह मन गयी। मध यही कहते थे कि भगवान धन दे, तो दिल भा ऐवा दे। घमण्ड तां छू नहीं गया, अपने हाथ से पतल उठना फिरता था, कुल का नाम जगा दिया। बैया हां, तो ऐवा हां। बार मरा, तो धरने भूनी-भौंग भी नहीं थी। अब लद्दी शूने तोड़कर आ बैठी है।

एक द्वे पों ने कहा—कहां गड़ा हुआ धन पा गया है। इस पर चारों आंर में उमपर बांछुरे पड़े लांगी—हाँ, तुम्हारे बाप-दादा जा ल्याए छाइ गये थे। यही उसके हाथ लग गया है। अरे मैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो, आती फ़ाइकर काम करते हों, क्यों ऐसी ऊँच नहीं लगती ? क्यों ऐसी फसल नहीं होती ? भगवान् आदमी का दिल देखने हैं। जो लर्च करता है, उसी को देते हैं।

(२)

सुजान महतो सुजान भगत हो गये। भगती के आचार-विचार कुछ और ही होते हैं। वह बिना स्नान किये कुछ नहीं खाता। गंगाजी अगर धर से दूर

हो और वह रोज स्नान करके दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पब्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। मजन-भाव उसके पूर्वान्तर अवश्य होना चाहिए। पूजा-अर्चा उसके लिए अनिवार्य है। खान-पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि भूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत भूठ नहीं बाल सकता। साधारण मनुष्य को अगर भूठ का दंड एक मिले, तो भगत का एक लाख संकम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अवस्था में कितने ही अपराध ज्ञाप्य हो जाते हैं। ज्ञानी के लिए ज्ञाप्य नहीं है, प्रायश्चिन्त नहीं है, यदि है तो बहुत ही कठिन। सुज्ञान का भी अब भगतों की मर्यादा को निभाना पड़ा। अब तक उसका जीवन मजूर का जीवन था। उसका कोई आदर्श, कोई मर्यादा उसके सामने न था। अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहों का मार्ग काँटों से भरा हुआ है। स्वार्थ-सेवा ही पहले उसके जीवन का लद्य था, इसी काँटे से वह परिस्थितियों को तोलता था। वह अब उन्हें आर्थिक के काँटे पर नीलने लगा। यां कहो कि जड़-जगत् से निकलकर उसने चेतना-जगत् में प्रवेश किया। उसने कुछ लेन-देन करना शुरू किया था, पर अब उसे व्याज लेने हुए आमंत्रणानि-यी होती थी। यहाँ तक कि गउओं को दुहाते समय उसे बछड़ा का ध्यान बता रहता था—कहाँ बछड़ा भूला न रह जाय, नहीं तो उसका रोयाँ दुखो होगा। वह गाँव का मुखिया था, कितने ही मुरदमों में उसने भूग्री शहादतें बनवायी थीं, कितनों से डॉँड लेकर मामले के रफ़ा-दफ़ा करा दिया था। अब इन व्यापारों से उसे पूछा होता थी। भूठ और प्रपंच से कोसा दूर भागता था। पहले उसकी यह चेष्टा होती थी कि मजूरों से जितना काम लिया जा सके, ला और मजूरी जितनी कम दी जा सके, दो; पर अब उसे मजूर के काम की कम, मजूरी की अधिक चिन्ता रहती थी—कहाँ बेचारे मजूर का रोयाँ न दुखी हो जाय। यह उसका वाक्यांश-सा हो गया था—किसी का रोयाँ न दुखी हो जाय। उसके दोनों जवान बेटे बाज़-बात में उसपर फ़िक्तियाँ कहते, यहाँ तक कि बुलाकी भी अब उसे कोरा भगत समझने लगी थी, जिसे घर के भजेन्द्र-नुरे से कोई प्रयाजन न था। चेतन-जगत् में आकर सुज्ञान भगत कोरे भगत रह गये।

सुज्ञान के हाथों से धीरे-धीरे अधिकार छीने जाने लगे। किस खेत में

क्या बोना है, किस को क्या देना है, किससे क्या लेना है, किस भाव क्या चीज बिकी, ऐसी-ऐसी महत्त्व-पूर्ण बातों में भी भगतजी की सलाह न ली जाती थी। भगत के पास कोई जाने ही न पाता। दोनों लड़के या स्वयं बुलाकी दूर ही से मामला तय कर लिया करती। गाँव-भर में सुजान का मान सम्मान बढ़ता था, अपने घर में घटता था। लड़के उसका मत्कार और बहुत करने। हाथ से चारपाई उठाते देख लपककर खुद उठा लाते, चिलम न भरने देते, यहाँ तक कि उसकी धोती लौंगने के लिए भी आप्रत करते थे। मगर अधिकार उसके हाथ में न था। वह अब घर का स्वामी नहीं, मन्दिर का देवता था।

(३)

एक दिन बुलाकी ओखली में दाल लौंग रही थी। एक मिलमंग द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। बुलाकी ने सांचा, दाल लौंग लूँ, तो उसे कुछ दे दूँ। इतने में बड़ा लड़का भोला आकर बोला—अभ्याँ, एक महात्मा द्वार पर खेड़े गला फाढ़ रहे हैं। कुछ दे दो। नहीं तो उनका रंयाँ दृवी हो जायगा।

बुलाकी ने उपेहा के भाव से कहा—भगत कं पाँव में क्या मेंहदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं देते? क्या मेरे चार हाथ हैं? कम किसका रंयाँ नुक्की करूँ? दिन-भर तो तौता लगा रहता है।

भोला—चौपट करने पर लगे हुए हैं, आंग क्या? अभी महँगू बैंग देने आया था। हिसाब से ७ मन हुए। तीला तो पाने सान मन ही निकले। मैंने कहा—दस सेर और ला, तो आप ऐठें-बैठे कहते हैं, अब इतनी दूर कहाँ जायगा। भरपाई लिख दो, नहीं तो उसका रंयाँ दृवा होंगा। मैंने भरपाई नहीं लिखी। दस सेर बाकी लिख दी।

बुलाकी—बहुत अच्छा किया तुमने, बकले दिया करो। दस-पाँच दफे मुँह की खा जायेंगे, तो आप ही बोलना ल्लाङ देंगे।

भोला—दिन-भर एक-न-एक खुचड़ निकालने रहते हैं। सौं दफे कह दिया कि तुम घर-गृहस्थी के मामले में न बोला करोः पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता।

बुलाकी—मैं जानती कि इनका यह हाल होंगा, तो गुरुमन्त्र न लेने देती।
भोला—भगत क्या हुए कि दीन-दुनिया दोनों से गये। सारा दिन पूजा-पाठ

में ही उड़ जाता है। अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो गये कि कोई काम ही न कर सकें॥

बुलाकी ने आपत्ति की—भोला, यह तो तुम्हारा कुन्याय है। फावड़ा, कुदाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुछन कुछ ता करते ही रहते हैं। बैलों को सानी-गानी देते हैं, गाय दुहाते हैं और भी जो कुछ हो सकता है, करते हैं।

भिन्नुक अभी तक खड़ा चिन्हा रहा था। सुजान ने जब घर में से किसीको कुछ लाते न देखा, तो उठकर अन्दर गया और कठोर स्वर से बोला— तुम लोंगों को कुछ मुनायी नहीं देता कि डार पर कौन घण्टे भर से खड़ा भीख माँग रहा है। अपना काम तो दिन-भर करना ही है, एक छुन भगवान् का काम भी तो किया करो।

बुलाकी—तुम तो भगवान् का काम करने को बेठे ही हो, क्या वर-भर भगवान् ही का काम करेगा?

सुजान—कहों आय रखा है, लाशो, में ही निकालकर दे आऊँ। तुम गर्नी बनकर बैठो।

बुलाकी—आया मैंने मर-मरकर पीसा है, अनाज दे दो। ऐसे मुड़चिरों के लिए, पहर रात से उठकर चक्की नहीं चलाती हूँ।

सुजान भएडार-न्पर में गये और एक छोटी-सी छुबड़ी को जो से भरे हुए निकले। जो सर-भर से कम न था। सुजान ने जान-बूझकर, केवल बुलाकी और भोला को चिनाने के लिए, भिन्ना परम्परा का उल्लंघन किया था। तिसपर भी यह दिखाने के लिए कि छुबड़ी में बहुत ज्यादा जो नहीं है, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे। चुटकों इतना बाफ़ न सँभाल सकता थी। हाथ कौपं रहा था। एक त्रण चिलम्ब होने से लुबड़ों के हाथ से छूकर गिर पड़ने की सम्भावना थी। इसालए वह जल्दी से बाहर निकल जाना चाहते थे। सहसा भोला ने लुबड़ी उनके हाथ से लीन ली और त्यारियों बदलकर बोला—संत का माल नहीं है, जो लुधने चले हो। छाती फाङ्फाङ्कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।

सुजान ने लिसियाकर कहा—मैं भी तो बैठा नहीं रहता।

भोला—भीख भीख की ही तरह दी जाती है, लुधायी नहीं जाती। हम

तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि पति-पानी बना रहे, और तुम्हें लुगने को मुझी है। तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है।

मुजान ने इसका कोई जवाब न दिया। बाहर आकर भिखारी से वह दिया— बाबा, इस समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है, और पेड़ के नीचे बैठकर विचारों में मग्न हो गया। अपने ही घर में उसका यह अनादर! अभी यह अपाहिज नहीं है; हाथ-पौँव थके नहीं हैं, घर का कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है। उस पर यह अनादर! उसी ने यह घर बनाया, यह सारी विनूत उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई आंधकर नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और भरवाले जो रुखा-मूखा दे दें, वह न्याकर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कार है। मुजान अंमे घर में नहीं रह सकता।

संध्या हो गयी थी। भोला का छोय भाई शंकर नारियल भरकर लाया। मुजान ने नारियल दीवार से टिकाकर रख दिया। धरेधरे तम्बाकू जल गया। जरा देर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। मुजान पेड़ के नीचे से न उठा।

कुछ देर और गुजरी। भोजन तैयार हुआ। भोला बुलाने आया। मुजान ने कहा—भूख नहीं है। बहुत मनावन करने पर भी न ज्या। तब बुलाकी ने आकर कहा—गाना खाने क्यों नहीं चलने? जो तो अन्द्रा है?

मुजान को सबसे अधिक क्रांथि चुनासी हा पर था। यह भी लड़कों के साथ है! यह बैठी देखती रही और भोला ने मेरे हाथ से अनाज ढीन लिया। इसके मुँह से इतना भी न निकला कि ले जाने हैं, तो ले जाने दो। लड़कों को न मालूम हो कि मैंने कितने श्रम से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात का रात नहीं समझा। भादों की अँधेरी रात में मङ्घया लगा के जुआर की रखवाली करता था। जेठ-दैसाल की दोपहरी में भी दम न लेता था, और अब मेरा घर पर इतना भी अधिकार नहीं है कि भीख तक दे सकूँ। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती, लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिए या, चाहे मैं घर में आग ही क्यों न लगा देता! कानून से भी तो मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता, दूसरों को खिला देता हूँ; इसमें किसी के बाप का क्या साभा? अब इस बक्त मनाने आयी है! इसे मैंने फूल की छुड़ी से भी

नहीं कुछा, नहीं तो गाँव में ऐसी कौन औरत है, जिसने धरम की लातें न खायी हों, कभी कड़ी निगाह से देखा तक नहीं। रायेपैसे, लेना-देना, सब इसी के हाथ में दे रखा था। अब सप्तये जमा कर लिये हैं, तो मुझी से धमन्ड करती है। अब इसे बेटे प्यारे हैं, मैं तो निखट्ट, लुटाऊँ, घरकूँद, बोचा हूँ। मेरी इसे क्या परवाह। तब लड़के न थे, जब बीमार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर चैद के घर ले गया था। आज इसके बेटे हैं और यह उनकी माँ है। मैं तो बाहर का आदमी हूँ, मुझसे घर से मतलब ही क्या। भोला—मैं अब खा-पीकर क्या करूँगा, हल जोने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिला कर दाने को क्यों खराब करेगी? रख दो, बेटे दूसरी बार खायेंगे।

बुलाकी—तुम तो जरा-जरा-सी बात पर तिनक जाते हो। सच कहा है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने इतना तो कहा था कि इतनी भीत्र मत ले जाओ, या और कुछ?

मुजान—हाँ, बेचारा इतना कहकर रह गया। तुम्हें तो मजा तब आता, जब वह ऊपर से दो-चार डण्डे लगा देता। क्यों? अगर यही अभिलापा है, तो पूरी कर लो। भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं, भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हां न जमा दो दो-चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाय।

बुलाकी—हाँ, आर क्या, यही तो नारी का धरम ही है। अपने भाग सराहो कि मुझ-जैसी सीधी आंरत पा लो। जिस बंल चाहते हो, बिनाते हो। ऐसी मृँह-जार होती, तो तुम्हारे घर में एक दिन भी निबाह न होता।

सुजान—हाँ, भाई, वह तो मैं हो कह रहा हूँ कि तुम देवी थीं आंर हो। मैं तब भी रात्रि था और अब भी देवी हो गया हूँ! बेटे कमाऊ हैं, उनकी-सी न कहोगी, तो क्या मेरी-सी कहोगी, मुझसे अब क्या लेना-देना है?

बुलाकी—तुम भगड़ा करने पर तुले बैठे हो आंर मैं भगड़ा बचाती हूँ कि नार आदमी हैंसेंगे। चलकर खाना खा लो सीधे मे, नहीं तो मैं भी जाकर सो रहूँगी।

सुजान—तुम भूखी क्यों सो रहोगी? तुम्हारे बेटों की तो कमाई है। हाँ, मैं बाहरी आदमी हूँ।

बुलाकी—बेटे तुम्हारे भी तो हैं।

सुजान—नहीं, मैं ऐसे बेटों से बाज आया। किसी और के बेटे हांगे। मेरे बेटे होते, ता क्या मेरी यह दुर्गति हाती?

बुलाकी—गालियाँ दागे तो मैं भी कुछ कह चैटूँगी। तुनती था, मर्द बड़े समझदार होते हैं, पर तुम सबसे न्यारे हो। आदमी का चाहए कि जैसा समय देखे, वैसा काम करे। अब हमारा और तुम्हारा निबाह इसा में ह के नाम क मालिक बन रहे आंग वही करं जा। लड़कों को अच्छा लगे। मैं यह बात समझ गयी, तुम क्यों नहीं समझ पाते? जा कामता है, उसा का घर में राज होता है, यहा दुनिया का दस्तूर है। मैं बिना लड़कों से पूछ काइ काम नहां करती, तुम क्यों अपने मन की करदे हों? इतने दिनों तक ता राज कर लिया, अब क्यों इस माया में पड़े हों? आधी रोटी खाओ, भगवान् का भजन करो आर पड़े रहो। चलो, खाना खा लो।

सुजान—तो अब मैं द्वार का कुत्ता हूँ?

बुलाकी—बात जो थी, वह मैंने कह दी। अब अपने को जो चाहा समझो।

सुजान न उठे। बुलाकी हारकर चली गयी।

(४)

सुजान के सामने अब एक नयी समस्या लड़ी हां गयी थी। वह बहुत दिनों से घर का स्वामी या आंग अब भी ऐसा ही समझता था। परिस्थिति में कितना उलट-फेर हो गया था, इसकी उसे खबर न थी। लड़के उसका सेवा-सम्मान करते हैं, यह बात उसे भ्रम में डाले हुए थी। लड़के उनके सामने चिलम नहीं पीते, खाट पर नहीं बैठते, क्या यह सब उसके यह-स्वामी होने का प्रमाण न था? पर आज उसे यह जात हुआ कि यह केवल श्रद्धा थी, उसके स्वामित्व का प्रमाण नहीं। क्या इस श्रद्धा के बदले वह अपना अधिकार छोड़ सकता था? कदापि नहीं। अब तक जिस घर में राज्य किया, उसी घर में पराधीन बनकर वह नहीं रह सकता। उसको श्रद्धा की चाह नहीं, सेवा की भूल नहीं। उसे अधिकार चाहिए। वह इस घर पर दूसरों का अधिकार नहीं देख सकता। मन्दिर का पुजारी बनकर वह नहीं रह सकता।

न-जाने कितनी रात बाकी थी। सुजान ने उठकर गैंडासे से बैलों का चारा काटना शुरू किया। सारा गौव सोता था, पर सुजान करवी काट रहे थे। इतना-

श्रम उन्होंने अपने जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना
छोड़ा था, बराबर चारे के लिए हाय-हाय पढ़ो रहती थी। शंकर भी काटता
था, भोला भी काटता था पर चारा पूरा न पढ़ता था। आज वह इन लौड़ा
को दिला देंगे, चारा कैसे काटना चाहेत। उनके सामने किंवा का पहाड़
खड़ा हो गया। आर टुकड़े कितने नहीं और मुट्ठील थे, मानो सौंचे में ढाले
गये हों।

मुँह-आँधेरे बुलाकी उठी तो कटिया छा ढेर देखकर दंग रह गयी। बोली—
क्या भोजा आज रात भर कटिया ही काटता रह गया? कितना कहा कि बेय,
जो से जहान है, पर मानता ही नहीं। रात को सोया हो नहीं।

सुजान भगत ने ताने से कहा—वह सोता ही कब है? जब देखता हूँ,
काम ही करता रहता है। ऐसा कमाऊ संमार में और कौन होगा?

इन्हें मैं भाला आँखे मलना हुआ बाहर निकला। उसे भी यह ढेर देखकर
आश्चर्य हुआ। माँ से बोता—इस शंहर आज बड़ा रात को उठा था, अम्मो?
बुलाकी—यह तो पड़ा सो रहा है। मैंने तो समझा, तुमने काटी होगी।
भोला—मैं तो सबेरे उठ ही नहीं पाता। दिन-भर चाहे जितना काम कर
लूँ पर रात को मुझसे नहीं उठा जाता।

बुलाकी—तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है?

भोला—हाँ, मालूम ता हो॥ है। रात-भर सोये नहीं। मुझसे कल बड़ी
भूल हुई। औरे! वह तो हल लेकर जा रहे हैं? जान देने पर उतार हो गये
है क्या?

बुलाकी—कोधी तो सदा के हैं। अब किसी के मुँहें योड़े ही।

भोजा—शंकर को जगा दो। मैं नी जलशे से मुँह-डाय धाकर हज़ले जाऊँ।

जब और किसानों के साथ भोला हल लेकर लेत में पहुँचा, तो सुजान
आधा खेत जोन चुके थे। भोला ने चुपके से काम करना शुरू किया। सुजान
से कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़।

दोपहर हुआ। सभी किसानों ने हल क्षोड़ दिये। पर सुजान भगत अपने
काम में मग है। भोला यक गया है। उसकी बार बार इच्छा होती है कि बैलों

को खोल दे । मगर डर के मारे कुछ कह नहीं सकता । उसको आश्रय हो रहा है कि दादा कैसे इतनी मेहनत कर रहे हैं ।

आखिर डरते-डरते बोला—दादा, अब तो दोपहर हो गया । हल बोल दें न ।

सुजान—हाँ, खोल दो । तुम बैलों का लेकर चला, मैं डॉँड फेंककर आता हूँ ।

भोला—मैं संभाको डॉँड फेंक दुँगा ।

सुजान—तुम क्या फेंक दोगे । देखते नहीं हो, खेत-कटारे की तरह गहरा हो गया है । तभी तो बीच में पानी जम जाता है । इस गांड़इ के खेत में बीस मन का बीचा हाता था । तुम लागों ने इसका सत्यानाश कर दिया ।

बैल खाल दिये गये । भोला बैलों का लेकर घर चला, पर सुजान डॉँड फेंकते रहे । आध घण्टे के बाद डॉँड फेंककर वह घर आये । मगर थकान का नाम न था । नहा-खाकर आराम करने के बदले उन्होंने बैलों का सहलाना शुरू किया । उनकी पोठ पर हाथ फेरा, उनके पैर मले, पूँछ सहलायी । बैल की पूँछें खड़ी थीं । सुजान की गोद में सिर रखे उन्हें अक्यनीय मुख भिल रहा था । बहुत दिनों के बाद आज उन्हें यह आवन्द प्राप्त हुआ था । उनकी आखों में कृतज्ञता भरी हुई थी । मानो वे कह रहे थे, हम तुम्हारे साथ रात-दिन काम करने को तैयार हैं ।

अन्य कृषकों की भाँति भोला अभी कमर सीधी कर रहा था कि सुजान ने फिर हल उठाया आर खेत की ओर चले । दोनों बैल उमग से भरे दाङ चले जाते थे, मानो उन्हें स्वयं खेत में पहुँचने की जल्दी थी ।

भाला ने मढ़ैया में लेटे-लेटे पता को 'हल लिये जाते देखा, पर उठ न सका । उसकी हिम्मत छूट गयी । उसने कभी इतना परिश्रम न किया था । उसे बगी-बनायी गिरस्ती मिल गयी थी । उसे ज्योन्यों चला रहा था । इन दमों वह घर का स्वामी बनने का उच्छुक न था । जवान आदमी को बीस धंधे हांते हैं । हँसने-बोलने के लिए, गाने-बजाने के लिए भी तो उसे कुछ समय चाहिए । पड़ोस के गाँव में दंगल हो रहा है । जवान आदमी कैसे अपने को वहाँ जाने से रोकेगा ? किसा गाँव में बारात आयी है, नाच-गाना हो रहा है । जबान आदमी

क्यों उसके आनन्द से वंचित रह सकता है ? तुद्धजनों के लिए ये बाधाएँ नहीं । उन्हें न नाच-गाने में मतलब, न खेल-तमाशे से गरज, केवल अपने काम से काम है ।

बुलाकी ने कहा—भोला, तुम्हारे दादा हूल लेकर गये ।

भोला—जाने दो आम्मा, मुझसे यह नहीं हो सकता ।

(५)

मुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गाँव में दीकाएँ हुई—निकल गयी सारी भगती । बना हुआ था । माया में फैसा हुआ है । आदमी काहे को, भूत है ।

मगर भगतजी के द्वार पर अब फिर साधु-सन्त आसन जमाये देखे जाते हैं । उनका आदर-सम्मान होता है । अबकी उसकी खेती ने सोना उगल दिया है । बाजारी में अनाज रखने को जगह नहीं मिलती । जिस खेत में पाँच मन मुर्शकल में होता था, उसी खेत में अबकी दस मन की उपज हुई है ।

चैत का महीना था । यद्दिहानों में सतयुग का राजा था । जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे । यही समय है, जब कृपकों को भी थोड़ी देर के लिए अपना जीवन सफल मालूम होता है, जब गव में उनका हृदय उछलने लगता है । मुजान भगत ग्रंथकारों में अनाज भर-भरकर देते थे और दोनों लड़के ग्रंथकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे । कितने ही भाट और भिन्नुक भगतजी को धंरे हुए थे । उनमें वह भिन्नुक भी था, जो आज से आठ महीने पहले भगत के द्वार से निराश हाकर लाट गया था ।

सहस्र भगत ने उस भिन्नुक से पूछा—क्या चाचा, आज कहाँ-कहाँ चक्कर लगा आये ?

भिन्नुक—अभी तो कहीं नहीं गया भगतजी, पहले तुम्हारे ही पास आया हूँ ।

भगत—अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर । इसमें से जितना अनाज उठाकर ले जा सको, ले जाओ ।

भिन्नुक ने लुध्य नेत्रों से ढेर को देखकर कहा—जितना अपने हाथ से उठाकर दे दांगे, उतना ही लूँगा ।

भगत—नहीं, तुमसे जितना उठ सके, उठा लो ।

भिन्नुक के पास एक चादर थी ! उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा

और उठाने लगा। संकोच के मारे और अधिक भरने का उसे साहस न दुआ।

भगत उसके मन का भाव समझकर आश्वासन देते हुए बोले—बस।
इतना तो एक बच्चा भी उठा ले जायगा।

भिन्नुक ने भाला की ओर संदिग्ध नेत्रों से देखकर कहा—-मेरे लिए इतना ही बहुत है।

भगत—नहीं, तुम सकुचाते हो। श्रमी और भरो।

भिन्नुक ने एक पंसेरी अनाज और भरा, आंवर फिर भोला की ओर सशंक-दृष्टि से देखने लगा।

भगत—उसकी ओर क्या देखते हो, बाबाजी ? मैं जो कहता हूँ, नह करो। तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो।

भिन्नुक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गत्री न उठाने दी, तो कितनी भद्र होगी। और भिन्नुकों को हँसने का अवसर मिल जायगा। सब यही कहेंगे कि भिन्नुक कितना लोभी है। उसे और अनाज भरने की द्विमत न पढ़ी।

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बँधकर बोले—इसे उठा ले जाओ।

भिन्नुक—बाबा, इतना तो मुझ से उठ न सकेगा।

भगत—अंर ! इतना भी न उठ सकेगा ! बहुत होगा तो मन-भर।
भला जोर तो लगाओ, देखूँ, उठा सकते हों या नहीं।

भिन्नुक ने गठरी को आजमाया। भारी थी। जगह से छिली भी नहीं।
बोला—भगतजी, यह मुझ से न उठ सकेगी !

भगत—अच्छा बताओ किस गाँव में रहते हो ?

भिन्नुक—बड़ी दूर है भगतजी, अमोला का नाम तो सुना होगा ?

भगत—अच्छा, आगे-आगे चलो, मैं पहुँचा दूँगा।

यह कहकर भगत ने जोर लगाकर गठरी उठायी और सिर पर रखकर भिन्नुक के पीछे हो लिए। देखने वाले भगत का यह पौरुष देखकर चकित हो गये। उन्हें क्या मालूम था कि भगत पर इस समय कौन-सा नशा था। आठ महीने के निरन्तर अविरल परिश्रम का आज उन्हें फल मिला था। आज

उन्होंने अपना खोया हुआ अधिकार फिर पाया था । वही तलबार, जो केले को भी नहीं काट सकती, सान पर चढ़कर लोहे को काट देती है । मानव-जीवन में लाग बड़े महत्व की वस्तु है । जिसमें लाग है, वह बूढ़ा भी हो जवान है ।

बिसमें लाग नहीं, गैरत नहीं, वह जवान भी तो मृतक है । सुजान भगत में लाग थी और उसी ने उन्हें अमानुषीय बल को प्रदान कर दिया था । चलते समय उन्होंने भोला की ओर सगर्व नेत्रों से देखा और बोले—ये भाट और भिञ्चुक खड़े हैं, काँई खाली-हाथ न लौटने पाये ।

भाला सिर झुकाये खड़ा था, उसे कुछ बोलने का हौसला न हुआ ।
कृद्ध पिता ने उसे परास्त कर दिया था ।

पिसनहारी का कुआँ

(१) .

गोमती ने मृत्यु-शश्या पर पढ़े हुए, चौधरी विनाशकसिंह से कहा—चौधरी, मेरे जीवन को यही लालसा थी ।

चौधरी ने मम्भीर होकर कहा—इसकी कुछ चिन्ता न करो काकी; तुम्हारी लालसा भगवान् पूरी करंगे । मैं आज ही से भजूंह का बुजाकर काम पर लगाये देता हूँ । दैव ने नाहा, तो तुम अबने कुर्द का पानी पिअगी । तुमने तो गिना होगा, कितने रुपये हैं?

गोमती ने एक लूण आँखे बन्द करके, बिल्ली हुई स्मृति को एकत्र करके कहा—मैया, मैं क्या जानूँ, कितने रुपये हैं? जा कुछ है, वह इसी हाँड़ी में है। इतना करनाफि इतने हाँड़ में काम चल जाय किसके सामने हाथ कैलाते किरोगे।

चौधरी ने बन्द हाँड़ी को उठाकर हाँयों से तोलते हुए कहा—ऐसा तो करंगे ही काकी, कौन देनेवाला है । एक चुटकी भोख तो किसी के घर से निकलती नहीं, कुआँ बनवाने को कौन देता है । धन्य हो तुम कि अपनी उम्र-भर की कमाई इस धर्म-काज के लिए दे दी ।

गोमती ने गर्व से कहा—मैया, तुम तो तब बहुत छाँटे थे । तुम्हारे काका मरे ता मेरे हाय में एरु कोड़ी भी न थी । दिन-दिन-भर भूखी पढ़ी रहती । जा कुछ उनके पास था, वह सब उनकी बीमारी में उठ गया । वह भगवान् के बड़े भक्त थे । इसीलिए भगवान् ने उन्हें जलदी से बुलालिया । उस दिन से आज तक तुम देव रहे हों कि किप तरह दिन काट रही हूँ । मैंने एक एक रात में मन-मन-भर अनाज पासा है, वेय ! देलनेवाले अचरज मानते थे । न-जाने इतनो ताकत मुझमें छाँटें से आ जानो थो । बस, यही लालसा रही कि उनके नाम का एक छाँग-सा कुआँ गाँव में बन जाय । नाम ता चलना चाहिये । इसीलिए ता आदमी बेटे-बेटी को रोता है ।

इस तरह चौधरी विनाशकसिंह को बनोयत करके, उसी रात को बुढ़िया

गोमती परलोक सिधारी। मरते समय अन्तिम शब्द, जो उसके मुख से निकले, वे यही थे—‘कुआँ बनवाने में देर न करना।’ उसके पास धन है, यह तो लोगों का अनुमान था; लेकिन दो हजार है, इसका किसी को अनुमान न था। बुद्धिया अपने धन को ऐब की तरह छिपाती थी। चौधरी गाँव का मुखिया और नीयत का साफ आदर्मा था। इर्सालेण्ट बुद्धिया ने उससे यह अंतिम आदेश किया था।

(२)

चौधरी ने गोमती के क्रिया-कर्म में बहुत रुपये खर्च न किये। ज्योही इन संस्कारों से छुट्टी मिली, वह अपने बेटे हरनाथसिंह को बुलाकर ईंट, चूना, पत्थर का तत्वमीना करने लगे। हरनाथ अनाज का व्यापार करता था। कुछ देर तक तो वह बैठा सुनता रहा, फिर बोला—अभी दो-चार महीने कुआँ न बने तो कोई बड़ा हरज है ?

चौधरी ने ‘हुँह !’ करके कहा—हरज तो कुछ नहीं, लेकिन देर करने का काम ही क्या है। रुपये उसने दे ही दिए हैं इमें तो सेत में यश मिलेगा। गोमती ने मरते-मरते जल्द कुआँ बनवाने को कहा था।

हरनाथ—हाँ, कहा तो था, लेकिन आजकल बाजार अच्छा है। दो-तीन हजार का अनाज भर लिया जाय, तो अगहन-पूस तक सवाय हो जायगा। मैं आपको कुछ सद दे दूँगा। चौधरी का मन शंका और भय के दुविधे में पड़ गया। दो हजार के कहीं दाईं हजार हो गये, तो क्या कहना। जगमोहन में कुछ बेल-बृंटे बनवा दूँगा। लेकिन भय या कि कहीं बाया हो गया तो ? इस शंका को वह छिपा न सके, बोले—जो कहीं बाया हो गया तो ?

हरनाथ ने तड़पकर कहा—बाया क्या हो जायगा, कोई बात है ?

‘मान लो, बाया हो गया तो ?’

हरनाथ ने उत्तेजित होकर कहा—यह कहा कि तुम रुपये नहीं देना चाहते, बड़े धर्मात्मा बने हो !

अन्य बृद्धजनों की भाँति चौधरी भी बेटे से दबते थे। कातर स्वर में बोले—मैं यह कब कहता हूँ कि रुपये न दूँगा। लेकिन पराया धन है, सोच-समझकर ही तो उसमें हाथ लगाना चाहिए। बनिज-व्यापार का हाल कौन

जानता है। कहीं भाव और गिर जाय तो? अनाज में उन हो लग जाय, कोई मुद्दई घर में आग ही लगा दे। सब बातें सोच लो अच्छी तरह।

हरनाथ ने व्यंग्य से कहा—इस तरह सोचना है, तो यह क्यों नहीं सोचते कि कोई चोर ही उठा ले जाय, या बनी-बनायी दीवार बैठ जाय? ये बातें भी तो होती ही हैं।

चौधरी के पास अब और कोई दलील न थी, कमज़ोर सिपाही ने ताल तो ठोकी, आखाड़े में उत्तर भी पड़ा; पर तलवार वी चमक देखते ही हाथ-पैर फूल गये। बगले भाँककर चौधरी ने कहा—तो कितना लोगे?

हरनाथ कुशल योद्धा की भाँति, शत्रु को पीछे हटा देखकर, बफरकर बोला—सब-का-सब दीजिए, सौ-पचास रुपये लेकर क्या खिलवाड़ करना है?

चौधरी यज्जी हो गये। गोमती को उन्हें रुपये देते किसी ने न देखा था। लोक-निन्दा की संभावना भी न थी। हरनाथ ने अनाज भरा। अनाजों के बोरों का ढेर लग गया। आराम की मीठी नींद सानेवाले चौधरी अब सारी रात बारों की रखवाली करते थे,, मजाल न था कि कोई चुहिया बोरों में उस जाय। चौधरी इस तरह भपट्टे थे कि बिल्ली भी हार मान लेती। इस तरह छः महीने बीत गये। पौष में अनाज बिका पूरे ५००) का लाभ हुआ।

हरनाथ ने कहा—इसमें से ५०) आप ले लें।

चौधरी ने झक्काकर कहा—५०) क्या व्यरात ले लें? ऐसी भद्दा जन से इतने रुपये लिये होते, तो कम-से-कम २००) रुद के होते; मुझे तुम दो-चार रुपये कम दे दो, और क्या करांगे?

हरनाथ ने ज्यादा बतवाव न किया। १५०) चौधरी को दे दिया। चौधरी की आत्मा इतनी प्रसन्न कभी न हुई थी। रात को वह अपनी कांठरी में सोने गया, तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि बुढ़िया गोमती खड़ी मुसकिरा रही है। चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा। वह नींद में न था। कोई नशा न खाया था। गोमती सामने खड़ी मुसकिरा रही थी। हाँ, उस मुरझाये हुए मुख पर एक विचित्र स्फूर्ति थी।

(३)

कई साल बीत गये! चौधरी बराबर इसी फिल्म में रहते कि हरनाथ से

रुपये निकाल लूँ, लेकिन हरनाथ हमेशा ही हीले-हवाले करता रहता था ; वह साल में याड़ा-सा अ्याज दे देता ; पर मूल के लिए हजार बातें बनता था । कभी लेहने का रोना था, कभी खुकते का । हाँ कारोबार बढ़ता जाता था । आखिर एक दिन चौधरी ने उससे साफ़-साफ़ कह दिया कि तुम्हारा काम चले या छूबे । मुझे परवा नहीं, इस महीने में तुम्हें अवश्य रुपये चुकाने पड़ेंगे । हरनाथ ने बहुत उड़नघाइयाँ बताईं, पर चौधरी अपने इसादे पर जमे रहे ।

हरनाथ ने भूंभलाकर कहा—कहता हूँ कि दो महीने और ठहरिए । माल बिकते ही मैं रुपये दे दूँगा ।

चौधरी ने हटाया भूंभला कर कहा—तुम्हारा माल कभी न बिकेगा, और न तुम्हारे दो महीने कभी पूरे होंगे । मैं आज रुपये लूँगा ।

हरनाथ उसी बक्त काथ में भरा हुआ उठा, और दो हजार रुपये लाकर चौधरी के सामने जार से पटक दिये ।

चौधरी ने कुछ भैंपकर कहा—रुपये तो तुम्हारे पास थे ?

‘और क्या बातों से रोजगार होता है ?’

‘तो तुम्हें इस समय ५००) दे दो, बाकी दो महीने में दे देना । सब आज ही तो खर्च न हो जायेंगे ।’

हरनाथ ने ताथ दिखाकर कहा—आप चाहे खर्च कीजिए, चाहे जमा कीजिए, मुझे रुपयां वा काम नहीं । दुनिया में क्या महाजन मर गये हैं, जो आपकी धौंस सहूँ ?

चौधरी ने रुपये उठाकर एक ताक पर रख दिये । कुएँ की दागवेल डालने का सारा उत्साह उण्डा पड़ गया ।

हरनाथ ने रुपये लौया तो दिये थे, पर मन में कुछ और मनसूबा बौंध रखा था । आधीरात को जब घर में मन्त्राया छा गया, तो हरनाथ चौधरी की कोठरी की चूल लिखाकर अन्दर धुसा । चौधरी बेलबर सोये थे । हरनाथ ने चाहा कि दोनों थैलियाँ उठाकर बाहर निकल जाऊँ, लेकिन ज्योही हाथ बढ़ाया, उसे अपने सामने गोमती खड़ी दिखायी दी । वह दोनों थैलियों को दोनों हाथों से पकड़े हुए थी । हरनाथ भयभीत होकर पीछे हट गया ।

फिर यह सोचकर कि शायद मुझे धोखा हो रहा हो, उसने फिर हाथ

बढ़ाया, पर अबकी वह मूर्ति इतनी भयंकर हो गयी कि हरनाथ एक नृण भी वहाँ खड़ा न रह सका। भागा, पर बरामदे ही में अचेत होकर गिर गड़ा।

(४) •

हरनाथ ने चारों तरफ से अपने रुपये वसूल करके व्यागरियों को देने के लिए जमा कर रखे थे। चौधरी ने आँखें दिलारीं, तो वही रुपये लाकर पटक दिये। दिल में उसी वक्त सोच लिया था कि रात को रुपये उड़ा लाऊँगा। झूठ-झूठ चोर का गुल मचा दूँगा, तो मेरी आर मन्देह भी न होगा। पर जब यह पेशबन्दी ठीक न उतरी, तो उस पर व्यागरियाँ के तगड़े हाँने लगे। बादों पर लोगों को कहाँ तक टालता, जितने बहाने हाँ सकते थे, सब किये। आखिर वह नौबत आ गयी कि लोग नालिश करने की घमकियाँ देने लगे। एक ने तो ३००) की नालिश कर भी दी। बेचारे चौधरी बड़ी मुश्किल में फँसे। दूकान पर हरनाथ बैठता था, चौधरी को उसने कोई बास्ता न था; पर उसकी जो साख थी, वह चौधरी के कारण। लोग चौधरी को खरा और लेन-देन का साफ आदमी समझते थे। अब भी यथापि कोई उनसे तकाजा न करता था, पर वह सबसे मुँह छिपाते फिरते थे। लेकिन उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि कुएँ के रुपये न छुकँगा, चाहे कुछ भी आ पड़े।

रात को एक व्यापारी के मुसलमान चपरासी ने चौधरी के द्वार पर आकर हजारों गालियाँ सुनारीं। चौधरी का बार-बार काघ आता था कि चलकर उसकी मूँछ उत्खाड़ लूँ; पर मन का समझाया, ‘हमसे ही मतलब क्या है, बेटे का कर्ज चुकाना बाप का धर्म नहीं है।’

जब भोजन करने गये, तो गली ने कहा—यह सब क्या उपद्रव मचा रखा है? चौधरी ने कठोर स्वर में कहा—मैंने मचा रखा है?

‘आँर किसने मचा रखा है? बच्चा कसम लाते हैं कि मेरे पास केवल थोड़ा सा माल है, रुपये तो सब तुमने माँग लिये।’

चौधरी—माँग न लेता तो क्या करता, हलवाई की दूकान पर दादा का फातेहा पढ़ना मुझे पसन्द नहीं।

स्त्री—यह नारू-कर्गाई अच्छी लगती है?

चौधरी—तो मेरा क्या बस है भाई, कभी कुछ बनेगा कि नहीं ? पौंच साल हो गये ।

खी—इस बक उसने कुछ नहीं खाया । पहली जून भी मुँह जूठा करके उठ गया था ।

चौधरी—तुमने समझाकर खिलाया नहीं; दाना-पानी छोड़ देने से तो रुपये न मिलेंगे ।

खो—तुम क्यों नहीं जाकर समझा देते ?

चौधरी—मुझे तो वह इस समय बैरी समझ रहा होगा !

खो—मैं रुपये ले जाकर बच्चा को दिये आती हूँ, हाथ में जब रुपये आयें, तो कुछों बनवा देना ।

चौधरो—नहीं, नहीं; ऐसा गजब न करना, मैं इतना बड़ा विश्वासशात न करूँगा, चाहे घर मिट्ठी ही में मिल जाय ।

लंकिन स्त्री ने इन बातों की ओर ध्यान न दिया । वह लपक कर भीतर गया; और थैलियां पर हाथ डालना चाहती थी कि एक चीख मारकर हट गयी । उसकी सारी देह सिनार के तार की भाँति कोपने लगी ।

चौधरी ने बबड़ाकर पूछा—क्या हुआ, क्या ? तुम्हें चकर तो नहीं आ गया ?

खी ने ताक की ओर भयानुर नेत्रों से देखकर कहा—वह चुड़ैल वहाँ खड़ी है !

चौधरी ने ताक की ओर देखकर कहा—कौन चुड़ैल ? मुझे तो कोई नहीं दीखता ।

खो—मेरा तो कलेजा धक्-धक् कर रहा है । ऐसा मालूम हुआ, जैसे उस बुढ़िया ने मेरा हाथ पकड़ लिया है ।

चौधरी वह सब भ्रम है । बुढ़िया को मेरे पौंच साल हो गये, क्या अब तक वह यहाँ बैठी है ।

खी—मैंन साफ देखा, वही थी । बच्चा भी कहते थे कि उन्होंने रात को थैलियां पर हाथ रखे देखा था ।

चौधरी—वह रात को मेरी कोठरी में कब आया ?

खी—तुमसे कुछ रुपयों के विषय ही मैं कहने आया था । उसे देखते ही भागा ।

चौधरी—अच्छा, फिर तो अन्दर जाओ, मैं देख रहा हूँ ।

खी ने कान पर हाथ रखकर कहा—ना बाबा, अब मैं उस कमरे में कहम न रहौँगी।

चौधरी—अच्छा, मैं जाकर देखता हूँ।

चौधरी ने कोठरी में जाकर दोनों थैलियाँ ताक पर से उठा लीं। किसी प्रकार की शंका न हुई। गामतो को छाया का कहाँ नाम भी न था। खी द्वार पर लड़ी झाँक रही थी। चौधरी ने आँकर गव से कहा—मुझे तो कहाँ कुछ न दिखायी दिया। वहाँ होती, तो कहाँ चली जाती?

खी—क्या जाने, तुम्हें क्या नहीं दिखायी दी? तुम्हें उसे स्नेह या, इसी से हँट गयी होगी।

चौधरी—तुम्हें भ्रम या, और कुछ नहीं।

खी—बच्चा का बुलाकर पुछाये देती हूँ।

चौधरी—खड़ा तो हूँ, आकर देख क्यां नहीं लेती!

खी का कुछ आश्वासन हुआ। उसने ताक के पास जाकर डरते-डरते हाथ बढ़ाया—जोर से चिल्लाकर भागी और आँगन में आकर दम लिया।

चौधरी भी उसके साथ आँगन में आ गया और विस्मय से बोला—क्या या, क्या? व्यर्थ में भागी चली आयी। मुझे तो कुछ न दिखायी दिया।

खी ने हाँफते हुए तिरस्कारपूरण स्वर में कहा—चलो हयो, अब तक तो तुमने मेरी जान ही ले ली थी। न-जाने तुम्हारी आँखों को क्या हो गया है। लड़ी तो है वह डायन!

इतने में हरनाय भी वहाँ आ गया। माता को आँगन में पड़े देखकर बोला—क्या है अभ्माँ, कैसा जी है!

खी—वह चुड़ैल आज दो बार दिखायी दी, बेटा! मैंने कहा—जाओ, तुम्हें सूपये दे दूँ। फिर जब हाथ में आ जायेंगे, तो कुछाँ बनवा दिया जायगा। लेकिन ज्याही थैलियाँ पर हाथ रखा, उस चुड़ैल ने मेरा हाथ पकड़ लिया। प्राण-से निकल गये।

हरनाय ने कहा—किसी अच्छे ओभा को बुलाना चाहिए, जो इसे मार भगाये।

चौधरी—क्या रात को तुम्हें भी दिखायी दी थी?

हरनाथ—हाँ, मैं तुम्हारे पास एक मामले में सलाह करने आया था । ज्योही अन्दर कदम रखा, वह चुड़ैल ताक के पास खड़ी दिखायी दी ; मैं बढ़हवास हाकर भागा ।

चौधरी—अच्छा, फिर तो जाओ ।

स्त्रा—कौन, अब तो मैं न जाने दूँ, चाहे कोई लालू रुपये ही क्यों न दे ।

हरनाथ—मैं आप न जाऊँगा ।

चौधरी—मगर मुझे कुछ दिखायी नहीं देता । यह बात करा है ?

हरनाथ—क्या जाने, आपसे डरती होगी । आज किसी औभा को बुलाना चाहें ।

चौधरी—कुछ समझ में नहीं आता, क्या माजरा है । क्या हुआ बैजूपौड़ी की डिग्री का ?

हरनाथ इन दिनों नींघरी से इतना जलता था कि अपनी दूकान के विषय की कोई बात उनसे न कहता था । आँगन की तरफ ताकता हुआ मानो हथ से बोला—जो हाना होगा, वह होगा; मेरी जान के सिवा और कोई क्या ले लेगा ? जो खा गया हूँ, वह तो उगल नहीं सकता ।

चौधरा—कहीं उमने डिग्री जारी कर दी तो ?

हरनाथ—ता क्या ? दूकान में चार-चाँच साँ का माल है, वह नीलम हो जायगा ।

चौधरी—काराबार तो मूब चौपट हो जायगा ?

हरनाथ—अब काराबार के नाम को कहाँ तक रोऊँ । अगर पहले भे मालूम होता कि कुछाँ बनवाने को इतनी जल्दी है, तो यह काम छोड़ता ही क्यों । रोटी-दाल तो पहले भी मिल जाती थी । बहुत होगा, दो-चार महीने हवालात में रहना पड़ेगा । इसके सिवा और क्या हो सकता है ?

माना ने कहा—जा तुम्हें हवालात में ले जाय, उसका मुँह भुलस दूँ ! हमारे जीते-जी तुम हवालात में जाओगे !

हरनाथ ने दार्शनिक बनकर कहा—मौँ-बाप जन्म के साथी होती हैं, किसी के कर्म के साथी नहीं होते ।

चौधरी को पुत्र से प्रगाढ़ प्रेम था । उन्हें शंका हो गयी थी कि हरनाथ

रुपये हजार करने के लिए टाल-मटोल कर रहा है। इसलिए उन्होंने आग्रह कर के रुपये वसूल कर लिए थे। अब उन्हें अनुभव हुआ कि हरनाय के प्राण सच-मुच संकट में हैं। सोचा—अगर लड़के को हवालात हो गयी, या दूकान पर कुर्की आ गयी, तो कुल-मर्यादा धूल में मिल जायगी। क्या हरज है, अगर गोमती के रुपये दे दूँ। आखिर दूकान चलती ही है, कमी-न कमी तो रुपये हाय में आ ही जायेंगे।

एकाएक किसी ने बाहर ने पुकारा—‘हरनायसिंह! हरनाय के मुख पर हवाइयों उड़ने लगीं। चौधरी ने पूछा—कान है?

‘कुर्क अमीन!'

‘क्या दूकान कुर्क करने आया है?'

‘हाँ, मालूम तो होता है।'

‘कितने रुपयों की डिग्री है?'

‘१२००) की!'

‘कुर्क-अमीन कुछ लेन-देन से न ट्लेगा!'

‘ठल तो जाता पर महाजन भी तो उसके साथ होगा। उसे जो कुछ लेना है, उधर से ले चुका होगा।'

‘न हाँ, १२००) गोमती के रुपयों में से दे दो।'

‘उसके रुपये कौन छुएगा। न-जाने घर पर क्या आफत आये।'

‘उस रुपये कोई हजार थोड़ी ही किये लेता है; चलो, मैं दे दूँ।'

चौधरी को इस समय भय हुआ, कहीं मुझे भी वह न दिखाई दे। लेकिन उनकी शंका निर्मूल थी। उन्होंने एक थैली से २००) निकाले और दूसरी थैली में रखकर हरनाय को दे दिये। सन्ध्या तक इन २०००) में एक रुपया भी न बचा।

(५)

बारह साल गुजर गये। न चौधरी अब इस संसार में हैं, न हरनाय। चौधरी जबतक जिये, उन्हें कुर्टे की चिन्ता बनी रही; यहाँ तक कि मरते दम भी उनकी जबान पर कुर्टे की रट लगी हुई थी। लेकिन दूकान में सदैव रुपयों का तोड़ा रहा। चौधरी के मरते ही सारा कारोबार चौपट हो गया। हरनाय ने

आने रुपये लाभ से सन्तुष्ट न होकर दूने-तिगुने लाभ पर हाथ मारा—जुआ खेलना शुरू किया। साल भी न गुजरने पाया था कि दूकान बन्द हो गयी। गहने-पाते बरतन-भाड़े, सब मिट्ठी में मिल गये। चौधरी की मृत्यु के ठीक साल-भर, बाद, हरनाय ने भी इसी हानिलाभ के संसार से पथान किया। माता के जीवन का अब कोई सहारा न रहा। बीमार पढ़ी, पर दवा-दर्पन न हो सकी। तीन-चार महीने तक नाना प्रकार के कष्ट खेलकर वह भी चल बसी। अब केवल बहू थी, और वह भी गर्भिणी। उस बेचारी के लिए अब कोई आधार न था। इस दशा में मजदूरी भी न कर सकती थी। पड़ोसियों के कपड़े सी-सीकर उसने किसी भाँूंते पाँच-छ़ु़: महीने काटे। तेरे लड़का होगा। सारे लक्षण बालक के-से थे। यही एक जीवन का आधार था। जब कन्या हुई, तो यह भी आधार जाता रहा। माना ने अपना हृदय इतना कठोर कर लिया कि नवजात शिशु को छाती भी न लगाती थी। पड़ोसिनों के बहुत समझाने-झुझाने पर छाती से लगाया, पर उसकी छाती में दूध की एक बँद भी न थी। उस समय अभागिनी माता के हृदय में करुणा, वास्तव्य और मोह का एक भूकम्प-सा आ गया। अगर किसी उपाय से उसके स्तन की अनित्म बँद दूध बन जाती, तो वह अपने को धन्य मानती।

बालिका की वह भाली, दीन, याचनामय, सतृष्ण लुबि देखकर उसका मातृ-हृदय मानों सहस्र नेत्रों से रुदन करने लगा था। उसके हृदय की सारी शुभेच्छाएँ, सारा आशीर्वाद, सारी विभूति, सारा अनुराग मानों उसकी औँखों से निकलकर उस बालिका को उसी भोगि रूपति कर देता था, जैसे इन्दु का शीतल प्रकाश पुष्प को रंजित कर देता है; पर उस बालिका के भाग्य में मातृ-प्रेम के मुख न बदे थे। माता ने कुछ अपना रक्त, कुछ ऊपर का दूध पिलाकर उसे जिलाया; पर उसकी दशा दिनोंदिन जीर्ण होती जाती थी।

एक दिन लोगों ने जाकर देखा, तो वह भूमि पर पड़ो हुई थी, और बालिका उसकी छाती से चिपटी उसके स्तनों को चूस रही थी। शोक और दरिद्रता से आहत शरीर में रक्त कहाँ जिससे दूध बनता।

वही बालिका पड़ोसियों को दया-भिद्वा में पलकर एक दिन घास खोदती हुई उस स्थान पर जा पहुँची, जहाँ बुद्धिया गोमती का घर था। लुप्पर कब के

पंचमूर्तों में मिल चुके थे। केवल जहाँ-तहाँ दीवारों के बिह बाकी थे। कहाँ-रहीं आधी-आधी दीवारें खड़ी थीं। बालिका ने न-जाने क्या सोचकर खुरपी से गड्ढा खोदना शुरू किया। दोपहर से साँझ तक वह गड्ढा खोदती रही। न खाने की सुध थी, न पीने की। न कोई शंका थी, न भय। अन्धेरा हो गया; पर वह ज्यो-की-त्यों बैठी गड्ढा खोद रही थी। उस समय किसान लोग भूलकर भी उधर से न निकलते थे; पर बालिका निःशंक बैठी भूमि से मिट्ठी निकाल रही थी। जब अन्धेरा हो गया, तो वह चली गयी।

दूसरे दिन वह बड़े सबेरे उड़ी शाँर इतनी शाम खोदी, जितनी वह कभी दिन-भर में न खोदती थी। दोपहर के बाद वह अपनी खाँची और खुरपी लिये फिर उसी स्थान पर पहुँची; पर वह आज अकेली न थी, उसके साथ दो बालक और भी थे। तीनों वहाँ साँझ तक 'कुआँ-कुआँ' खोदते रहे। बालिका गड्ढे के अन्दर खोदती थी और दोनों बालक मिट्ठी निकाल-निकालकर फँकते थे।

तीसरे दिन दो लड़के और भी उस खेल में मिल गये। शाम तक खेल होता रहा। आज गड्ढा दो हाथ गहरा हो गया था। गाँव के बाल-बालिकाओं में इस विलक्षण खेल ने अभूतपूर्व उत्साह भर दिया था।

चौथे दिन और भी कई बालक आ मिले। मलाह हुई, कौन अन्दर जाय, कौन मिट्ठी उठाये, कौन भौआ लीचे। गड्ढा अब चार हाथ गहरा हो गया था, पर अभी तक बालकों के सिवा और किसी को उस की खबर न थी।

एक दिन रात को एक किसान अपनी लोथी हुई भैस छूँदता हुआ उस खेड़हर में जा निकला। अन्दर मिट्ठी का ऊँचा ढेर, एक बड़ा-सा गड्ढा और एक टिमटिमाता हुआ दीपक देखा, तो डरकर भागा। औरों ने भी आकर देखा, कई आदमी थे। कोई शंका न थी। समीप जाकर देखा, तो बालिका बैठी थी। एक आदमी ने पूछा —अरे, क्या तुले यह गड्ढा खोदा है?

बालिका ने कहा—हाँ।

'गड्ढा खोदकर क्या करेगी ?'

'यहाँ कुआँ बनाऊँगी।'

'कुआँ कैसे बनायेगी ?'

‘जैसे इतना खोदा है, वैसे ही और खोद लूँगी। गाँव के सब लड़के खेलने आते हैं।’

‘मालूम होता है, तू अपनी जान देगी और अपने साथ और लड़कों के भी मारेगी। खबरदार, जो कल से गढ़ा खोदा।’

दूसरे दिन और लड़के न आये, बालिका भी दिन-भर मजूरी करती रही। लेकिन मन्द्या-समय वहाँ फिर दीपक जला और फिर वह खुरपी हाथ में लिए वहाँ बैठी दिलाशी दी।

गाँव वालों ने उसे मारा-पीया, कोठरी में बन्द किया, पर वह अवकाश पाते ही वहाँ जा पहुँचती।

गाँव के लोग प्रायः अद्वालु होते हो हैं, बालिका के इस अलंकिक अनुराग ने आखिर उसमें भी अनुराग उत्पन्न किया। कुआँ खुदने लगा।

इधर कुआँ खुद रहा था, उधर बालिका मिट्टी से ईटें बनाती थी। इस खेल में सारे गाँव के लड़के शरीक होते थे। उजाली रातों में जब सब लोग सो जाते, तब भी वह ईटें थापती दिलाशी देती। न-जाने इतनी लगन उसमें कहाँ से आ गयी थी। सात वर्ष की उम्र कोई उम्र होती है? लेकिन सात वर्ष की वह लड़की बुद्धि और बातचीत में अपनी तिगुनी उम्र वालों के कान काटती थी।

आखिर एक दिन वह भी आया कि कुआँ बँध गया और उसकी पक्की जगत तैयार हो गयी। उस दिन बालिका उसी जगत पर साथी। आज उसके हृष्ट की सीमा न थी। गाती थी, चहकती थी।

प्रातःकाल उस जगत पर केवल उसकी लाश मिली। उस दिन से लागों ने कहना शुरू किया, यह वही बुद्धिया गोमती थी! इस कुएँ का नाम ‘पिसन-हारी का कुआँ’ पड़ा।

सोहाग का शव

(१)

मध्यप्रदेश के एक पहाड़ी गाँव में एक छाटे-से घर की छत पर एक युवक मानों सन्ध्या की निस्तब्धता में लीन हुआ बैठा था । सामने चन्द्रमा के मलोंने प्रकाश में ऊदी पर्वत-मालाएँ अनंत के स्वप्न की भौंति गम्भीर, रहस्यमय, संगीतमय, मनोहर मालूम होती थी, मानों उन पर्वतों का समस्त संगीत, समस्त गाम्भीर्य, सम्पूर्ण रहस्य इसी उज्ज्वल प्रवाह में लीन हो गया हो । युवक की वेष-भूषा से प्रकट होता था कि उसकी दशा बहुत सम्पन्न नहीं है । हाँ उसके मुख से तेज आंग और मनस्विता भलक रही थीं । उसकी आँखों पर ऐनक न थी, न मूँछें मुड़ी हुई थीं, न बाल संचारे हुए थे, कलाई पर धड़ी न थी; यहाँ तक कि कोट की जेब में फाउटेन-पेन भी न था । या तो वह सिद्धांतों का प्रेमी था, या आडम्बरों का शत्रु ।

युवक चिचारों में मौन उसी पर्वतमाला की ओर देख रहा था कि सहस्रा बादल की गरज से भी भयंकर ध्वनि मुगायी दी । नदी का मधुर गान उस भीषण नाद में ढूब गया । ऐसा मालूम हुआ, मानो उस भयंकर नाद ने पर्वतों को भी हिला दिया है, मानों पर्वतों में कोई आंग संग्राम, छिङ गया है । यह रेलगाड़ी थी, जो नदी पर बने हुए पुल से चली आ रही थी ।

एक युवती कमरे से निकलकर छत पर आयी और बोली—आज आभी से गाड़ी आ गयी । इसे भी आज ही वैर निभाना था ।

युवक ने युवती का हाथ पकड़कर कहा—प्रिये ! मेरा जो चाहता है, कहीं न जाऊँ; मैंने निश्चय कर लिया है । मैंने तुम्हारी खातिर से हासी भर ली थी, पर अब जाने को इच्छा नहीं होती । तीन साल कैसे करेंगे ?

युवती ने कातर स्वर में कहा—तीन साल के वियोग के बाद फिर तो जीवनपर्यन्त कोई बाधा न खड़ी होगी । एक बार जो निश्चय कर लिया है, उसे

पूरी ही कर डालो, अनन्त मुख की आशा में मैं सारे कष्ट खेल लूँगी ।

यह कहते हुए युवती जलपान लाने के बहाने से फिर भीतर चली गयी । श्रौमुच्चां का आवेग उसके कावृ से बाहर हो गया । इन दोनों प्राणियों के वैवाहिक जीवन की यह पहली ही वर्षगांठ थी । युवक बम्बई-विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि लेकर नागपुर के एक कालेज में अध्यापक था । नवीन युग की नर्था-नर्थी वैवाहिक और सामाजिक कानितयों ने उसे लेशमात्र भी विचलित न किया था । पुरानी प्रथाओं से ऐसी प्रगाढ़ ममता कदाचित् त्रुद्धजनों को भी कम होगी । प्रोफेसर हो जाने के बाद उसके माता-पिता ने इस बालिका से उसका विवाह कर दिया था । प्रथानुसार ही उस आँखमिचौनी के खेल में उन्हें प्रेम का रक्ख मिल गया । केशव छुट्टियों में यहाँ पहली गाढ़ी से आता और आराखिरी गाढ़ी से जाता । ये दो-चार दिन मीठे स्वप्न के समान कट जाते थे । दोनों बालकों की भाँति रो-रोकर बिदा होते । इसी कोठे पर खड़ी होकर वह उसको देखा करती, जब तक निर्दयी पहाड़ियाँ उसे आङ़ में न कर लेतीं । पर अभी साल भी न गुजरने पाया था कि वियोग ने अपना पद्यन्त रनना शुरू कर दिया । केशव को विदेश जाकर शिक्षा पूरी करने के लिए एक दृति मिल गयी । मित्रों ने बधाइयाँ दीं । किसके ऐसे भाग्य हैं, जिसे बिना माँगे स्वभाग्य-निर्माण का ऐसा अवसर प्राप्त हो । केशव बहुत प्रगल्भ न था । वह इसी दुखिये में पड़ा हुआ घर आया । माता-पिता और अन्य सम्बन्धियों ने इस यात्रा का घोर विरोध किया । नगर में जितनी बधाइयाँ मिली थीं, यहाँ उसमें कहीं अधिक बाधाएँ मिलीं । किन्तु सुभद्रा की उच्चाकांचाओं की सीमा न थी । वह कदाचित् केशव को इन्द्रासन पर बैठा हुआ देखना चाहती थी । उसके सामने तब भी वही पति-सेवा का आदर्श होता था । वह तब भी उसके सिर में तेल डालेगा, उसकी धोती छूटेगी । उसके पांव दबायेगा और उसके पंखा झलेगी । उपासक की महत्वाकांचा उपास्य ही के प्रति होती है । वह उसको सोने का मन्दिर बनवायेगा, उसके सिंहासन को रक्तों से सजायेगा, स्वर्ग से पुष्प लाकर भेंट करेगा; पर वह स्वयं वही उपास करहेगा । जटा के स्थान पर मुकुट या कोपीन की जगह पीताम्बर की लालसा उसे कभी नहीं सताती । सुभद्रा ने उस वक्त तक दम न लिया जबतक केशव ने विलायत जाने का बादा न कर लिया, माता-पिता ने उसे कलंकिनी

और न जाने क्या-क्या कहा, पर अन्त में सहमत हो गये । सब तैयारियाँ हो गयीं । स्टेशन समीप ही था । यहाँ गाड़ी देर तक खड़ी रहती थी । स्टेशनों के समीपस्थ गाँवों के निवासियों के लिए गाड़ी का आना शत्रु का धावा नहीं, मित्र का पदार्पण है । गाड़ी आ गयी । सुभद्रा जलपान बनाकर पति को हाथ धुलाने आयी थी । इस समय केशव की प्रेम-कातर आपत्ति ने उसे एक दृश्य के लिए विचलित कर दिया । हा ! कौन जानता है, तीन साल में क्या हो जाय ! मन में एक आवेश उठा—कह दूँ, प्यारे मत जाओ । योड़ा ही खायेंगे, मोटा ही पहनेंगे ; रो-रो कर दिन तो न करेंगे । कभी केशव के आने में एक-आध महीना लग जाता था, तो वह विकल हो जाया करती थी । यहीं जी चाहता था, उड़ कर उनके पास पहुँच जाऊँ । फिर ये निरंदी तीन वर्ष कैसे करेंगे ! लोकन उसने बड़ी कठोरता से इन निराशाजनक भावों को तुकरा दिया और कौपते करण से बोली—जी तो मेरा भी यही चाहता हूँ । जब तीन साल का अनुमान करती हूँ, तो एक कल्पना मालूम होता है । लोकन जब विलायत में तुम्हारे सम्मान आर आदर का ध्यान करती हूँ, तो ये तीन साल तीन दिन-से मालूम होते हैं । तुम तो जहाज पर पहुँचते ही भुक्ते भूल जाओगे । नये-नये दृश्य तुम्हारे मनोरंजन के लिए आ खड़ होंगे । योरप पहुँचकर बिद्वानों के संसग में तुम्हें घर की याद भी न आयेगी । मुझे तो राने के सिवा आर कोई धन्वा नहीं है । यहीं स्मृतियाँ ही मंर जीवन का आधार होंगी । लोकन क्या करूँ, जीवन की भोग-लालसा तो नहीं मानती । फिर जिस वियोग का अन्त जीवन की सारी विभूतियाँ अपने साथ लायेगा, वह वास्तव में तपस्या है । तपस्या के बिना तो वरदान नहीं मिलता ।

केशव को भी अब शत हुआ कि न्यायिक मोह के आवेरा में स्वभाव्य निर्माण का ऐसा अच्छा अवधर त्याग देना मूर्खता है । खड़ा होकर बोले—रोनाधोना मत, नहीं तो मेरा जी न लगेगा ।

सुभद्रा ने उनका हाथ पकड़कर दृदय से लगाते हुए उनके मुँह की ओर सबल नेत्र से देखा और बोला—पत्र बराबर भेजते रहना ।

‘अवश्य भेजूँगा ; प्रति सप्ताह लिखूँगा ।’

सुभद्रा ने आँखों में आँसू-भरे मुस्किराकर कहा—रेखना, विलायती मिसां के जाल में न फँस जाना ।

केशव फिर चारपाई पर बैठ गया और बोला—अगर तुम्हें यह सन्देह हैं, तो लो, मैं जाऊँगा ही नहीं।

मुभद्रा ने उसके गले में बौंहें डालकर विश्वास-पूर्ण दृष्टि से देखा और बोली—मैं दिल्लगी कर रही थी।

‘अगर इन्द्रलोक की अप्सरा भी आ जाय, तो आँख उठाकर न देखूँ। ब्रह्मा ने ऐसी दूसरी स्तरी की है नहीं।’

‘बीच में काँई छुट्टी मिले, तो एक बार चले आना।’

‘नहीं प्रिये, बीच में शायद छुट्टी न मिलेगी। मगर जो मैंने सुना कि तुम रो-रोकर तुली जाती हों, दाना-पानी छोड़ दिया है, तो मैं अवश्य चला आऊँगा। ये फूल जरा भी कुम्हलाने न पायें।’

दानों गले मिलकर बिदा हो गये। बाहर सम्बन्धियां और मित्रों का एक समूह बढ़ा था। केशव ने बड़ों के चरण छुए, छोटों को गले और लगया रटेशन की ओर चले। मित्राण रटेशन तक पहुँचाने गये। एक क्षण में गाड़ी यात्री को लेकर चल दी।

उधर केशव गाड़ी में बैठा हुआ पहाड़ियां की बहार देख रहा था, इधर मुभद्रा भूमि पर पड़ी सिसकियाँ भर रही थीं।

(२)

दिन गुजरने लगे। उसी तरह, जैसे बीमारी के दिन करने हैं—दिन पहाड़, रात काली बला। रात-भर मनाते गुजरती थी कि किसी तरह भोर हो। भोर होता, तो मनाने लगती कि जल्दी शाम हो। मैंके गयी एक वहाँ जी बहलेगा। दस-बीच। दिन पारवर्तन का कुछ असर हुआ, फिर उससे भी दुरी दशा हुई; भाग कर समुराल चली आयी। रोगी करवट बदलकर आराम का अनुभव करता है।

पहले पोच-छः महीनों तक तो केशव के पत्र पन्द्रहवें दिन बराबर मिलते रहे। उसमें वियोग के दुःख कम, नये-नये दृश्यों का वर्णन अधिक होता था। पर मुभद्रा सन्तुष्ट थी। पत्र आते हैं, वह प्रसन्न हैं, कुशल से हैं, उसके लिए यही काफी था। इसके प्रतिकूल वह पत्र लिखती, तो विरह-व्यथा के सिवा उसे कुछ सकृता ही न था। कभी-कभी जब जी बैचैन हो जाता, तो पछताती कि व्यर्थ जाने दिया। कहीं एक दिन मर जाऊँ, तो उनके दर्शन भी न हो।

लेकिन कुछे महीने से पत्रों में भी विलम्ब होने लगा। कई महीने तक तो महीने में एक पत्र आता रहा, किर वह भी बन्द हो गया। सुभद्रा के चार-चूँच पत्र पहुँच जाते, तो एक पत्र आ जाता; वह भी बैंदिली से लिखा हुआ—काम की अधिकता और समय के अभाव के रोने से भरा हुआ। एक बाकश भी ऐसा नहीं, जिससे हृदय को शान्ति हो, जो अपकर्ते हुए दिल पर भरहम रखे। हा ! आदि से अन्त तक 'प्रिये' शब्द का नाम नहीं। सुभद्रा अधीर हो। उठी। उसने योरोप-यात्रा का निश्चय कर लिया। वह सोरे कट सह लेगी, सिर पर जो कुछ पड़ेगी, सह लेगी; केशव का आँखा से देखती तो इहेगी। वह इस बात का उनसे गुप रखेगी, उनकी कठिनाइयों को आँख न बढ़ायेगी, उनसे बोलेगी भी नहीं ! केवल उन्हें कभी-कभी आँख भरकर देख लेगी। यही उसकी शान्ति के लिए काफी होगी। उसे क्या मालूम था कि उसका केशव अब उसका नहीं रहा। वह अब एक दूसरी ही कामिनी के प्रेम का भिलारी है।

सुभद्रा कई दिनों तक इस प्रस्ताव का मन में रखे हुए सेती रही। उसे किसी प्रकार की शङ्खा न होती थी। समाचार-पत्रों के पढ़ते रहने से उसे समुद्री यात्रा का हाल मालूम होता रहता था। एक दिन उसने अपने सास-समुर के सामने अपना निश्चय प्रकट किया। उन लोगों ने बहुत समझाया, राक्षण की बहुत चेष्टा की; लेकिन सुभद्रा ने अपना हठ न छोड़ा। आखिर जब लोगों ने देखा कि यह किसी तरह नहीं मानती, तो राजी हो गये। मैरावाले भी समझा-कर हार गये। कुछ रूपये उसने स्वयं जमा कर रखे थे, कुछ समुराज में मिले। माँ-बाप ने भी मदद की। रास्ते के खर्च की चिन्ता न रही। इंगलैंड पहुँचकर वह क्या करेगी, इसका अभी उसने कुछ निश्चय न किया। इतना जानती थी कि परिश्रम करनेवाले को राटियों की कहीं कभी नहीं रहती।

बिदा होते समय सास और समुर दोनों स्टेशन तक आये। जब गाड़ी ने सीढ़ी दी, तो सुभद्रा ने हाथ जोड़कर कहा—मेरे जाने का समाचार वहाँ न लिखिएगा। नहीं तो उन्हें चिंता होगी और पढ़ने में उनका जी न लगेगा।

समुर ने आश्वासन दिया। गाड़ी चल दी।

(३)

लन्दन के उस हिस्से में, जहाँ इस समृद्धि के समय में भी दरिद्रता का

राज्य है, ऊपर के एक क्लोटे से कमरे में सुभद्रा एक कुर्सी पर कैड़ी है। उसे यहाँ आये आज एक मर्हीना हो गया है। यात्रा के पहले उसके मन में जितनी शंकाएँ थीं, सभी शान्त होती जा रही हैं। बम्बई-बन्दर में जहाज पर जगह पाने का प्रश्न बड़ी आसानी से हल हो गया। वह अकेली औरत न थी। जो योरोप जा रही है। पॉन्च-ल्ड़ियों और भी उसी जहाज से जा रही थी। सुभद्रा को न जगह मिलने में कोई कठिनाई हुई, न मार्ग में। यहाँ पहुँचकर और खियों से सज्ज छूट गया। कोई किसी विद्यालय में चली गयी; दो-तीन अपने पतियाँ के पास चली गयीं, जो यहाँ पहले से आ गये थे। सुभद्रा ने इस मुहल्ले में एक कमरा ले लिया। जीविका का प्रश्न भी उसके लिए बहुत कठिन न रहा। जिन महिलाओं के साथ वह आयी थी, उनमें कई उच्च-अधिकारियों की पतियाँ थीं। वडे अच्छे, अच्छे अँगरेज धरानों से उनका परिचय था। सुभद्रा को दो महिलाओं को भारतीय सज्जीत और हिन्दी-भाषा सिखाने का काम मिल गया। शेष समय में वह कई भारतीय महिलाओं के कपड़े साने का काम कर लेती है। वे शब्द का निवास-स्थान यहाँ से निकट है, इसीलए सुभद्रा ने इस मुहल्ले को पसन्द किया है। कल के शब्द उसे दिखायी दिया था। ओह! उन्हे बस से उत्तरांत देखकर उसका चित कितना आगुर हो उठा था। बस यही मन में आता था कि दाँड़कर उनके गले से लिपट जाय और पूछे—क्यों जी, तुम यहाँ आते ही बदल गये। याद है, तुमने चलते समय क्या-क्या बादे किये थे? उसने बड़ी मुर्झिकल से अपने को रोका था। तब से इस बक्त तक उसे मानो नशा-सा छाया हुआ है, वह उनके इतने समीप है! चाहे तो रोज उन्हें देख सकती है, उनकी बातें सुन सकती हैं; हाँ, उन्हें स्पर्श तक कर सकती हैं। अब वह उससे भागकर कहाँ जायेंगे? उनके पत्रों की अब उसे क्या चिन्ता है; कुछ दिनों के बाद, सम्भव है वह उनके होटल के नौकरों से चाहे, पूँछ सकती है।

सन्ध्या हो गयी थी। धुएँ में बिजली की लालटेनें रोती आँखों की भोंति ज्योति-हीन-सी हो रही थीं। गली में स्त्री-पुरुष सैर करने जा रहे थे। सुभद्रा सोचने लगी—इन लोगों को आमोद से कितना प्रेम है, मानो किसी को चिन्ता ही नहीं, मानो सभी सम्पन्न हैं: जभी ये लोग इतने एकाग्र होकर सब काम

कर सकते हैं। जिस समय जो काम करते हैं, जो-जान से करते हैं। लेलने की उमंग है, तो काम करने की भी उमंग है और एक हम है कि न हूँसते हैं, न रोते हैं; मौन बने बैठे रहते हैं। स्फुर्ति का कहाँ नान नहाँ, काम तो गारे दिन करते हैं, भोजन करने की फुरसत भी नहीं मिलती, पर वास्तव में चौथाई समय भी काम में नहीं लगाने। केवल कान करने का बड़ा॥ फरते हैं। मालूम होता है, जाति प्राण-शूल्य हो गयी है।

सहसा उसने केशव को जाते देखा। हाँ, कशव हो था! वह कुमाँ से नठकर बरामदे में चली आयी। प्रबल इच्छा हुई कि जाफर उनके गले से लिपट जाय। उसने अगर अपराध भी किया है, तो उन्हीं के कारण तो। यदि वह बराबर पत्र लिखने जाते, तो वह भी आती?

लेकिन केशव के साथ यह युवती कौन है? और! केशव उसका हाथ पकड़ द्दुए हैं। दोनों मुस्किरा-मुस्किराकर बातें करने लगे जाते हैं। यह युवती कौन है?

मुभद्रा ने ध्यान में देखा। युवती का रंग साँवला था। वह भारतीय चाँलका थी। उसका पहनावा भारतीय था। इससे ज्यादा मुभद्रा को और कुछ न दिखाया दिया। उसने तुरन्त जूते पहने, द्वार बन्द किया और एक चूप में गला में आ पहुँची। केशव अब दिखायी न देता था, पर वह जिधर गया था, उधर ही वह बड़ी तेजी से लपकी चली जाती थी। यह युवती कौन है? वह उन दोनों की बातें सुनना चाहती थी, उस युवती को देखना चाहता थी, उसके पाँव इतनी तेजी से उठ रहे थे; मानों दौड़ रही हो। पर इतनी जल्द दोनों कहाँ अदृश्य हो गये? अब तक उस उन लागों के भमीर पहुँच जाना चाहिए था। शायद दोनों किसी 'बस' पर जा बैठे।

अब वह गली समाप्त करके एक चाँड़ी सड़क पर आ पहुँची थी। दोनों नरफ बड़ी-बड़ी जगमगाती हुई दूकानें थीं, जेनमें संसार को बेभूतियाँ गर्व से फूली बैठो थीं। कदम-कदम पर हाथल और रेस्ट्रॉं थे। मुभद्रा दोनों ओर सचेष्ट नेंगों से ताकती, पग-पग पर आन्ति के कारण मचलती कितनी दूर निकल गयी, कुछ स्वर नहीं।

किर उसने सोचा—याँ कहाँ तक चली जाऊँगी? कौन जाने, किधर

गये। चलकर फिर अपने बरामदे से देखूँ। आखिर इधर से गये हैं, तो इधर ही से लौटेंगे भी। यह ख्याल आते ही वह घूम पड़ी, और उसी तरह दौड़ती हुई अपने स्थान की ओर चली। जब वहाँ पहुँची, तो बारह बज गये थे। और इतनी देर उसे चत्तने ही गुजरा! एक लाण मी उसने कहीं विश्राम नहीं किया!

वह ऊपर पहुँची, तो गृह-स्वामिनी ने कहा—तुम्हारे लिए बड़ी देर से भोजन रखा हुआ है।

मुभद्रा ने भोजन अपने कमरे में मैंगा लिया पर खाने की सुधि किसे थी। वह उसी बरामदे में, उसी तरफ, टकड़की लगाये खड़ी थी, जिधर से केशव गया था।

एक बज गया, दो बजा, फिर भी केशव नहीं लौया। उसने मन में कहा—वह किसी दूसरे मार्ग से चले गये। मेरा यहों खड़ा रहना व्यर्थ है चलूँ, सो रहूँ। लेकिन फिर ख्याल आ गया, कहीं आ न रहे हाँ!

मालूम नहीं, उसे कब नींद आ गयी।

(४)

दूसरे दिन प्रातःकाल मुभद्रा अपने काम पर जाने को तैयार हो रही थी कि एक युवती रेशमी साड़ी पहने आकर खड़ी हो गयी, और मुसर्काकर बोली—ज्ञामा कीजिएगा, मैंने बहुत सबेरे आपको कष्ट दिया। आप तो कहीं जाने को तैयार मालूम होती हैं।

मुभद्रा ने एक कुर्सी बढ़ाते हुए कहा—हाँ, एक काम से बाहर जा रही थी। मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?

यह कहते हुए मुभद्रा ने युवती को सिर से पौंछ तक उसी आलोचनात्मक दृष्टि से देखा, जिससे छियाँ ही देख सकती हैं। साँन्दर्य की किसी परिभाषा से भी उसे मुन्दरी न कहा जा सकता था। उसका रंग सौंवला, मुँह कुछ चाँड़ा, नाक कुछ चिपटी, कद भी लंबा और शरीर भी कुछ स्थूल था। आँखों पर ऐनक लगी हुई थी। लेकिन इन सब कारणों के हाते हुए भी उसमें कुछ ऐसी बात थी, जो आँखों को अपनी ओर लौंच लेती थी। उसकी वाणी इतनी मधुर, इतनी संयमित, इतनी विनम्र थी कि जान पड़ता था, किसी देवी के वरदान हों। एक-एक अङ्ग से प्रतिभा विकीर्ण हो रही थी। मुभद्रा उसके सामने हल्की एवं दुच्छ मालूम होती थी। युवती ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—

‘अगर मैं भूलती हूँ, तो मुझे ज्ञान कीजिएगा । मैंने सुना है कि आप कुछ कपड़े भी सीती हैं, जिसका प्रमाण यह है कि यहाँ सीबिंग मशीन मौजूद है ।’

सुभद्रा—मैं दो लेडियों को भाषा पढ़ाने जाशा करती हूँ, शेष समय में कुछ सिलाई भी कर लेती हूँ । आप कपड़े लायी हैं ?

युवती—नहीं, अभी कपड़े नहीं लायी । यह कहते हुए उसने लज्जा से सिर झुकाकर मुसक्कियाने हुए कहा—बात यह है कि मेरी शादी हाने जा रही है मैं बलाभूषण सब हिन्दुस्तानी रखना चाहती हूँ । विवाह भी वैदिक रीति ते ही होगा । ऐसे कपड़े यहाँ आप ही तैयार कर सकती हैं ।

सुभद्रा ने हँसकर कहा—मैं ऐसे अवसर पर आपके जोड़े तैयार करके अपने को धन्य समझूँगी । वह शुभ तिथि कब है ?

युवती ने सकुनाते हुए कहा—वह तो कहते हैं, इसी सप्ताह में हो जाय; पर मैं उन्हें यालती आती हूँ । मैंने तो चाहा था कि भारत लौटने पर विवाह होता, पर वह इतने उत्ताले हो रहे हैं कि कुछ कहते नहीं बनता । अभी तो मैंने यही कहकर टाला कि मेरे कपड़े सिल रहे हैं ।

सुभद्रा—तो मैं आपके जोड़े बहुत जल्द दे दूँगी ।

युवती ने हँसकर कहा—मैं तो चाहती थी कि आप महीनां लगा देतीं ।

सुभद्रा—वाह, मैं इस शुभ कार्य में क्यों विप्र डालने लगी ? मैं इसी सप्ताह में आपके कपड़े दे दूँगी, और उनसे इमका पुरस्कार लूँगी ।

युवती खिलखिलाकर हँसी । कमरे में प्रकाश की लहरें-सी उठ गयीं । बाली—इसके लिए ता पुरस्कार वह देंगे, बड़ी खुशी से देंगे और तुम्हारे कृतज्ञ होंगे । मैंने प्रतिज्ञा की थी कि विवाह के बन्धन में पड़ूँगी ही नहीं; पर उन्होंने मेरी प्रतिज्ञा तोड़ दी । अब मुझे मालूम हो रहा है कि प्रेम की बेङ्कियाँ कितनी आनन्दमय होती हैं ! तुम तो अभी हाल ही में आयी हो । तुम्हारे पति भी साथ होंगे ?

सुभद्रा ने बहाना किया । बाली—वह इस समय जर्मनी में है । संगीत से उन्हें बहुत प्रेम है । संगीत ही का अध्ययन करने के लिए वहाँ गये हैं ।

तुम भी संगीत जानती हो ?

‘बहुत योग्या ।’

‘केशव को संगीत से बड़ा प्रेम है।’

केशव का नाम सुनकर मुमद्रा को ऐसा मालूम हुआ, जैसे बिच्छु ने काट लिया हो। वह चौंक पड़ी।

युवती ने पूछा—आप चौंक कैसे गयीं? क्या केशव को जानती हो?

मुमद्रा ने बात बनारु कहा—नहीं, मैंने यह नाम कभी नहीं सुना। वह यक्षि क्षण करते हैं?

मुमद्रा को व्याल आया, क्या केशव किसी दूसरे आदमी का नाम नहीं हो सकता? इसलिए उसने यह प्रश्न किया था। उसी जवाब पर उसकी जिन्दगी का फैसला था।

युवती ने कहा—यहाँ विद्यालय में पढ़ते हैं। भारत सरकार ने उन्हें भेजा है। अभी साल-भर भी तो आये नहीं हुए। तुम देवकर प्रमन्त्र होंगी। तेज और चुद्धि की मूर्ति समझ लो! यहाँ के अच्छे-अच्छे प्रोफेसर उनका आदर करते हैं। ऐसा सुन्दर भाषण तो मैंने किसी के मुँह से सुना हो नहीं। जीवन आदर्श है। मुझसे उन्हें क्यों प्रेम हो गया है, मुझे उसका आश्चर्य है। मुझमें न रूप है, न लावण्य। यह मेरा भीभाषण है। तो मैं शाम को कपड़े लेकर आऊँगी।

मुमद्रा ने मन में उठते बेग को सँभालकर कहा—अच्छी बात है।

जब युवती चली गयी, तो मुमद्रा फूँफूँकर राने लगी। ऐसा जान पड़ा था, मानो देह में रक्त ही नहीं, माना प्राण निकल गये हैं। वह कितनी निःसदाय, किन्तु दुर्बल है, इसका आज अनुभव हुआ। ऐसा मालूम हुआ, माना ससार में उसका कोई नहीं है। अब उसका जीवन व्यर्थ है। उसके लिए अब जीवन में राने के सवा आंर क्या है? उसकी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल-सी हो गयी थीं, मानो वह किसी कँचे वृक्ष से गिर पड़ी हो। हा! यह उसके प्रेम आंर भाक का पुरस्कार है। उसने कितना आश्रित करके केशव को यहाँ भेजा था? इसलिए उन्होंने आते ही वह उसका सर्वनाश कर दे?

पुरानी बातें याद आने लगी। केशव की वह प्रेमातुर आँखें सामने आ गयीं। वह सरल, सहास मूर्ति आँखों के सामने नाचने लगी। उसका जरा सिर धमकता था, तो केशव कितना व्याकुल हो जाता था। एक बार जब उसे

फरली बुलार आ गया था, तो केशव पबराकर, पन्द्रह दिन की लुट्री लेकर, घर आ गया था और उसके सिरहाने बैठा रात-भर पंचा भलता रहा था। वहाँ केशव अब इतनी जल्द उससे ऊब उठा ! उसके लिए सुभद्रा ने कौन-सी बात उठा रखी । वह तो उसी को अपना ग्राणावार, अपना जीवन धन, अपना सबस्त्र समझती थी । नहीं-नहीं, केशव का दोष नहीं, सारा दोष इसी का है । इसी ने अपनी मधुर बातों से उन्हें वशीभूत कर लिया है । इसकी बाया, बुद्धि और बाकपढ़ता ही ने उनके हृदय पर विजय पायी है । हाय ! उसने कितनी बार केशव से कहा था, मुझे भी पढ़ाया करो, लोकन उन्होंने हमेशा यही जवाब दिया, तुम जैसी हो, मुझे वैसी ही पसन्द हो । मैं तुम्हारी स्वाभाविक सरलता का पढ़ा-पढ़ाकर मियाना नहीं चाहता । केशव ने उसके साथ कितमा बड़ा अन्यथा किया है ! लेकिन यह उनका दाप नहीं, यह इसी योग्यन-मतवाली छोंकरी की माया है ।

सुभद्रा को इस ईर्ष्या और दुःख के आवेश में अपने काम तर जाने का नुस्ख न रही । वह कमरे में इस तरह बहलने लगी, जैसे किसी ने जबरदस्ती उसे बन्द कर दिया हा । कभी दोनों मुर्छियाँ बँध जातीं, कभा दौत पीसने लगती, कभी आंठ काटती । उन्माद की-सी दशा हो गयी । आखों में भी एक तीव्र ब्याला चमक उठी । ज्यां-ज्यां केशव के इस निष्ठुर आश्राम को सोचती, उन कष्टों को याद करती, जो उसने उसके लिए भेले थे, उसका चित्त प्रातकार के लिए विकल होता जाता था । अगर कोई बात दुई होती, आपस में कुछ मनोमालिन्य का लेश भी होता; तो उसे इतना दुःख न होता । यह तो उसे ऐसा मालूम नहीं था कि मानो कोई हूँसते हूँसते अचानक गले पर चढ़ जैठे । अगर वह उनके योग्य नहीं थी, तो उन्होंने उससे विवाह ही क्यों किया था ? विवाह करने के बाद भी उसे क्यों न दुरुरा दिया था ? क्यों प्रेम का बीज बोया था ? और आज जब वह बीज पल्लवों से लहराने लगा, उसकी जड़ें उसके अंतस्तल के एक-एक अणु में प्रविष्ट हो गयीं, उसका सारा रक्त, उसका सारा उत्सर्ग दृढ़ को संचने और पालने में प्रवृत्त हो गया, तो वह आज उसे उखाड़कर फेंक देना चाहते हैं । क्या उसके हृदय के ढुकड़े-ढुकड़े हुए बिना दृढ़ उखड़ जायगा ?

सहसा उसे एक बात याद आ गयी । हिंसात्मक संतोष से उसका उत्तेजित

मुक्त-मरडल और भी कठोर हो गया। केशव ने अपने पहले विवाह की बात इस युवती से गुप्त रखी होगी! मुभद्रा इसका भरडा फोड़ करके केशव के सारे मंथूंबां को धूल में मिला देगी। उसे अरने ऊपर कोध आया कि युवती का पता क्यों न पूछ लिया। उसे एक पत्र लिखकर केशव की नोचता, स्वार्थपता और कायरता की कलई खोल देती—उसके पाणिडल्य, प्रतिमा और प्रतिष्ठा को धूल में मिला देती। वैर, सन्ध्या-समय तो वह कपड़े लेकर आयेगी ही। उस समय उसमें सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दूँगी।

(५)

मुभद्रा दिन-भर युवती का इन्तजार करती रही। कभी बरामदे में आकर दधर-उघर निगाह दौड़ाती, कभी सङ्क पर देखती; पर उसका कहीं पता न था। मन में भूँफलाती थी कि उसने क्यों उसी वक्त मारा ब्रतान्त न कह सुनाया।

केशव का पता उसे मालूम था। उस मकान और गलो का नम्बर तक याद था, जहाँ से वह उसे पत्र लिखा करता था। उयों-उयों दिन ढलने लगा और युवती के आने में विलम्ब होने लगा, उसके मन में एक तरंग-सी उठने लगी कि जाकर केशव को फटकारे, उसका सारा नशा उतार दे, कहे—तुम इतने भयंकर हिसक हो, इतने महान् धूर्त हो, यह मुझे मालूम न था। तुम यही विद्या सीखने यहाँ आये थे! तुम्हारे सारे पांडित्य का यही फल है! तुम एक अबला का, जिसने तुम्हारे ऊपर अपना सर्वस्थ अर्पण कर दिया, यो छुल सकते हा! तुममें क्या मनुष्यता नाम को भी नहीं रह गयी? आखिर तुमने मेरे लिए क्या सांचा है? मैं सारी जिन्दगी तुम्हारे नाम को रोती रहूँ! लेकिन अभिमान हर बार उसके पैरों को रोक लेता। नहीं, जिसने उसके साथ ऐसा कपट किया है, उसका इतना अपमान किया है, उसके पास वह न जायगी। वह उसे देखकर अपने आँसुओं को रोक सकेगी या नहीं, इसमें उसे सन्देह या; और केशव के सामने वह राना नहीं चाहती थी। अगर केशव उसमें घृणा करता है, तो वह भी केशव से घृणा करेगी। सन्ध्या भी हो गयी, पर युवती न आयी। बत्तियों भी जर्ली, पर उसका पता नहीं।

एकाएक उसे अपने कमरे के द्वार पर किसी के आने की आहट मालूम हुई। वह कूदकर बाहर निकल आयी। युवती कपड़ों का एक पुलिन्दा लिए

सुमने खड़ी थी । सुभद्रा को देखते ही बोली—क्षमा करना, मुझे आने में देर हो गयी । बात यह है कि केशव को किसी बड़े जरूरी काम से जर्मनी जाना है । वहाँ उन्हें एक महीने से ज्यादा लग जायगा । नह चाहते हैं कि मैं भी उनके साथ चलूँ । मुझसे उन्हें अपना थीसिस लिखने में बड़ी सहायता मिलेगी । बर्लिन के पुस्तकालयों को छानना पड़ेगा । मैंने भी इसे स्वीकार कर लिया है । केशव की इच्छा है कि जर्मनी जाने के पहले हमारा विवाह हो जाय । कल सन्ध्या-समय संस्कार हो जायगा । अब ये कपड़े मुझे आप जर्मनी से लौटने पर दीजिएगा । विवाह के अवसर पर हम मामूली कपड़े पहन लेंगे । और वरती क्या ? इसके सिवा कोई उपयोग न या । केशव का जर्मनी जाना अनिवार्य है ।

सुभद्रा ने कपड़ों को मेज पर रखकर कहा—आपको धोखा दिया गया है ।

युवती ने भवडाकर पूछा—धोखा ! कैसा धोखा ? मैं बिलकुल नहीं समझती । तुम्हारा मतलब क्या है !

सुभद्रा ने संकोच के आवरण को हटाने की चेष्टा करते हुए कहा—केशव तुन्हें धोखा देकर तुमसे विवाह करना चाहता है ।

‘केशव ऐसा आदमी नहीं है, जो किसी को धोखा दे । क्या तुम केशव को जानती हो ?’

‘केशव ने तुमसे अपने विषय में सब-कुछ कह दिया है ?’

‘सब-कुछ ।’

‘कोई भी बात नहीं छिपायी ?’

‘मेरा तो यही विचार है कि उन्होंने एक बात भी नहीं छिपायी !’

‘तुम्हें मालूम है कि उसका विवाह हो चुका है ?’

युवती की मुख-ज्योति कुछ मलिन पड़ गयी, उसकी गर्दन लजा से झुक गयी । अटक-अटककर बोली—हाँ, उन्होंने मुझसे . यह बात कही थी ।

सुभद्रा परास्त हो गयी । बृणा-सूचक नेत्रों से देखती हुई बोली—यह जानते हुए भी तुम केशव से विवाह करने पर तैयार हो ?

युवती ने अभिमान से देखकर कहा—तुमने केशव को देखा है ?

‘नहीं, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा है ।’

‘फिर तुम उन्हें कैसे जानती हो ?’

‘मेरे एक मित्रने मुझसे यह बान कही है, वह केशव को जानता है।’

‘अगर तुम एक बार केशव को देख लेंगी, एक बार उनसे बातें कर लेंगी, तो मुझसे यह प्रश्न न करनी। एक नहीं, अगर उन्होंने एक सौ विवाह किये होते, तो मैं इनकार न करनी। उन्हें देखकर मैं अपने को विलक्षण भून जाती हूँ। अगर उनसे विवाह न करूँ, तो फिर मुझे जंबन-भर अविवाहित ही रहना पड़ेगा। जिम समय वह मुझसे बातें करने लगते हैं, मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मेरी आत्मा पुण्य की भाँटि खिली जा रही है। मैं उसमें प्रकाश और विकाश का प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ। दुनिया चाहे भितना हैंसे, चाहे जितनी निन्दा करे, मैं केशव को अब नहीं ल्लोड सकती। उनका विवाह हो चुका है, यह सच्य है; पर उस बीमे उनका मन कर्मा न मिला। यथार्थ में उनका विवाह अभी नहीं हुआ है। वह कोई साधारण, अर्द्धशिक्षिता बालिका है। तुम्हीं सौचो, केशव-जैगा विद्वान, उदारचंता, मनस्ती पुण्य ऐसी वानिका के साथ कैने प्रवत्त रह सकता है? तुम्हें कल मेरे विवाह में चलना पड़ेगा।’

नृभट्टा का चेहरा तपतमया जा रहा था। केशव ने उसे इतने काने रंगों में रँगा है, यह सोचकर उसका रक्त खोल रहा था। जी मैं आना था, हसी दण्ड इधरको दृक्कार दूँ, लेकिन उसके मन में कुछ और ही मंसूबे पैदा होने लगे थे। उसने गम्भीर, पर उदासीनता भाव में पूछा—केशव ने कुछ उस बीमे के विषय में नहीं कहा? वह अब बया करेगी?

युवती ने तपतरना से कहा—पर पहुँचने पर वह उससे केवल यही कह देंगे कि हम और तुम अब बीमे पर पृष्ठ नहीं रह सकते। उसके भरण-पोरण का वह उमके इच्छानुसार प्रवन्ध कर देंगे, इसके सिवा वह और क्या कर सकते हैं। हिन्दू-नीति में पति-पत्नी में दिन्देह नहीं हो सकता। पर केवल बीमे को पूर्ण रीति से स्वाधीन कर देने के विचार से वह ईसाई या मुसलमान होने पर भी तैयार हैं। वह तो अभी उसे इसी आशय का एक पत्र लिखने जा रहे थे, पर मैंने ही रोक लिया। मुझे उस अभागिनी पर बड़ी दया आती है, मैं तो यहाँ तक तैयार हूँ कि अगर उसकी इच्छा हो तो वह भी हमारे साथ रहे। मैं उस अपनी बड़ी बहन समझूँगी। किन्तु केशव इससे सहमत नहीं होते।

सुभद्रा ने व्यंग्य से कहा—रोटी-कपड़ा देने को तैयार ही हैं, जी को इसके सिवा और क्या चाहिए ?

युवती ने व्यंग्य की कुछ परवा न करके कहा—तो मुझे लौटने पर कपड़े तैयार मिलेंगे न ?

सुभद्रा—हाँ, मिल जायेंगे ।

युवती—कल तुम सन्ध्या-समय आग्रोही !

सुभद्रा—नहाँ, खेद है, मुझे अवकाश नहाँ है ।

युवती ने कुछ न कहा । चली गयी ।

(६)

सुभद्रा कितना ही चाहती थी कि इस समस्या पर शान्तचित्त होकर विचार करे, पर हृदय में मानो ज्वाला-सी दहक रही थी । केशव के लिए वह अपने प्राणों का कोई मूल्य नहीं समझती थी । वही केशव उसे पेरों से ढुकरा रहा है । यह आश्रात इतना आकर्सिक, इतना कठार था कि उसकी चेतना की सारी कोमलता मूर्च्छित हो गयी । उसका एक-एक अणु प्रतिकार के लिए तड़पने लगा । अगर यही समस्या इसके विपरीत होती, तो क्या सुभद्रा की गरदन पर लुरी न फिर गयी होती ? केशव उसके खून का प्यासा न हो जाता ? क्या पुरुष हो जाने से ही सभी बातें क्षम्य और खी हो जाने से सभी बातें अक्षम्य हो जाती हैं ? नहीं, इस निर्णय को सुभद्रा की विद्रोही आत्मा इस समय स्वीकार नहीं कर सकती । उसे नारियों के ऊँचे आदशों की परवा नहीं है । उन लियों में आत्माभिमान न होगा ? वे पुरुष के पेरों की जूतियाँ बनकर रहने ही में अपना सौभाग्य समझती होंगी । सुभद्रा इतनी आत्माभिमान-शून्य नहीं है । वह अपने जीते-जी यह नहीं देख सकती कि उसका पाति उसके जीवन का मर्यानाश करके चैन की बशी बजाये । दुनिया उसे हस्तारिनी, पिशाचिनी कहेगी, कहे—उसको परवा नहीं । रह-रहकर उसके मन में भयंकर प्रेरणा होती थी कि इसी समय उसके पास चली जाय, और इसक पहले कि वह उस युवती के प्रेम का आनन्द उठाये, उसके जीवन का अन्त कर दे । वह केशव की निष्ठुरता की याद करके अपने मन को उत्तेजित करती थी । अपने को धिक्कार-धिक्कार कर नारी-सुलभ रांकाओं को दूर करती थी । क्या वह इतनी दुर्बल है ? क्या उसमें इतना साहस

भी नहीं है ? इस वक्त यदि कोई दुष्ट उसके कमरे में छुस आये और उसके सतीत्व का अपहरण करना चाहे, तो क्या यह उसका प्रतिकार न करेगी ? आखिर आत्म-दबा ही के लिए तो उसने यह पिस्तौल ले रखा है । केशव ने उसके सत्य का अपहरण ही तो किया है । उसका प्रेम-दर्शन केवल प्रवचना थी । वह केवल असती वासनाओं की तृप्ति के लिए सुभद्रा के साथ प्रेम-स्वर्णग्रंथ भरता था । फिर उसका वध करना क्या सुभद्रा का कर्तव्य नहीं ?

इस आंतम कल्पना से सुभद्रा का वह उत्तेजना मिल गयी, जो उसके भयंकर संकल्प को पूरा करने के लिए आवश्यक थी । यहाँ वह अवस्था है, जब खीं पुरुष के खून की प्यासी हो जाती है ।

उसने खूंडी पर लकड़ी तुर्डी पिस्तौल उतार ली और ध्यान से देखने लगी, मानो उस कभी देखा न हो । कल संध्या-समय जब आर्य-मन्दिर में केशव और उसकी प्रेमिका एक दूसरे के सम्मुख बैठे हुए होंगे, उसी समय वह इस गोली से केशव की प्रेम-लोलाओं का अंत कर देगी । दूसरी गोली अपनी छाती में मार लेगी । क्या वह रो-रोकर अपना अधम जीवन काटेगी ?

(७)

संध्या का समय था । आर्य-मन्दिर के आँगन में वर और वधू इष्ट-मित्रों के साथ बैठे हुए थे । विवाह का संस्कार हा रहा था । उसी समय सुभद्रा पहुँची, और बरामदे में आकर एक लम्बे की आड़ में इस भौंति खड़ी हो गयी कि केशव का मुँह उसके सामने था । उसकी और्ताओं में वह दृश्य खिच गया, जब आज से तीन साल पहले उसने इसी भौंति केशव को मंडप में बैठे हुए आड़ से देखा था । तब उसका हृदय कितना उत्त्वर्जित हो रहा था । अन्तस्तल में गुदगुदी-सी हो रही थी, कितना अपार अनुराग था, इननी अनीम अभिलाषाएँ थीं, मानो जीवन-प्रभात का उदय हो रहा हो । जीवन मधुर संगीत की भौंति सुखद था, भविष्य ऊगा-स्वप्न की भौंति सुन्दर । क्या यह वही केशव है ? सुभद्रा को ऐसा भ्रम हुआ, मानो यह केशव नहीं है । हाँ, यह वह केशव नहीं था । यह उसी रूप और उसी नाम का कोई दूसरा मनुष्य था । अब उसकी मुसकिराहट में, उसके नेत्रों में, उसके शब्दों में, उसके हृदय को आकर्षित करने वाली कोई वस्तु न थी । उसे देखकर वह उसी भौंति निःसंद निश्चल खड़ी है, मानो

कोई अपरिचित व्यक्ति हो । अब तक केशब का सा रूपवान्, तेजस्वी, सौभ्य, शीलवान् पुरुष संसार में न था ; पर अब सुभद्रा को ऐसा जान पड़ा कि वहाँ बैठे हुए युवकों में और उसमें कोई अन्तर नहीं है । वह ईर्पांग, जिसमें वह जली जा रही थी, वह हिंसा-कल्पना, जो उसे वहाँ तक लायी थी, मानो एकदम शान्त हो गयी । विराक्त हिंसा से भी अधिक हिंसात्मक होती है—सुभद्रा की हिंसा-कल्पना में एक प्रकार का ममत्व था—उसका बेशब, उसका प्रणवलभ, उसका जीवन-सर्वस्व आर किसी का नहीं हो सकता । पर अब वह ममत्व नहीं है । वह उसका नहीं है, उसे अब परवा नहीं, उसपर किसका अधिकार होता है ।

विवाह-संस्कार समाप्त हो गया, मित्रों ने बधाइयों दर्दी, सहेलियों ने मंगल-गान किया, फिर लोग मेज़ों पर जा बैठे, दावत होने लगी, रात के बारह बज गये ; पर सुभद्रा वहाँ पाषण-मूर्ति की भाँति खड़ी रही, मानो कोई विचित्र स्थग देख रही हो । हाँ, अब उसे अपने हृदय में एक प्रकार के शून्य का अनुभव हो रहा था, जैसे कोई बस्ती उजड़ गयी हो, जैसे कोई संगीत बन्द हो गया हो, जैसे कोई दीपक बुझ गया है ।

जब लोग मन्दिर से निकले, तो वह भी निकल आयी ; पर उसे कोई मार्ग न सूझता था । परिचित सड़कें उसे भूली हुईं-सी जान पड़ने लगीं । सारा सासार ही बदल गया था । वह सारी रात सड़कों पर भटकती फिरी । घर का कहीं पता नहीं । सारी दूकानें बन्द हो गयीं, सड़कों पर सचाया छाया गया, फिर भी वह अपना घर ढूँढती हुई चली जा रही थी । हाय ! क्या इसी भाँति उसे जीवन-पथ में भी भटकना पड़ेगा ?

सहसा एक पुलिसमैन ने पुकारा—मैडम, तुम कहाँ जा रही हो ?

सुभद्रा ने ठिठककर कहा—कहीं नहीं ।

‘तुम्हारा स्थान कहाँ है ?’

‘मेरा स्थान ?’

‘हाँ, तुम्हारा स्थान कहाँ है ? मैं तुम्हें बड़ी देर से इधर-उधर भटकते देख रहा हूँ । किस स्ट्रीट में रहती हो ?’

सुभद्रा को उस स्ट्रीट का नाम तक न याद या ।

‘तुम्हें अपने स्ट्रीट का नाम तक याद नहीं ?’

‘भूल गयी, याद नहीं आता ।’

महमा उसको दृष्टि सामने के एक साइनबोर्ड की तरफ उठी, ओह ! यही तो उसकी स्ट्रीट है । उसने सिर उठाकर इधर-उधर देखा । सामने ही उसका डेरा था । और इसी गली में, अपने ही वर के सामने, न-जाने कितनी देर से वह चक्कर लगा रही थी ।

(८)

अभी प्रातःकाल ही था कि युवती मुभद्दा के कमरे में पहुँची । वह उसके कपड़ेसी रही थी । उसका सारा तन-मन कपड़ों में लगा हुआ था । कोई युवती इतनी एकाग्रनित्ति होकर अपना शृंगार भी न करती होगी । न-जाने उससे कौन-सा पुरस्कार लेना चाहती थी । उसे युवती के आने की खबर भी न हुई ।

युवती ने पूछा —तुम कल मन्दिर में नहीं आयीं ?

मुभद्दा ने सिर उठाकर देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानो किसी कवि की कोमल कल्पना मूर्तिमती हो गयी है । उसकी रूपन्धुवि अनिवार्यी । प्रेम की विभूति रोम-रोम से प्रदर्शित हो रही थी । मुभद्दा दौड़कर उसके गले से लिपट गयी, जैसे उसकी छायी बहन आ गयी हो, और बोली—हाँ, गयी तो थी ।

‘मैंने तुम्हें नहीं देखा ।’

‘हाँ, मैं अलग थी ।’

‘केशव को देखा ?’

‘हों देखा ।’

‘धीरे से क्यां बोलीं ? मैंने कुछ भूठ कहा या ?’

मुभद्दा ने सहदयता से मुसकिराकर कहा —मैंने तुम्हारी आँखों से नहीं, अपनी आँखों से देखा । मुझे तो वह तुम्हारे योग्य नहीं जैंचे । तुम्हें ठग लिया ।

युवती खिलतिलाकर हँसी और बोली—वाह ! मैं समझती हूँ, मैंने उन्हें ठगा है ।

मुभद्दा ने गम्भीर होकर कहा—एक बार वज्राभूषणों से सजकर अपनी क्षुवि आर्द्धने में देखे, तो मालूम हो ।

‘तब क्या मैं कुछ और हो जाऊँगी ?’

‘आपने कमरे से फर्श, परदे, तसवीरें हॉँडियाँ, गमले आदि निकालकर देख लो, कमरे की शोभा वही रहती है ?’

युवती ने सिर हिलाकर कहा—‘ट्रीक कहती हो। लेकिन आभूषण कहाँ से लाऊँ। न-जासे अभी कितने दिनों में बनने की नीबत आये !’

‘मैं तुम्हें आपने गहने पहना दूँगी !’

‘नुम्हारे पास गहने हैं ?’

‘बहुत। देखो, मैं अभी लाकर तुम्हें पहनानी हूँ।’

युवती ने मँह से ता बहुत ‘नहीं-नहीं’ किया, पर मन में प्रसन्न हो रही थी। सुभद्रा ने अपने सारे गहने पहना दिये। अपने पास एक छृत्ता भी न रखा। युवती को यह नया अनुभव था। उसे इस रूप में निकलते शर्म तो आती थी, पर उसका रूप चमक उठा था, इसमें सन्देह न था! उसने आईने में अपनी सूरत देखी तो उसकी सूरत जगमगा उठी, मानो किसी विगेगिनी को अपने प्रियतम का मंचाद भिला हो। मन में गुरुगुदी होने लगी। वह इतनी रूपवती है, उसे उसकी कल्पना भी न थी।

कहीं कशव इस रूप में उसे देख लेते, यह आकांक्षा उसके मन में उदय हुई, पर कहे कैसे। कुछ देर के बाद लज्जा से भिर झुकाकर बोली—‘कशव मुझे इस रूप में देखकर बहुत हँसेंगे।’

सुभद्रा—हँसेंगे नहीं, बर्ला लेंगे, औरंगे खुल जायेंगी। तुम आज इसी रूप में उनके पास जाना।

युवती ने चकित होकर कहा—सच ! आप इसकी अनुर्मति देती हैं ?

सुभद्रा ने कहा—बड़े हृप में।

‘तुम्हें सन्देह न होगा ?’

‘बिल्कुल नहीं।’

‘आंर जो मैं दो-चार दिन पहने रहूँ ?’

‘तुम दो-चार महीने पहने रहो। आखिर, यहाँ पढ़े ही तो है !’

‘तुम भी मेरे साथ चलो।’

‘नहीं, मुझे अवकाश नहीं है।’

‘अच्छा, यो मेरे घर का पता नोट कर लो।’

‘हाँ, लिख दो, शायद कभी आऊँ।’

एक न्यूण में युवती यहाँ से चली गयी। सुभद्रा अपनी लिङ्ककी पर उसे इस भौंति प्रसन्न-मुख खड़ी देख रही थी, मानों उसकी छोटी बहन हो, ईश्या या द्वेष का लेश भी उसके मन में न था।

मुश्कल से, एक घण्टा गुजरा होगा कि युवती लौटकर बोली—सुभद्रा ज्ञामा करना, मैं तुम्हारा समय बहुत खराब कर रही हूँ। केशव बाहर लड़े हैं। बुला लूँ?

एक न्यूण, केवल एक न्यूण के लिए, सुभद्रा कुछ प्रबढ़ा गयी। उसने लंदी में उठकर मेज पर लड़ी हुई चीजें इथर-उधर हाय दीं, कपड़े करीने से रखा, दिये अपने उलझे हुए बाल सैंभाल लिये, फिर उदासीन भाव से मुसाकिराकर बोली—उन्हें तुमने क्यों कष्ट दिया? जाओ बुला लो।

एक भैंसट में केशव ने कमरे में कदम रखा और चौंककर पीछे हट गये, मानों पाँव जल गया हो। मैंह से एक चीख निकल गयी। सुभद्रा गम्भीर, शान्त निश्चल अपनी जगह पर लड़ी रही। फिर हाथ बढ़ाकर बोली, मानों किसी अपरचित व्याक से बोल रही हो—आइए मिस्टर केशव, मैं आपको ऐसी मुशील, ऐसी सुन्दरी, ऐसी विदुपी रमणी पाने पर बधाई देती हूँ।

केशव के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह पथ-भ्रष्ट सा बना लड़ा था। लज्जा और ग्लानि भैंसके चेहरे पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। यह बात एक दिन होनेवाली थी अवश्य, पर इस तरह अन्नानक उसकी सुभद्रा से भेट हांगी, इसका उसे रवझ में भी गुगान न था। सुभद्रा से यह बात कैसे कहेगा, इसको उसने लूँ सोच लिया था, उसके आक्षेपों का उत्तर सोच लिया था, पत्र के शब्द तक मन में अङ्कित कर लिए थे। ये सारी तैयारियाँ धरी रह गयीं और सुभद्रा से सान्नात् हो गया। सुभद्रा उसे देखकर जरा भी नहीं चौंकी, उसके मुख पर आश्चर्य, श्वराहट या दुःख का एक चिह्न भी न दिखायी दिया। उसने उसी भौंति उससे बात की, मानो वह कोई अजनबी हो। यहाँ कब आयी, कैसे आयी, क्यों आयी, कैसे गुजर करती है, यह और इसी तरह के असंख्य प्रश्न पूछने के लिए केशव का चित्त चंचल हो उठा। उसने सोचा था, सुभद्रा उसे खिक्कारेगी, विष खाने की घमकी देगी—निष्ठुर, निर्दय और न-जाने

क्या-क्या। कहेगी। इन सब आपदाओं के लिए वह तैयार था, पर इस आकृतिक मिलन, इस गर्वयुक्त उपेक्षा के लिए वह तैयार न था। वह प्रेम-ब्रतधारिणी सुभद्रा इतनी कठोर, इतनी दृदय-शून्य हो गयी है। अवश्य ही इसे सारी बाँतें पढ़ते ही मालूम हो जुकी हैं। सब से तीव्र आशात यह था कि इसने अपने सारे आभूषण इतनी उदारता से दे डाले, और कौन जाने वापस भी न लेना चाहती हो। वह परास्त और अप्रतिभ होकर एक कुर्सी पर बैठ गया। उत्तर में एक शब्द भी उसके मुख से न निकला।

युवती ने कृतज्ञता का भाव प्रकट करके कहा—इनके पति इस समय जर्मनी में हैं।

केशव ने आँखें फाइकर देखा, पर कुछ बोल न सका।

युवती ने फिर कहा—बेनारी संगीत के पाठ पढ़ाकर और कुछ कपड़े सीकर अपना निर्वाह करती है। वह महाशय यहाँ आ जाते, तो उन्हें उनके सौभाग्य पर बधाई देती।

केशव इस पर भी कुछ न बोल सका, पर सुभद्रा ने मुसिरिकर कहा—वह मुझसे रुठे हुए हैं, बधाई पाकर और भी भल्लाते। युवती ने आश्चर्य से कहा—‘तुम उन्हीं के प्रेम से यहाँ आयीं, अपना धर-वार छाड़ा, यहाँ मिहनत-मजूरी करके निर्वाह कर रही हों, फिर भी वह तुमसे रुठे हुए हैं? आश्चर्य!

सुभद्रा ने उसी भाँति प्रसन्न-मुख से कहा—युश्य-प्रकृति हो आश्चर्य का विषय है, चाहे मिठ केशव इसे स्वीकार न करें।

युवती ने फिर केशव की ओर प्रेरणा-पूर्ण दृष्टि से देखा, लेकिन केशव उसी भाँति अप्रतिभ बैठा रहा। उसक दृदय पर यह नया आशात था। युवती ने उसे ऊप देखकर उसकी तरफ से सफाई दी—केशव ल्ली, और पुरुष, दोनों ही को समान अधिकार देना चाहते हैं।

केशव द्वब रहा था, तिनके का सहारा पाकर उसकी हिम्मत बँध गयी। बोला—विवाह एक प्रकार का समझौता है। दोनों पक्षों को अधिकार है, जब चाहें उसे तोड़ दें।

युवती ने हामी भरी—सम्म-समाज में यह आन्दोलन बड़े जोरों पर है।

मुभद्रा ने शंका की—किसी समझौते को तोड़ने के लिए कारण भी तो होना चाहिए ?

केशव ने भावों की लाई का सहारा लेकर कहा—जब इसका अनुभव हो जाय कि हम इस बन्धन से मुक्त होकर अधिक नुवी हो सकते हैं, तो यही कारण काफी है। क्यों को यदि मालूम हो जाय कि वह दूसरे पुरुष के साथ...

मुभद्रा ने बात काटकर कहा—क्या कीजिए मिठा केशव, मुझ में इतनी बुद्धि नहीं कि इस विषय पर आप से बहम कर सकूँ। आदर्श समर्झनीता वही है, जो जीवन-पर्यावरण रहे। मैं भारत की नहीं वहती। वहाँ तो ल्ली पुरुष की लौंडी है, मैं इंग्लैंड की वहती हूँ। यहाँ भी कितनी ही आंखतां से मेरी बात-चीत हुई है। वे तलावं की बढ़ती हुई संख्या को देखकर खुश नहीं होतीं। विवाह का सब से ऊँचा आदर्श उसकी पवित्रता आंख स्थिरता है। पुरुषों ने सदैव इस आदर्श को तोड़ा है, मृत्युओं ने निभाहा है। अब पुरुषों का अन्याय क्रियों को किस ओर ले जायगा, नहीं कह भक्ती।

इस गम्भीर आंख संयत कथन ने विवाद का अन्त कर दिया। मुभद्रा ने नाय मैंभवार्या। तीनों आदर्शमयों ने पी। केशव पूछता था, अभी आप यहों कठने दिनों नहीं। लेनिन न पूछ सका। वह यहाँ पन्द्रह मिनट और रहा, लेनिन विनाश में ढूँढ़ा हुआ। चलने समय उसमें न रहा गया। पूछ ही चैता—अभी आप यहों कठने दिन और रहेगी ?

मुभद्रा ने जमीन की ओर ताकते हुए कहा—कह नहीं सकती।

‘कोई जरूरत हो, तो मुझे याद कीजए।’

‘इस आशनामन के लिए आपको धन्यवाद।’

केशव मारे दिन बनेन रहा। मुभद्रा उसकी ओर्लों में फिरती रही। मुभद्रा की बातें उसके कानों में गैंगती रहीं। अब उसे इसमें कोई संदेह न या कि उसी के प्रेम में मुभद्रा यहों आयी थी। सारी परिस्थिति उसकी समझ में आ गयी थी। उस भीपरण त्याग का अनुमान करके उसके रोमें लड़े हो गये। यहाँ मुभद्रा ने क्यांक्या कष्ट मेले हांगे, कैसी-कैसी यातनाएं सही होंगी, सब उसी के कारण ! वह उस पर भार न बनना चाहती थी, इसीलिए तो उसने अपने आने की तुलना तक उसे न दी। अगर उसे पहले से मालूम होता कि मुभद्रा यहाँ आ

गयी है, तो कदाचित् उसे उस युवती की ओर इतना आकर्षण ही न होता। चौकीदार के सामने चोर को घर में घुसने का साहस नहीं होता। नुमद्रा को देखकर उसकी कर्तव्य-चेतना जाग्रत हो गयी। उसके पैरों पर गिरकर उससे क्षमा माँगने के लिए, उसका मन अधीर हो उठा। वह उसके मुँह में सारा बृत्तान्त सुनेगा। यह मौन उपेत्ता उसके लिए असव्य थी। दिन तो केशव ने किसी तरह काथा, लेकिन ज्यां ही रात के दस बजे, वह नुमद्रा से मिलने चला। युवती ने पूछा—कहाँ जाते हो?

केशव ने बूट का लेस बाँधते हुए कहा—जरा एक प्राक्टेमर में मिलना है, इस बत्त आने का वादा कर चुका हूँ?

‘जल्द आना।’

‘बहुत जल्द आऊँगा।’

केशव घर से निकला, तो उसके नन में कित्री ही विवार-तरंगें उठने लगी। कहाँ नुमद्रा मिलने से इनकार कर दे, तो? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। वह इतनो अनुदार नहीं है। हाँ, यह हो सकता है कि वह अपने विषय में कुछ न कहे। उसे शान्त करने के लिए उसने एक कथा की करवा कर दी तो। ऐसा बोझार था कि बचने की आरा न थी। उमिज्जा ने ऐसा तन्मर हांकर उसकी सेवा-गुश्रूपा की कि उसे उसमें प्रेम हो गया। कथा का नुमद्रा घर जो अपर पड़ेगा, इसके विषय में केशव को कोई सन्देह न था। परिभिरुति का बीघ होने पर वह उसे नूमा कर देनी। लेकिन इनमें कौन कथा होगा? कथा वह दानों के साथ एक सा प्रेम कर सकता है! नुमद्रा को देख लेने के बाद उमिज्जा को शायद उसके मायर रहने में आपत्ति न हो। आपत्ति हो ही के। मरुनो है! उसने यह बात छुटो नहीं है। हाँ, यह देखना है कि नुमद्रा भी इन स्वीकार करती है या नहीं। उसने जिन उपेत्ता का परेवर दिया है, उन देवतान् हुए, तो उसके मानने में सन्देह ही जान पड़ता है। मगर वह उन मनायेगा, उसकी बिनती करेगा, उसके पैरों पड़ेगा और अन्त में उस मनाकर ही छोड़ेगा। नुमद्रा के प्रेम और अनुराग का नया प्रमाण पाकर वह मानो एक कठोर निद्रा से जाग उठा या। उसे अब अनुमत हो रहा था कि नुमद्रा के लिए उसके हृदय में जो स्थान था, वह खाजो पड़ा हुआ है। उमिज्जा उस स्थान पर अगता आधिवत्य नहीं जमा।

सकती। अब उसे शत हुआ कि उर्मिला के प्रति उसका प्रेम केवल वह तृष्णा थी, जो स्वादयुक्त पदार्थों को देखकर ही उत्पन्न होती है। वह सच्ची कुछा न थी। अब फिर उसे सरल सामान्य भोजन की इच्छा हो रही थी। विलासिनी उर्मिला कभी इतना त्याग कर सकती है, इसमें उसे सन्देह था।

सुभद्रा के घर के निकट पहुँचकर केशव का मन कुछ कातर होने लगा। लेकिन उसने जी कड़ा करके जीने पर कदम रखता और एक क्षण में सुभद्रा के द्वार पर पहुँचा, लेकिन कमरे का द्वार बन्द था। अन्दर भी प्रकाश न था। अवश्य ही वह कहीं गयी है, आती ही होंगी। तब तक उसने बरामदे में ठहलने का निश्चय किया।

सहसा मालकिन आती हुई दिखायी दी। केशव ने बढ़कर पूछा—आप बता सकती हैं कि यह महिला कहाँ गयी है?

मालकिन ने उसे खिर से पाँव तक देखकर कहा—वह तो आज यहाँ से चली गयी।

केशव ने हकबकाकर पूछा—चली गयी! कहाँ नली गयी?

‘यह तो मुझसे कुछ नहीं बताया।’

‘कब गयी?’

‘वह तो दोपहर को ही नली गयी?’

‘अपना असबाब लेकर गयी?’

‘असबाब किसके लिए छोड़ जाती हैं, एक छोटा-सा पैकेट अपनी एक सहेली के लिए छोड़ गयी हैं। उस पर मिसेज केशव लिखा हुआ है। मुझसे कहा था कि याद वह आ जायें, तो उन्हें दे देना, नहीं तो डाक से भेज देना।’

केशव को अपना हृदय इस तरह बैटता हुआ मालूम हुआ, जैसे सूर्य का अस्त होता है। एक गहरी सौंस लेकर बोला—

‘आप मुझे वह पैकेट दिखा सकती हैं? केशव मेरा ही नाम है।’

मालकिन ने मुस्किराकर कहा—मिसेज केशव को कोई आपत्ति तो न होगी?

‘तो फिर मैं उन्हें बुला लाऊँ?’

‘हाँ, उचित तो यही है।’

‘बहुत दूर जाना पड़ेगा।’

केशव कुछ ठिठकता हुआ जीने की ओर चला, तो गालकिन ने फिर कहा—मैं समझती हूँ आप इसे लिये ही जाइए, व्यर्थ आप को क्यों दौड़ाऊँ। मगर कल मेरे पास एक रसीद मेज दीनिएगा। शायद उसकी जरूरत पड़े।

यह कहते हुए उसने एक छोटा-सा पैकेट लाकर केशव को दे दिया। केशव पैकेट लेकर इस तरह भागा, मानों कोई चोर भागा जा रहा हो। इस पैकेट में क्या है, यह जानने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। उसे इतना विलम्ब असह्य था कि आगे स्थान पर पर जाकर उसे खोले। सभीप ही एक पार्क था। वहाँ जाकर उसने बिजली के प्रकाश में उस पैकेट को खोल डाला। उस समय उसके हाथ कौप रहे थे और हृदय इतने बेग से धड़क रहा था, मानो किसी बन्धु की बीमारी के समाचार के बाद तार मिला हो।

पैकेट का खुलना या कि केशव की आँखों से आँमुचों की भड़ी लग गयी। उसमें एक पीले रंग की साढ़ी थी, एक छोटी-गी सेंदुर की डिबिया और एक केशव का फोटो-निचित्र। साथ ही एक लिफाफा भी था। केशव ने उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

‘बहन, मैं जाती हूँ। यह मेरे सोहाग का शव है। इसे टेम्स नदी में विसर्जित कर देना। तुम्हों लोगों के हाथों यह संस्कार भी हो जाय, तो अच्छा।

तुम्हारी,

सुमद्रा?

केशव मर्माहत-सा पत्र हाथ में लिये वहीं आस पर लेट गया और फूट-फूट कर रोने लगा।

आत्म-संगीत

(१)

आधी रात थी । नदी का किनारा था । आकाश के तारे स्थिर थे और नदी में उनका प्रतिबिम्ब लहरों के साथ चंचल । एक स्वर्णीय संगीत की मनोहर और जीवनदायिनी, प्राणपोषिणी घटनियाँ इस निस्तब्ध और तमोमय दृश्य पर इस प्रकार छा रही थीं, जैसे हृदय पर आशाएँ छायी रहती हैं, या मुखमण्डल पर शोक ।

रानी मनोरमा ने आज गुरु-दीक्षा ली थी । दिन-भर दान और व्रत में व्यस्त रहने के बाद नीठी नींद की गोद में सो रही थी । अक्तमान् उसकी आँखें खुलीं और ये मनोहर घटनियाँ कानों में पहुँचीं । वह व्याकुल हो गयी—जैसे दीपक को देखकर पतंग ; वह अधीर हो उठी, जैसे म्हाँड़ की गन्ध पाकर नींदी । वह उठी और ढारपालों, एवं चौकीदारों की दृष्टियाँ बच्चा भी दृष्टि राजमहल से बाहर निकल आयी—जैसे वेदनापूर्ण कन्दन मुनहर आँखों से आँखू निकल आते हैं ।

गरीता-तट पर कंटीली भाँड़ियाँ थीं । ऊँचे कगारे थे । भयानक जन्तु थे । और उनकी डरावनी आवाज़ ! शब्द थे और उनमें भी अधिक भयक्खर उनकी गल्पना । मनोरमा को मलता और मुकुमारता की मृति थी । परन्तु उस मधुर संगीत का आर्क्षण्य उस तन्मयता की अवस्था में नीचे लिए जाता था । उसे आगदाओं का ध्यान न था ।

वह वरणी चलती रही, वहाँ तक कि मार्ग में नदी ने उसका गति-रोध किया ।

(२)

मनोरमा ने विवश हो कर इधर-उधर दृष्टि दर्जायी । किनारे पर एक नींद दिखायी दी, निकट जाकर बोली—मौंझी, मैं उस पार जाऊँगी, इस मनोहर राग ने मुझे व्याकुला कर दिया है ?

मौंझी—रात को नाव नहीं खोन सकता । हवा तेज है और लहरें दगड़नी । जान-जोखिम है ।

मनोरमा—मैं रानी मनोरमा हूँ । नाव खोल दे, मुँहमौंगी मजदूरी ढूँगी ।

माँझी—तब तो नाव किसी तरह नहीं खोल सकता। रानियों का इस नदी में निवाह नहीं।

मनोरमा—चौधरी, तेरे पाँव पड़ती हैं। शीघ्र नाव खोल दे। मेरे प्राण उस ओर खिचे चले जाते हैं।

माँझी—क्या इनाम मिलेगा?

मनोरमा—जो तू माँगे।

माँझी—आप ही कह दें, मैं गँवार क्या जानूँ कि रानियों से क्या चीज माँगनी चाहिए। कहीं कोई ऐसी चोज न माँग बैठूँ, जो आपकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध हो।

मनोरमा—मेरा यह हार अब्जन्त मूल्यवान् है। मैं इसे बेबे में देती हूँ। मनोरमा ने गले से हार निकाला; उसको चमक से माँझी का मुख मरणदल प्रकाशित हो गया—वह कठोर और काला मुख, जिस पर झुरियाँ पड़ी हुई थीं।

अच्छानक मनोरमा को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो संगीत की ध्वनि और निकट हां गयी हों। कदाचित् कोई पूर्ण ज्ञानी तुरुप आत्मानन्द के आवेश में उस सरिता-तट पर बैठा हुआ उस निःस्तब्ध निशा को संगीत-पूरण कर रहा है। रानी का हृदय उछलने लगा। आह! कितना मनोभुग्धकर राग था! उसने अधोर होकर कहा—माँझी, अब देर न कर, नाव खोल; मैं एक ज्ञान भी धोरज नहीं रख सकती।

माँझी—इम हार को लेकर मैं क्या करूँगा?

मनोरमा सच्च मांती हैं।

माँझी—यह और भी विपत्ति है। माँझीन गले में पहनकर पड़ोसियों को दिखायेगी, वह सब डाह से जलेंगी, उसे गालियाँ देंगी। कोई नोर देखेगा, तो उसकी छाती पर सौंप लोटने लगेगा। मेरी नुसास भोपड़ी पर दिन-दहाड़ डाका पड़ जायगा। लोग चोरी का अपराध लगायेंगे। नहीं, मुझे यह हार न चाहिए।

मनोरमा—तो जो कुछ तू माँग; वही दूँगी। लेकिन देर न कर। मुझे अब धैर्य नहीं है। परीक्षा करने की तनिक भी शक्ति नहीं है। इस राग की एक-एक तान मेरी आत्मा को तड़पा देती है।

मौझी—इससे भी अच्छी कोई चीज दीजिए ।

मनोरमा—ओरे निर्दयी ! तू मुझे बातों में लगाये रखना नाहता है । मैं जो देती हूँ, वह लेता नहीं, स्वयं कुछ माँगता नहीं । तुझे क्या मालूम, मेरे हृदय की इस समय क्या दशा हो रही है । मैं इस आत्मिक पदार्थ पर अपना सर्वस्व न्योक्त्वा कर सकती हूँ ।

मौझी—ओर क्या दीजिएगा ?

मनोरमा—मेरे पास इससे बहुमूल्य और कोई वस्तु नहीं है, लेकिन तू अभी नाव खाल दे, तो प्रतिज्ञा करती हूँ कि तुझे अपना महन दे दूँगी; जिसे देखने के लिए कदाचित् तू भी कभी गया हो । विशुद्ध श्वेत पत्थर से बना है, भारत में इसकी तुलना नहीं । अब एक क्षण की भी देर न कर ।

मौज़ी—(हँसकर) उस महल में रहकर मुझे क्या आनन्द मिलेगा ? उलटे मेरे भाई-बन्धु शत्रु हो जायेंगे । इस नौका पर और ऐसी रात में भी मुझे भय नहीं लगता । और्धी चलती रहती है, और मैं इस पर पढ़ा रहता हूँ । किन्तु वह महल तो दिन ही में फाड़ खायेगा । मेरे घर के आदमी तो उसके एक कोने में समा जायेंगे । और आदमी कहाँ से लाऊँगा; मेरे नौकर-चाकर कहाँ ? इतना माल-असवाब कहाँ ? उसकी सफाई और भरम्भत कहाँ से कराऊँगा ? उसकी कुलवारियों सूख जायेंगी, उसकी क्यारियों में गोदड़ बोलेंगे और अद्यारियों पर कचूतर आर अबाबीलं धांसले बनायेंगी ।

मनोरमा अच्छानक एक तन्मय अवस्था में उछल पड़ी । उसे प्रतीत हुआ कि संगीत निकटर आ गया है । उसकी सुन्दरता और आनन्द अधिक प्रखर हो गया था—जैसे बत्ती उकसा देने से दीपक अधिक प्रकाशमान हो जाता है । पहले चित्तार्थक था, तो अब आवेशजनक हो गया था । मनोरमा ने व्याकुल होकर कहा—आह ! तू फिर अपने मुँह से क्यों कुछ नहीं माँगता ? अहा ! कितना विरागजनक राग है, कितना विहूल करने वाला ! मैं अब तनिक भोधीरज नहीं धर सकती । पानी उतार में जाने के लिए जितना व्याकुल होता है, श्वास हवा के लिए जितनी विकल होती है, गन्ध उड़ जाने के लिए जितनी उतारली होती है, मैं उस स्वर्णीय संगीत के लिए उतनी व्याकुल हूँ । उस संगीत में कोयल की-सी मस्ती है, पपीहे की-सी बेदना है, श्यामा की-सी विहूलता है, इसमें

भरनों का-सा जोर है, और आँधी का-सा बल ! इसमें वह सब कुछ है, जिसमें विवेकाग्नि प्रज्ज्वलित होती, जिससे आत्मा समाहित होती है, और अन्तःकरण पवित्र होता है। मौँझी, अब एक क्षण का भी विलम्ब मेरे लिये मूल्य की यन्त्रणा है। शीघ्र नौका खोल। जिस सुमन की यह सुगन्ध है, जिस दीपक की यह दीप्ति है, उस तक मुझे पहुँचा दे। मैं देल नहीं सकती, इस संगीत का रचयिता कहीं निकट ही बैठा हुआ है, बहुत निकट।

मौँझी—आपका महल मेरे काम का नहीं है, मेरी झोपड़ी उससे कहीं सुहावनी है।

मनोरमा—हाय ! तो अब तुझे क्या दूँ ? यह संगीत नहीं है, यह इस सुविशाल द्वेष की पर्वत्रता है, यह समस्त सुमन-समूह का सौरभ है, समस्त मधुर-ताओं को माधुरी है, समस्त अवस्थाओं का सार है। नौका खोल। मैं जब तक जीऊँगी, तेरी सेवा करूँगी, तेरे लिये पानी भरूँगी, तेरी झोपड़ी बहालूँगी। हाँ, मैं तेरे मार्ग के कंकड़ चुनूँगी, तेरे झोपड़े को फूलों से सजाऊँगी, तेरी मौँझन के पैर मलूँगी। प्यारे मौँझी, यदि मेरे पास सी जानें होतीं, तो मैं इस संगीत के लिए अर्पण करती। ईश्वर के लिए मुझे निराश न कर। मेरे धैर्य का अन्तिम बिन्दु शुष्क हो गया है। अब इस चाह में दाह है, अब यह सिर तेरे चरणों में है।

यह कहते-कहते मनोरमा एक विक्षिप्त की अवस्था में झाँकी के निकट जाकर उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह संगीत आत्मा पर किसी प्रज्ज्वलित प्रदीप की तरह ज्योति बरसाता हुआ मेरी ओर आ रहा है। उसके रोमांच हो आया। वह मस्त होकर भूमने लगी। ऐसा जात हुआ कि मैं हवा में उड़ी जाती हूँ। उसे अपने पार्श्व-देश में तारे फिलमिलाते हुए दिखायी देते थे। उसपर एक आत्मविस्मृत का भावावेश छा गया और जब वही मस्ताना संगीत, वही मनोहर राग उसके मुँह से निकलने लगा। वहीं अमृत की बूँदे, उसके अधरों से टपकने लगीं। वह स्वयं इस संगीत का छोत थी। नदी के पार से आने वाली ध्वनियाँ, प्राणपोषिणी ध्वनियाँ उसी के मुँह से निकल रही थीं।

मनोरमा का मुख-मण्डल चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान हो गया था, और आँखों से प्रेम की किरणें निकल रही थीं।

एकरूप स

(?)

रंगमंच का परदा गिर गया । तारा देवी ने शकुन्तला का पाठ स्लेटकर दर्शकों को मुख्य कर दिया था । जिन वक्त वह शकुन्तला के रूप में राजा दुष्यन्त के सम्मुख खड़ी भाली, बेदना और तिरस्कार से उत्तेजित भावों को आग्नेय शब्दों में प्रकट कर रही थी, दर्शक-बृन्द शिष्टाचले नियमों की उपेक्षा करके मञ्च की ओर उन्मत्तों की भौति दौड़ पड़े थे और तारादेवी का यशोगान करने लगे थे । कितने ही तो स्टेज पर चढ़ गये और तारादेवी के चरणों पर गिर पड़े । सारा स्टेज फूलों से पट गया, आभूषणों की वर्षा होने लगी । यदि उसी ज्ञान भेनका का विमान नीचे आकर उसे उड़ा न ले जाता, तो कशचिन् उस भक्तम-भक्तके में दसर्थाँच आदमियों की जान पर वर जाती । मैनेजर ने तुरन्त अकर दर्शकों को गुण-प्राहकता का धन्वन्तर दिया और वादा भी किया कि दूसरे दिन फिर यही तमाशा होगा । तब लोगों का मोहान्माद शान्त हुआ । मगर एक युवक उस वक्त भी मञ्च पर घड़ा रहा । लौंचा कद का था, तेजस्वी मुद्रा, कुन्दन का-सा रंग, देवताओं का-सा स्वरूप, गढ़ी हुई देह, मुख से एक ज्योति-सी प्रस्कुटि हो रही थी । कोई राजकुमार मालूम होता था ।

जब सारे दर्शकगण बाहर निकल गये, उन्ने मैनेजर से पूछा—क्या मैं तारादेवी भं एक ज्ञान के लिये भिल सकता हूँ ?

मैनेजर ने उपेक्षा के भाव से कहा—हमारे यहाँ ऐसा नियम नहीं है ।

युवक ने फिर पूछा—क्या आप मेरा कोई पत्र उसके पास भेज सकते हैं ?

मैनेजर ने उसी उपेक्षा के भाव से कहा—जी नहीं । क्षमा कोजिएगा । यह हमारे नियमों के विरुद्ध है ।

युवक ने और कुछ न कहा, निराश हाँकर स्टेज के नीचे उतर पड़ा और बाहर जाना ही चाहता था कि मैनेजर ने पूछा—जराठहर जाइये, आर का कार्ड ?

युवक ने जेब से कागज का एक दुकड़ा निकालकर कुछ लिखा और दे दिया। मैनेजर ने पुजे को उड़ती हुई निगाह से देखा—कुंवर निर्मलकान्त चौधरी ओ० बी० ई०। मैनेजर की कठोर मुद्रा को मल हो गयी। कुंवर निर्मल-कान्त—शहर के सबसे बड़े रईस आंर ताल्लुकेदार, साहित्य के उज्ज्वल रथन, संगीत के सद्धर्षत आनाये, उच्च-कोटि के विद्रान, आठ-दस लाख बालाना के नफेदार, जिनके दान से देश की कितनी ही संस्थाएँ चलती थीं—इस समय एक छुद्र प्रायां के रूप में लड़ रहे। मैनेजर अपने उपेक्षा-भाव पर लजिजत हो गया। विनम्र शब्दों में बोला—क्रमा कीजिएगा, मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मैं आभी तारादेवी के पास हुजूर का कार्ड लिए जाता हूँ।

कुंवर साहब ने उसे रुकने का इशारा करके कहा—नहीं, अब रहने ही दीजिए, मैं कल पाँच बजे आऊँगा। इस वक्त तारादेवी को कष्ट होंगा। यह उनके विश्राम का समय है।

मैनेजर—मुझे विश्वास है कि वह आपकी व्यातिर दृतना कष्ट सहय सह लेंगी, मैं एक मिनट में आता हूँ।

किन्तु कुंवर साहब अपना परिचय देने के बाद अब अपनी आतुरता पर संयम का परदा डाजने के लिए विनश थे। मैनेजर का सज्जनता का धन्यवाद दिया आंर कल आने का वादा करके चले गये।

(२)

तारा एक साफ-सुयरे और सजे हुए कमरे में मेज के सामने किसी विचार में मग्न बैठी थी। रात का वह दृश्य उसकी आँखों के मामने नाच रहा था। ऐसे दिन जीवन में क्या बार-बार आने हैं? कितने मनुष्य उसके दर्शनों के लिए विकल हों रहे थे! उस एक दूमरं पर फटे पड़ते थे। कितनों को उसने पैरों से तुकड़ा दिया था—हाँ, तुकड़ा दिया था। मगर उस समूह में केवल एक दिव्य मूर्ति अविचलित रूप में लड़ी थी। उसकी आँखों में कितना गम्भीर अनुराग था, कितना हड़ संकल्प! ऐसा जान पड़ता था मानो उसके दोनों नेत्र उसके हृदय में तुमे जा रहे हैं। आज फिर उस पुरुष के दर्शन होंगे या नहीं, कौन जानता है। लेकिन यदि आज उनके दर्शन हुए, तो तारा उनसे एक बार बातचीत किये बिना न जाने देगी।

यह सोचते हुए उसने आईने की ओर देखा, कमल का फूल-सा खिला था। कौन कह सकता था कि यह नव-विकसित पुष्प : ५ बसन्ती की बहार देख चुका है। वह कान्ति, वह कोमलता, वह चपलता, वह मधुर्य किसी नवयौवना का लंडिज़ा कर सकता था। तारा एक बार फिर हृदय में प्रेम का दीपक जला बैठी। आज से बीस साल पहले एक बार उसको प्रेम का कु अनुभव हुआ था। तब से वह एक प्रकार का वैधव्य-जीवन व्यतीत करती रही। कितने प्रेमियों ने अपना हृदय उसकी मेंट करना चाहा था, पर उसने किसी की ओर आँख उठा कर भी न देखा था। उसे उनके प्रेम में कपण की गन्ध आती थी। मगर आह ! आज उसका संयम उसके हाथ से निकल गया। एक बार फिर आज उसे हृदय में उसी मधुर वेदना का अनुभव हुआ, जो बीस साल पहले हुआ था। एक पुरुष का साम्य स्वरूप उसकी आँखों में बस गया, हृदय-पट पर खिंच गया। उसे वह किमी तरह भूल न सकती थी। उसी पुरुष को उसने मोटर पर जाते देखा होता, तो कदाचित् उधर ध्यान भी न करती। पर उसे अपने समुख प्रेम का उपहार हाथ में लिए देवकर वह स्थिर न रह सकी।

सहमा दाई ने आकर कहा—बाईजी, रात की सब चीजें रखी हुई हैं, कहिए ता लाऊँ ?

तारा ने कहा—नहीं, मेरे पास चीज लाने की जरूरत नहीं; मगर ठहरो, क्या-क्या चीजें हैं ?

‘एक डॉर-का-डेर तो लगा है बाईजी, कहाँ तक गिनाऊँ—अशर्फियाँ हैं, ब्रूचेज, बाल के पन, बथन, लास्ट, अँगूठियाँ सभी तो हैं। एक छांटे-से डब्बे में एक मून्दर हार है। मैंने आज तक वैसा हार नहीं देखा। सब सन्दूक में रख दिया है।’

‘अच्छा, वह सन्दूक मेरे पास ला।’ दाई ने सन्दूक लाकर मेज पर रख दिया। उधर एक लड़के ने एक पत्र लाकर तारा को दिया। तारा ने पत्र को उत्तुक नेत्री से देखा—कुँवर निर्मलकान्त ओ० बी० इ०। लड़के से पूछा—यह पत्र किसने दिया ? वह तो नहीं, जो रेशमी साफा बौघे हुए थे ?

लड़के ने केवल इतना कहा—मैनेजर साहब ने दिया है। और लपका हुआ बाहर चला गया।

सन्दूक में सबसे पहले डिब्बा नजर आया। तारा ने उसे लोला तो सच्चे मोतियों का सुन्दर हार था। डिब्बे में एक तरफ एक कार्ड भी था। तारा ने लपककर उसे निकाल लिया और पढ़ा—कुँवर निर्मलकान्त् । कार्ड उसके छाय से क्लूटकर गिर पड़ा। वह भपटकर कुरसी से उठी और बड़ेबेग से कई कमरों और बरामदों को पार करती मैनेजर के सामने झगकर खड़ी हो गयी। मैनेजर ने खड़े होकर उसका स्वागत किया और बोला—मैं रात की सफलता पर आपको बधाई देता हूँ।

तारा ने खड़े-खड़े पूछा—कुँवर निर्मलकान्त क्या बाहर है? लड़का पत्र देकर भाग गया। मैं उससे कुछ पूछ न सकी।

'कुँवर साहब का इक्का तो रात ही तुम्हारे चले आने के बाद मिला था।'

'तो आ ने उसी वक्त मेरे पास क्यों न भेज दिया?'

मैनेजर ने दबी जबान से कहा—मैंने समझा, तुम आगम कर रही होगी, कष्ट देना उचित न समझा। और भाई, साफ बात यह है कि मैं डर रहा था, कहीं कुँवर साहब को तुमसे र्मलाकर तुम्हें खो न चैठूँ। अगर मैं आंरत होता, तो उसी वक्त उनके पीछे हो लेता। ऐसा देवरूप पुरुष मैंने आज तक नहीं देखा। वहाँ जो रेशमी साफा बौंधे खड़े थे तुम्हारे सामने। तुमने भी तो देखा था।

तारा ने मानो अर्धनिद्रा की दशा में कहा—हाँ, देखा तो था—क्या वह फिर आयेंगे?

'हाँ, आज पाँच बजे शाम को। बड़े विद्वान आदमी हैं, और इस शहर के सबसे बड़े रईस।'

'आज मैं रिहर्सल में न आऊँगी।'

(३)

कुँवर साहब आ रहे हुए थे। तारा आईने के सामने बैठी है और दाईं उसका शृंगार कर रही है। शृंगार भी इस जमाने में एक विद्या है। पहले परिपाठी के अनुसार ही शृंगार किया जाता था। कवियों, चित्रकारों और रसिकों ने शृंगार की मर्यादा-सी बाँध दी थीं। आँखों के लिए काजल लाजमी था, हाथों के लिए मेहर्दा, पाँवों के लिए महावर। एक-एक अंग एक सामान्य के

लिए निर्दिष्ट था । आज वहो परियादे नहीं रहो । आज प्रत्येक रमणी अपनी मुखनि, मुखद्विंशी और तुलनात्मक भाव से शृंगार करती है । उसका सौन्दर्य किस उपाय से आकर्षकता की सीमा पर पहुँच सकता है, यही उसका आदर्श होता है । नारा इम कला में निपुण थी । वह पन्द्रह साल से इस कल्पनी में थी और यह समस्त जीवन उसने पुरुषों के हृदय से खेजने ही में व्यतीत किया था । किस नितयन से, किस मुसकान से, किस अँगड़ाई से, किस तरह केशों के बिखर देने में दिलों का कलेग्राम हो जाता है; इम कला में कौन उससे बढ़कर ही सकता था ! आज उसने चुन-चुन कर आजमाये हुए, तीर तरकस से निकाले, और जब अपने अम्बा से मजकर वह दीवानग्नने में आयी, तो जान पड़ा मानों संमार का गारा मानुर्य उसकी बलाएँ, ले रहा है । वह मेज के पास खड़ी होकर कुँवर साहब का कार्ड देख रही थी, पर उसके कान मोटर की आवाज की आर लगे हुए थे । वह नाहती थी कि कुँवर माहब इसी वक्त आ जायें और उसे इसी अन्दाज में लड़े देखें । इसी अन्दाज से वह इसन्द अंग-प्रत्यंगों की पूर्ण छवि देख सकते थे । उसने अपनी शृंगार-कला से काल पर विजय पा ली थी । कौन कह सकता था कि यह चंद्रल नवयांवना उन अवस्था को पहुँच चुकी है, जब हृदय को शान्ति की इच्छा होती है, वह किसी आशन के लिए आनुर हो उठता है, और उसका आभेमान नम्रता क आगे सिर झुका देता है ?

तारा देवी को बहुत इन्तजार न करना पड़ा । कुँवर साहब शायद मिलने के लिए उससे भी उत्सुक थे । दस ही मिनट के बाद उनकी मोटर की आवाज आयी । नारा सँभल गयी । एक छण में कुँवर साहब ने कमरे में प्रवेश किया । तारा शिघ्नानार के लिए हाथ मिलाना भी भूल गयी । प्रौढ़ावस्था में भी प्रेम की उद्दिष्टता और असावधाना कुछ कम नहीं होती । वह किसी सलज्जा युवती की भाँति सिर झुकाये खड़ी रही ।

कुँवर साहब की निगाह आते ही उसका गरदन पर पड़ी । वह मांतियों का हार, जो उन्होंने रात को भेट की थी, चमक रहा था । कुँवर साहब को इतना आनन्द और कभी न हुआ था । उन्हें एक छण के लिए ऐसा जान पड़ा, मानो उनके जीवन की सारी अभिलाश पूरी हो गयी । बोले—मैंने आपको आज इतने सबरे कष्ट दिया, जमा कीजिएगा । यह तो आपके आराम क्य

समय होगा ? तारा ने सिर से खिसकती हुई साढ़ी का सेँभालकर कहा—इससे ज्यादा आराम और क्या हो सकता था कि आप के दर्शन हुए । मैं इस उपहार के लिए आर क्या आप को मनों धन्यवाद देती हूँ । अब तो कभी-कभी मुलाकात होती रहेगी ?

निर्मल कान्त ने मुसकिगकर कहा—कभी-कभी नहीं, रोज । आप नाहे मुझसे मिलना पसन्द न करें, पर एक बार इस छोड़ी पर सिर को झुका ही जाऊँगा ।

तारा ने भी मुसकिराकर उत्तर दिया उसी वक्त तक जब तक कि मनोरञ्जन की कोई नयी वस्तु नजर न आ जाय ! क्यों ?

भेरे लिए यह मनोरञ्जन का विषय नहीं, जिन्दगी और मौत का सवाल है । हाँ, तुम इसे बिनोद ममझ सकती हों ; मगर कोई परवा नहीं । तुम्हारे मनोरञ्जन के लिए यदि मेरे प्राण भी निकल जायें, तो मैं अपना जीवन सफल समझूँगा ।

दोनों तरफ से इस प्रीति को निभाने के नादे हुए, फिर दोनों ने नाश्ता किया आर कल भाज का न्याता दंकर कुँवर साहब बिदा हुए ।

(४)

एक महीना गुजर गया, कुँवर साहब दिन में कई-कई बार आते । उन्हें एक ज्ञान का विशेष भी असहा था । कभी दोनों बज्रे पर दरिया का सैर करते, कभी हरी-हरी धास पर पाकों में बैठे बाँते करते, कभी गाना-बजाना होता, नित्य नये प्रांग्राम बनते थे । सारे शहर में मशहूर था कि तारावाई ने कुँवर साहब को फौस लिया और दोनों हाथों से सम्पत्ति लूट रही है । पर तारा के लिए कुँवर साहब का प्रेम ही एक ऐसी सम्पत्ति थी, जिसके सामने दुनिया-भर की दौलत हेच थी । उन्हें अपने सामने देखकर उसे किसी वस्तु की इच्छा न होती थी ।

मगर एक महीने तक इस प्रेम के बजार में घूमने पर भी तारा को वह वस्तु न मिली, जिसके लिये उसकी आत्मा लोकुप हो रही थी । वह कुँवर साहब से प्रेम की, अपार और अतुल प्रेम की, सच्चे और निष्कपट प्रेम की बाँते रोज मुनती थी; पर उसमें 'विवाह' का शब्द न आने पाता था, मानों व्यासे को

बाजार में पानी छोड़कर और सब कुछ मिलता हो । ऐसे प्यासे को पानी के सिवा और विस चीज से तृप्ति हो सकती है ? प्यास बुझने के बाद, समझ है, और चीजों की तरफ उसकी रुचि हो ; पर प्यासे के लिए तो पानी सब से मूल्यवान् पदार्थ है । वह जानती थी कि कुँवर साहब उसके इशारे पर प्राण तक दे देंगे, लेकिन विवाह की बात क्यों उनकी जबान में नहीं निकलती ? क्या इस विषय का कोई पत्र लालखन्नर अपना आशय कह देना असमझ था ? फिर क्या वह उसे केवल विनोद की वस्तु बनाकर रखना चाहते हैं ? यह अपमान उससे न सहा जायगा । कुँवर के एक इशारे पर वह आग में कूद सकती थी, पर यह अपगान उसके लिए असद्य था । किसी शाकीन रईस के साथ वह इससे कुछ दिन पहले शायद एक-दो महीने रह जाती और उसे नोच-खसोटकर अपनी राह लेती । अन्तु प्रेम का बदला प्रेम है, कुँवर साहब के साथ वह यह निर्लंब जीवन न व्यतीत कर सकती थी ।

उधर कुँवर साहब के भाई-बन्द भी गार्फ़िल न थे, वे किसी भाँति उन्हें ताराबाई के पंत से छुड़ाना चाहते थे । वहाँ कुँवर साहब का विवाह ठीक कर देना ही एक ऐंगा उपाय था, जिससे सफल होने की आशा थी और यही उन लोगों ने किया । उन्हें यह भय तो न या कि कुँवर साहब इध ऐवरेस से विवाह करेंगे । हो, यह भय अवश्य था कि कहीं ग्रामीण का कोई हिस्सा उसके नाम कर दें, या उसके आने वाले बच्चों का रियासत का मालक बना दें । कुँवर साहब पर चारों ओर में टबाव पढ़ने लगे । यहों तक कि योरोपियन अधिकारियों ने भी उन्हें विवाह कर लेने की सलाह दी । उस दिन सन्ध्या-समय कुँवर साहब ने ताराबाई के पास जाकर कहा - तारा, देखो तुम्हें एक बात कहता हूँ, इनकारा न करना । तारा का हृत्य उछलने लगा । बोली—कहिए, क्या बात है ? ऐसी कंदन वस्तु है, जिस आपकी भेट करके मैं अपने को धन्य न समझूँ !

बात मूँह से निकलने की देर थी । तारा ने स्वीकार कर लिया और हर्षोन्माद की दशा में राती हुई कुँवर साहब के पैरों पर गर पड़ी ।

(५)

एक दूण के बाद तारा ने कहा— मैं तो निराश हो चली थी । आप ने बड़ी लम्बी परीक्षा ली ।

कुँवर साहब ने जवान दातों-तले दबायी, मानो कोई अनुचित बात सुन गी हो ।

‘यह बात नहीं है, तारा ! अगर मुझे विश्वास होता कि तुम मेरी याचना स्वीकार कर लोगी, तो कदाचित् पहले ही दिन मैंने भिन्ना के लिए हाथ फैजाया होता, पर मैं अपने को तुम्हारे योग्य नहीं पाता था । तुम सदगुणों की खान हो, और मैं……। मैं जो कुछ हूँ, वह तुम जानती ही है । मैंने निरचय कर लिया था कि उम्र-भर तुम्हारी उपासना करता रहूँगा । शायद कभी प्रसन्न होकर तुम मुझे बिना माँगे ही वरदान दे दो । बस, यही मेरी आभिलापा थी । मुझमें अगर कोई गुण है, तो यही कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ । जब तुम माहित्य या संगीत या धर्म पर अपने विचार प्रकट करने लगती हो, तो मैं दंग रह जाता हूँ और अपनी ज़ुदाता पर लजिजत हो जाता हूँ । तुम मेरे लिए सांसारिक नहीं, स्वर्गीय हो । मुझे आश्चर्य यही है कि इस समय मैं मारे खुशी के पागल क्यों नहीं हो जाता ।’

कुँवर साहब देर तक अपने दिल की बातें कहते रहे । उसकी वाणी कभी इतनी प्रगल्भ न हुई थी ।

तारा सिर मुक्काये मुनती थो, पर आनन्द की जगह उसके मुख पर एक प्रकार का द्वाम—ज़ज़ा से भिना हुआ—अंकेत हा रहा था । यह पुक्ष इतना सरल दृश्य, इतना निष्कर्ष है ? इतना पिरीत, इतना उदार !

सहसा कुँवर साहब ने पूछा—तो मेरे भाय किस दिन उदय होगे, तारा ? दया करके बहुत दिनों के लिए न यालना ।

तारा ने कुँवर साहब का सरलता से परास्त हाकर चिन्तित स्वर में कहा—कानून का क्या कांजेणा ? कुँवर जाहू ने उन्नता से उतर देगा—इस विश्व में तुम निश्चन्त रहा तारा, मैंन बकोला से पूछ लिया है । एक कानून ऐसा है, जिसके अनुसार हम आर तुन एह प्रेन-सूत्र में बव सकते हैं । उंसे सिवेल-मैरिज कहते हैं । बस, आज ही के दिन वह शुभ मुहूर्त आयेगा, क्यों ?

तारा सिर झुकाये रही । कुछ बोल न सकी ।

‘मैं प्रातःकाल आ जाऊँगा । तैयार रहना ।’

तारा उस भुकाये ही रहा । मुँह से एक शब्द न निकला ।

कुंवर माहब चले गये, पर तारा वहीं मूर्ति की भाँति बैठी रही । पुरुषों के हृदय से क्रीड़ा करनेवाली चतुर नारी क्यों इतनी विमूढ़ हो गयी है !

(६)

विवाह का एक दिन और बाकी है । तारा को चारों ओर से बधाइयों मिल रही हैं । शिष्टर के सभी स्त्री-पुरुषों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार उसे अच्छे-अच्छे उपहार दिये हैं, कुँवर साहब ने भी आभूरणी में सजा हुआ एक सिंगारदान भेट किया है, उसके दां-नार अन्तरंग मिठाए ने भाँति-भाँति के सौगत भेजे हैं; पर तारा के मुन्द्र मुख पर हृप की रेता भी नहीं नजर आती । वह जुब्ब और उदास है । उसके मन में चार दिनों से निरन्तर यही प्रश्न उठ रहा है—क्या कुँवर के साथ वह विश्वासघात करें ? जिस प्रेम के देवता ने उसके लिए अपने कुल-मर्यादा का निलाङ्गाल दे दी, अपने बन्धुजनों से नाता तोड़ा, जिसका हृदय हिमकण के समान निष्कलंक है, पर्वत के समान विशाल, उसी से वह कपट करे ! नहीं, वह इतनों नीचता नहीं कर सकती । अपने जीवन में उसने कृतने ही युक्तों से प्रेम का आभनन् किया था, कृतने ही प्रभ में नतवालों को वह सज्ज बाग दिखा दिया था : पर कभी उसके मन में ऐसी दुःखधा न हुई थी, कभी उसके हृदय ने उसका निरत्कार न किया था । क्या इसका कारण इसके संयोग कुछ और था एक ऐसा अनुराग उसे आँर कहीं न मिला था ?

यथा वह कुंवर माहब का जीवन सुखी बना सकती है ? हों, अवश्य । इस विषय में उसे लेशमात्र भी सन्देह नहीं था । भाँक के लिए ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो असाध्य है ; पर क्या वह प्रकृति को धाला दे सकती है । दलते हुए सूर्य में मध्याह्न वा-सा प्रकाश हो सकता है ? असम्भव । वह स्फूर्ति, वह चपलता, वह विनोद, वह मगल द्युर्लभ, वह तल्लीनता, वह त्याग, वह आत्मविश्वास वह वहों से लायेंगी, जिसके साम्मश्रण को योग्य बन वहते हैं ? नहीं, वह कितना ही चाहे, पर कुँवर माहब के जीवन को सुखी नहीं बना सकती । बूढ़ा बैल कभी ज्वान बक्कड़ ये साथ नहीं चल सकता ।

आह ! उसने यह नौबत ही क्यों आने दी ? उसने क्यों कृत्रिम साधनों से, बनावटी सिंगार से कुँवर को घोस्ते में डाला ? अब इतना सब कुछ हो जाने पर

वह किस मुँह से कहेगी कि मैं रँगी हुई गुड़ियाँ हूँ, जगानी मुफ्त से करकी बिदा हो चुकी, अब केवल उसका पदचिह्न रह गया है।

रात के बारह बज गये थे। तारा मेज के सभने इन्हीं चिन्ताओं में मग्बैठी हुई थी। मेज पर उपहारों के ढेर लगे हुए थे; पर वह किसी चीज की और आँख उठाकर भी न देखती थी। अभी चार दिन गहने वह इन्हीं चीजों पर प्राण देती थी, उमे हमेशा ऐसी चीजों की त नाश रहती थी, जो काल के चिह्नों का मिटा सकें, पर अब उन्हीं चीजों से उसे धृणा हा रही है। प्रेम सत्य है—और सत्य और मिथ्या, दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

तारा ने सोचा—क्यों न यहाँ से कही भाग जाय? हिमोंसा जाह चली जाय, जहाँ कोई उसे जानता भी न हो। कुछ दिनों के बाद जब कुँवर का विवाह हो जाय, तो वह फिर आकर उनसे मिले और वह भारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाये। इस समय कुँवर पर वडावान-सा होगा—हाय, न-जाने उनकी क्या दशा होगी; पर उसके लिए इसके सिवा आंर कोई भाग नहीं है। अब उनके दिन रो-टाकर कटेंगे, लेकिन उसे कितना ही दुःख क्यों न हो, वह अगले प्रिय-तम के साथ छल नहीं कर भकती। उसके लिए इस स्वर्गीय प्रेम की स्मृति, इसकी वेदना ही बहुत है। इसने अधिक उसका आंधकार नहीं।

दाई ने आकर कहा—बाईजी, चलें, कुछ वाड़ा-सा माजन कर लीजिए, अब तो बारह बज गये।

तारा ने कहा—नहीं, जरा भी भूल नहीं है। तुम जारूर आ ल।

दाई—देरिखिए, मुझे भूल न जाइएगा। मैं भी आपके भाथ चलूँगी।

तारा—अच्छे-अच्छे करड़े बनवा रखे हैं न?

दाई—अरे बाईजी, मुझे अच्छे करड़े लेकर क्या करना है? आप अपना काई उतारा दे दीजिएगा।

दाई चली गयी। तारा ने बड़ों की ओर देखा। सचमुच बारह बज गये थे। केवल छुँटे और हैं। प्रातःकाल कुँवर साहब उसे चिवाह-मन्दिर में ले जाने के लिए आ जायेंगे। हाय! भगवान्, जिस पदार्थ से तुमने हनने दिनों तक उसे बंचित रखा, वह आज क्यों सामने लाये? क्या यह भी तुम्हारी कीजा है?

तारा ने एक सफेद साड़ी पहन ली। सारे आमूषण उतारकर रख दिये।

गर्म पानी मौजूद था। साबुन और पानी से मँह धोया और आईने के समुख जाकर खड़ी हो गयी—कहाँ थी वह छुवि, वह ज्योति : जो आँखों को लुभा लेती थी ! रूप वही था, पर कान्ति कहाँ ? क्या अब भी वह यौवन का स्वर्णम भर सकती है ?

तारा को अब वहाँ एक दण भी और रहना कठिन हो गया। मेज पर फैले हुए आभूषण और विलास की सामग्रियाँ मानो उसे काटने लगीं। यह कृत्रिम जीवन असद्य हो उठा, खस की यटियाँ और विजली के पंखों से सजा हुआ शीतल भवन उसे भट्ठी के समान तपाने लगा।

उसने सोचा—कहाँ भागकर जाऊँ। रेल से भागती हूँ, तो भागने न पाऊँगी। सुबेरे ही कुर्बार साहब के आदभी हूँड़ेगे और चारों तरफ मेरी तलाश होने लगेगी। वह ऐसे राते से जायगी, जिथर किसी का खयाल भी न जाय।

तारा का दृदय इस समय गव मे छुलका पड़ता था। वह दुःखी न थी, निराश न थी। वह फिर कुर्बार साहब से मिलेगी, किन्तु वह निस्त्वार्थ संशोग होगा। वह प्रेम के बगाने हुए, कर्त्तव्य-मार्ग पर चल रही है, फिर दुःख क्यों हो अँर निराशा क्यों ही ?

सहसा उसे खयाल आया—ऐसा न हो, कुर्बार साहब उसे वहाँ न पाकर शोकर्दहलता वी दशा में कोई अनर्थ कर दैठे। इस कल्पना से उसके रोशटे लड़े हो गये। एक दृग्गुण ये लिए उसका मन कानून हो उठा। फिर वह मेज पर बा बैठी, और यह पन खिलने लगी—

‘प्रियतम, मुझे भ्रमा वरना। मैं अपने को तुम्हारो दापी बनने के योग्य नहीं पाती। तुमने मुझे प्रेम का वह स्वरूप दिला दिया, जिसकी इस जीवन में मैं अश्वा न बर सूकती थी। मेरे लिए इतना ही बहुत है। मैं जब तक जीऊँगी, तुम्हारे प्रेम में नम्र रहूँगी। मुझे ऐसा जान न दरहा है कि प्रेम की स्मृति में प्रेम के भोग रो बहुँ अधिक माधुर्य आय आनन्द है। मैं फिर आऊँगी। फिर तुम्हारे दशन परसँगी; लेकिन उसी दशा में जब तुम विवाह कर लोगे। यही मेरे लाने की शर्त है। मेरे प्राणों के प्राण, मुझसे नाराज न होना। ये आभूषण, जो तुमने मेरे किए, मेरे थे, अपनी ओर से नवबधू के लिए छोड़ जाती हूँ। बेदल वह मोहितः का हार, जो तुम्हारे प्रेम का पहला उपहार है, अपने साथ

लिए जाती हूँ। तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, मेरी तलाश न करना। मैं तुम्हारी हूँ, और सदा तुम्हारी रहूँगी...
....।

तुम्हारी,
तारा'

यह पत्र लिखकर तारा ने मेज पर रख दिया, मोतियों का हार गले में डाला और बाहर निकल आयी। यिएश्र हान मे संगीत की ध्वनि आ रही थी। एक क्षण के लिए उसके पैर बैंध गये। पन्छइ वर्षों का पुराना सम्बन्ध आज दूर जा रहा था। महसा उसने मैनेजर हो आते देखा। उसका कलेज धक्क से हो गया। वह बड़ी तेजो से लपककर दीवार की आड़ में लट्ठी हो गयी। ज्योही मैनेजर निकल गया, वह हाते के बाहर आया और कुछ दूर गलियों में चलने के बाद उसने गंगा का रास्ता पकड़ा।

गंगा-नट पर सब्नाया द्याया हुआ था। दग-पॉन्ट साधु-वैरागी धूनियों के सामने लेटे थे। दस-पाँच बात्री कम्बल जमीन पर बिक्काये सो रहे थे। गंगा किसी विशाल सर्प की भाँति रेंगती नली जाती था। एक छांटी-सी नौका किनारे पर लगी हुई थी। मझाह नौका में बैठा हुआ था।

तारा ने मझाह को पुकारा—ओ माँझी, उस पार नाव ले चलेगा ?

माँझी ने जवाब दिया—इतनी रात गये नाव न जाई।

मगर दूनी मजदूरी की बात सुनकर उसने ढाढ़ उठाया और नाव को बोलता हुआ बोला—सुरकार उस पार कहाँ जैदँ ?

‘उस पार एक गाँव में जाना है।’

‘मुदा इतनी रात गये कौनों सत्तारी-सिक्कारी न मिली।’

‘कोई हर्ज नहीं, तुम मुझे उस पार पहुँचा दो।’

माँझी ने नाव लाल दी। तारा उस पर जा बैठी, और नौका मन्द गति में चलने लगी, मानो जीव स्वप्न-साम्राज्य में विचर रहा हो।

इसी समय एकादशी का चौंद, पृथ्वी से उस पार, अपनी उज्ज्वल नौका खेता हुआ निकला और व्योम-सागर को पार करने लगा।

ईश्वरीय न्याय

(१)

कानपुर जिले में परिषिक्त भृगुदत्त नामक एक बड़े जर्मांदार थे। मंशा सत्यनारायण उनके कार्टिन्दा थे। वह बड़े स्वामिभक्त और सद्वरित्र ननुव्य थे। लाखों रुपये की तहसील और हजारों मन अनाज का लेन-देन उनके हाथ में था; पर कभी उनकी नीयत डब्बोंडाल न होती। उनके मुप्रबन्ध से रियासत दिनोंदिन उत्त्राति करती जाती थी। ऐसे कर्तव्यपरायण सेवक का जितना सम्भान होना चाहए, उससे अधिक ही होता था। दुख-मुख के प्रत्येक अवसर पर परिषिक्तजी उनके साथ बड़ी उदारता से पेश आते। धीरंधीरे मुंशीजी का विश्वास इतना बढ़ा कि परिषिक्तजी ने हिन्दुबांकताब का समझना भी छोड़ दिया। सम्भव है, उनसे आजीवन इसी तरह अनभ जाती, पर भावी प्रबल है। प्रयाग में कुम्भ लगा, तो पांचिंडतजी भी रनान करने गये। वहाँ से लौटकर फिर वे घर न आये। मालूम नहीं, वक्सी बड़े में पिसल पड़े या कोई जल-जन्तु उन्हें खांच ले गया, उनका फिर कुछ पता ही न नला। अब मंशी सत्यनारायण के आधकार और भी बढ़े। एक हतभागिनी विधवा और दो छांटे-छांटे बच्चों के सिना परिषिक्तजी के घर में और कोई न था। अन्योंष्टकिया में निवृत होकर एक दिन शोकातुर परिषिक्ताइन ने उन्हें तुलाया और रोकर कहा—लाला, परिषिक्तजी हमें भेंझदार में छाड़कर मुरेपुर को सिधार गये, अब यह नैया तुम्हीं पार लगाओगे तो लग सकती हैं। यह सब खेती तुम्हारी लगायी हुई है, इससे तुम्हारे ही ऊपर छांटी हूँ। ये तुम्हारे बच्चे हैं, इन्हें अपनाओ। जब तक मालिक जिये, तुम्हें अपना भाई ससभते रहें। मुझे विश्वास है कि तुम उसी तरह इस भार को सँभाले रहोगे।

सत्यनारायण ने रोते हुए जवाब दिया—भाभी, भैया क्या उठ गये, मेरे तो भास्य ही फूट गये, नहीं तो मुझे आदमी बना देते। मैं उन्हीं का नमक खाकर जिया हूँ और उन्हीं की चाकरी में मरँगा भी। आप धीरज रखें। किसी

नकार की बिन्ता न करें। मैं जीते-जी आपकी सेवा से पूँह न मोड़ूँगा। आप चेवल हतना कीजिएगा कि मैं जिस किसी की शिकायत करूँ, उसे डॉट दीजिएगा, नहीं तो ये लोग सिर चढ़ जायेगे।

(२)

इस घटना के बाद कई वर्षों तक मंशुजी ने रियासत को संभाला। वह अपने काम में बड़े कुशल थे। कभी एक कौदी का भी बल नहीं पड़ा। सारे जिले में उनका सम्मान होने लगा। लोग परिणतजी को भूल-गा गये। दरबारों और कर्मठियों में वे सम्मिलित होते, जिले के आंधकारी उन्हीं को जर्मीदार समझते। अन्य रईसों में भी उनका आदर था; पर मानव्रृद्धि महँगी वरतु है और भानकुँवरि, अन्य ख्यातियों के सदृश पैसे को खूब पकड़ता। वह मनुष्य की मनोवृत्तियों से परिचित न थी। परिणतजी हमेशा लालाजी वां इनाम-इकराम देने रहते थे। वे जानते थे कि जान के बाद ईनाम का नुसरा स्तम्भ अपनी मुट्ठा है। इसके सिया वे खुद भी कभी कागजा की जाँच कर लिया करते थे। नाम मात्र ही को मही, पर इस निगरानी का डर जरूर बना रहता था; क्योंकि ईमान का सबसे बड़ा शत्रु अवमर है। भानकुँवर इन बानों को जानती न थी। अतएव अवसर नथा धनाभाव-जैसे प्रबल शत्रुओं, पंजे में पड़कर मुशी जी का ईमान कैसे बेदाग बचता?

कानपुर शहर से मला हुआ, श्रीकंगण के किनारे, एक बहुत आबाद और उपजाऊ गोव था। परिणतजी इस गोव को लेकर नदी-किनारे पक्का घाट पन्दिर बाग, मकान आदि बनवाना चाहते थे; पर उनकी यह कामना सफल न हो सकी। संयोग से अब यह गोव बिकने लगा। उनके जर्मीदार एक ठाकुर साहब थे। किसी फौजदारी के मामले में फँसे हुये थे। मुकुदमा लड़ने के लिए रुपये की चाह थी। मुंशीजी ने कच्चरी में यह समाचार सुना। चटपट मोल-तोल हुआ। दोनों तरफ गरज थी। सौदा पट्टने में देर न लगी; बैनामा लिखा गया। रजिस्ट्री हुई। रुपये मौजूद न थे, पर शहर में साल थीं। एक महाजन के यहाँ से तीस हजार रुपये मँगवाये गये और ठाकुर साहब को नजर किये गये। हाँ, काम-काज की आसानी के लगाल से यह सब लिखा-पढ़ी मुंशीजी ने अपने ही नाम की; क्योंकि मालिक के लड़के अभी नाबालिक थे। उनके नाम से लेने में

बहुत भँझड होती और विज्ञप्ति होने से शिकार हाथ से निकल जाता। मुंशीजी वैनामा लिए, असीम आनन्द में मग्न भानुकुँवरि के पास आये। पर्दा कराया और यह गुम्ब-समाचार मुनाया। भानुकुँवरि ने सबल नेत्रों से उनको धन्यवाद दिया। पणिडतजी के नाम पर मन्दिर और घाट बनवाने का इरादा पक्का हो गया।

मुंशीजी दूसरे ही दिन उस गाँव में आये। आसामी नजराने लेकर नये स्वामी के स्वागत को हाजिर हुए। शहर के रईसों की दावत हुई। लोगों ने नावों पर बैठकर गंगा की खूब सैर की। मन्दिर आदि बनवाने के लिए आबादी से हटकर एक रमणीक स्थान चुना गया।

(३)

यथापि इस गाँव को अग्रसे नाम में लेने समय मुंशीजी के मन में कपट का भाव न था, तथापि दो-चार दिन में ही उसका श्रेष्ठुर जम गया और धीरेधीरे बढ़ने लगा। मुंशीजी इस गाँव के आय-व्यय का हिसाब अलग रखते और अपनी स्वामिनी वो उसका व्योरा मग्नाने की जरूरत न समझते। भानुकुँवरि इन बातों में दब्ल देना उचित न समझती थी; पर दूसरे कारिन्दां से सब बातें मुन-मनकर उसे शंका होती थी कि कहीं मुंशीजी दगा तो न देंगे। अरने मन का भाव मुंशीजी से क्लिगानी थी, इम ख्याल भ हि कहीं कारिन्दां ने उन्हें हानि पहुँचाने के लिए, यह पद्यन्त्र न रचा हो।

इस तरह कई साल गुजर गये। अब उस कपट के श्रेष्ठुर ने वृत्त का रूप धारण किया। भानुकुँवरि को मुंशीजी के उस मार्ग के लक्षण दिखायी देने लगे। उधर मुंशीजी के मन ने कानून से नीति पर विजय पायी, उन्होंने अपने मन में फैसला किया कि गांव मेरा है। हाँ, मैं भानुकुँवरि का तीस हजार का छारणी अवश्य हूँ। वे बहुत करेंगी तो अपने रूपये ले लेंगी और क्या कर सकती हैं? मगर दोनों तरफ यह आग अन्दर ही अन्दर नुलगती रही। मुंशीजी शब्द-सर्जित हाँकर आक्रमण के इन्तजार में ये और भानुकुँवरि इसके लिए अवसर ढूँढ़ रही थी। एक दिन उपने साहस करक मुंशीजी को अन्दर बुलाया और कहा—लाजाजी, 'वरगदा' के मन्दिर का काम कब से लगवाइएगा? उसे लिये आठ साल हो गये, अब काम लग जाय तो अच्छा हो। जिन्दगी का कौन ठिकाना है, जो काम करना है, उसे कर ही डालना चाहिए।

इस ढंग से इस विषय को उठाकर भानुकुंवरि ने आपनी चतुराई का अच्छा परिचय दिया। मुंशीजी भी दिल में इसके कायल हो गये। जरा सोचकर बोले— इरादा तो मेरा कई बार हुआ, पर मौके की जमीन नहीं मिलती। गंगा-नदी की जमीन अत्रासियों के जोत में है और वे किसी तरह छोड़ने पर राबी नहीं।

भानुकुंवरि—यह बात तो आज मुझे मालूम हुई है। आठ साल हुए, इस गाँव के विषय में आपने कभी भूलकर नहीं तो नचर्च नहीं की। मालूम नहीं, कितनी तहसील है, क्या मुनाफा है, कैसा गाँव है, कुछ सौर होनी है या नहीं। जो कुछ करते हैं आप ही करते हैं और करंगे। पर मुझे भी तो मालूम होना चाहिए?

मुंशीजी सँभल बैठे। उन्हें मालूम हो गया कि इस नतुर झी से बाजी ले जाना मुश्किल है। गाँव लेना ही है तो अब क्या डर। खुलकर बोले—आपको इसमें कोई सरोकार न था, इसलेए, मैंने व्यर्थ कष्ट देना मुशासिव न समझा।

भानुकुंवरि के हृदय में कुठार-सी लगा। पद्म से निकल आयी और मुशीजी की नरफ तेज आँखों से देख हर बोली—आप यह क्या कहते हैं? आपने गाँव मेरे लिए लिया था या आपने लिए? रुपये मैंने दिये या आपने? उम पर जो खर्च पड़ा, वह मेरा या या आपका? मेरी समझ में नहीं आता कि आप कैसी बातें करते हैं।

मुंशीजी ने सावधानी से जवाब दिया—यह तो आप जानती हैं कि गाँव हमारे नाम से बय हुआ है। रुपया जरूर आपका लगा; पर मैं उसका देनदार हूँ। रहा तहसील-वसूल का खर्च; यह भव मैंने आपने पास से दिया है। उसका हिसाब-किताब, आय-व्यय सब रखता गया हूँ।

भानुकुंवरि ने क्रोध से कॉप्टे हुए कहा—इस कपट का फल आपको अवश्य मिलेगा। आप इस निर्दयता से मेरे बच्चों का गला नहीं काट सकते। मुझे नहीं मालूम था इक आपने हृदय में छुरी छिपा रखी है, नहीं तो यह नीबत ही क्यों आती। लैर, अब से मेरी रोकड़ और बही-खाता आप कुछ न छुएँ। मेरा जो कुछ होगा, ले लूँगी। जाइए, एकान्त में बैठकर, सोचिए। पाप से किसी का भला नहीं होता। तुम समझते होगे कि बालक अनाय हैं, इनकी सम्पत्ति हजम कर लूँगी। इस भूल में न रहना। मैं तुम्हारे घर की हँट तक बिकवा लूँगी।

यह कहकर भानुकुँवरि फिर पद्दे की आङ में आ बैठी और रोने लगी। ख्रियों कोध के बाद किसी-न-किसी बहाने रोया करती हैं। लाला साहब को कोई जबाब न सूझा। वहाँ से उठ आये और दफ्तर जाकर कागज उलट-पलट करने लगे; पर भानुकुँवरि भी उनके पीछे-पीछे दफ्तर में पहुँची और डॉकर बोली—मेरा कोई कागज मत छूना। नहीं तो बुरा होगा। तुम विषैले सौंप हो, मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहती।

मुंशीजी कागजों में कुछ काट-छाँट करना चाहते थे; पर विवश हो गये। खजाने की मुझी निकालकर फेंक दी, बहीं-बाते पटक दिये, किवाह धड़ाकेसे बन्द किये और हवा की तरह सन्न से निकल गये। कपड़ में हाथ तो डाला, पर कपट-मन्त्र न जाना।

दूसरे कार्यस्थानों ने यह कैफियत मुनी, तो फूले न समाये। मुंशीजी के सामने उनकी दाल न गलने पाती थी। भानुकुँवरि के पास आकर वे आग पर टेज छिड़कने लगे। सब लोग इस विषेश में सहमत थे एक मुंशी सत्यनाराण ने विश्वासशात् किया है। मालिकका नमक उनकी हर्दियों से फूट-फूटकर निकलता।

दोनों औंगर से मुकदमेबाजी की तैयारियों होने लगी। एक तरफ न्याय का शरीर या, दूसरी ओर न्याय की आत्मा। प्रकृत का पुष्पसे लड़ने का साहस हुआ।

भानुकुँवरि ने लाला छुकनलाल से पूछा—हमारा वकील कौन है? छुकनलाल ने इधर-उधर झाँककर कहा—वकील गो सेठजी हैं; पर सत्यनाराण ने उन्हें पहले गोँठ रखा होगा। इग मुकदमे के लिए बड़े होंशयार वकील की जरूरत है। मेहरा बाबू को आजकल शूल चल रही है। हाकिम की कलम पकड़ लेते हैं। बालते हैं तो जैसे मोटरकार छूट जाती है। सरकार! और क्या कहें, कई आदमियों को फौसी सं उतार लिया है, उनके सामने कोई वकील जबान तो खाल नहीं सकता। सरकार कहें तो वही कर लिये जायें।

छुकनलाल की अत्युक्ति ने सन्देह पैदा कर दिया। भानुकुँवरि ने कहा—नहीं, पहले सेठजी में पूछ लिया जाय। उसके बाद देखा जायगा। आप जाइए, उन्हें बुला लाइए।

छुकनलाल अपनी तकदीर को ठोकते हुए सेठजी के पास गये। सेठजी परिषद भृगुदत्त के जीवन-काल से ही उनका कानून-सम्बन्धी सब काम किया

करते थे । मुकदमे का हाल सुना तो सज्जाटे में आ गये । सत्यनारायण को वह बड़ा नेकीयत आदमी समझते थे । उनके पतन बड़ा खेद हुआ । उसी तक आये । भानुकुँवरि ने रो-रोकर उनसे अपनी विपत्ति की कथा कही और अपने दोनों लड़कों को उनके मानने लड़ा करके बोली—आप इन अनार्थी की रक्षा कीजिए ! इन्हें मैं आपको मौंपती हूँ ।

सेठजी ने समझते की बात छेड़ी । बोले—आपस की लड़ाई अच्छी नहीं ।
भानुकुँवरि—अन्यायी के साथ लड़ना ही अच्छा है ।
सेठजी—पर हमारा पक्ष निर्बल है ।

भानुकुँवरि फिर पर्दे में निकल आयी और विस्मित होकर थोड़ी—क्या हमारा पक्ष निर्बल है ? दुर्निया जानती है कि गाँव हमारा है । उसे हमसे कीन ले सकता है ? नहीं, मैं सुलह कभी न करूँगा, आप कागजों को देन्हे । मेरे बच्चों की खातर यह कष्ट उठायें । आपका परिश्रम निष्पक्ष न जायगा । सत्यनारायण की नीयत पहले खबाब न थी । देखिए जिस मिती में गाँव लिया गया है, उस मिती में १० हजार का क्या लक्चर दिखाया गया है । अगर उमने अपने नाम उधार लिखा हां । ता देखिए, वार्पिक सूद चुकाया गया या नहीं । ऐसे नर-पिशाच न मैं कभी सुलह न करूँगी ।

सेठजी ने समझ लिया कि इस समय समझाने-मुझाने से कुछ काम न चलेगा । कागजात देन्हे, अभियोग लाने की तैयारियाँ हाने लगीं ।

(४)

मुंशी सत्यनारायणलाल खिसियाये हुए गङ्गा पहुँचे । लड़के ने मिठाई मौंगी । उसे पीटा । छोटी पर इसलिए बरस पड़े कि उमने क्यों लड़के को उनके पास जाने दिया । अपनी बृद्धा माता को डॉटकर कहा—तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जरा लड़के को बहलाओ ? एक तो मैं दिन भर का यका-मैंदा घर आऊँ और फिर लड़के को खेलाऊँ ? मुझे दुनिया में न और कोई काम है, न धनधा । इस तरह घर में बावैला मचाकर बाहर आये, सोचने लगे—मुझसे बड़ी भूल हुई । मैं कैसा मूर्ख हूँ ! और इतने दिन तक मारे कागज-पत्र अपने हाथ में थे । जो चाहता, कर सकता था; पर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहा । आज सिर पर आ पड़ी तो सूझी । मैं चाहता तो बही-खाते सब नये बना सकता

या, जिसमें इस गाँव का और रुपये का जिक्र ही न होता; पर मेरी मूर्खता के कारण घर में आयी हुई लड़मी रुठी जाती है। मुझे क्या मालूम था कि वह चुंडल मुझसे इस तरह पेश आयेगी, कागजों में हाथ तक न लगाने देगी।

हमी उधेड़नुम मं मुंशीजी एकाएक उछल पड़े। एक उपाय सूझ गया— क्यों न कायर्कर्ताओं को मिला लूँ? यथापि मेरी सख्ती के कारण वे सब मुझसे नाराज थे आर इस समय सीधे बात भी न करेंगे, तथापि उनमें ऐसा काई भी नहीं, जो प्रलोभन से भुट्टी में न आ जाय। हाँ, इसमें रुपये पानी की तरह बहाना पढ़गा, पर इनना रुपया आयेगा कहाँ से? हाय दुर्भाग्य! दो-चार दिन पहले चेत गया होना, तो कोई कठनाई न पड़ती। क्या जानता था कि वह डाइन इस तरह ब्रह्म-प्रहार करेगी। बस, अब एक ही उत्तराय है। किसी तरह कागजात गुभ कर दूँ। बड़ा जोखिम का काम है। पर करना ही पढ़गा।

दुष्कामनाओं के सामने एक बार सिर झुकाने पर फिर सँभलना कठिन हो जाता है। पार के अथाह दलदल में जहाँ एक बार पड़े कि। फिर प्रतिक्षण नीचं ही चन जाने ह। मुंशी भत्यनारायण-सा विचारशोल मनुष्य इस समय इस फिक्र में था कि कैप सेंथ लगा पाऊँ।

मुंशीजा ने माना—क्या सेंथ लगाना आसान है? इसके बास्ते कितनी चतुरता। किना साहस, जिनी बुद्धि, किननी वीरता चाहिए! कौन कहता है कि नीरों करना आसान काम है? मैं जो कहीं पकड़ा गया, तो मरने के सिवा आर कोई भारं ही न रहेगा।

बहुत साच्चने-नचारने पर भा मुंशीजी को अपने ऊर ऐसा दुस्साहस कर सकने का अवश्यान न हो सका। हाँ, इसमें नुगम एक दूसरी तदबीर नजर आयी—क्यों न दफ्तर में आग लगा दूँ? एक बातल मिट्टी का तेल और दिया-सलाई की जरूरत है। किसा बदमाश का मिला लूँ; मगर यह क्या मालूम कि वही उसी कमरे में रखी है या नहीं। चुड़ैल ने उसे जरूर अपने पास रख लिया होगा। नहीं, आग लगाना गुनाह बेलज्जत होगा।

बहुत देर मुंशीजी करवटे बदलते रहे। नये-नये मनसूबे सोचते; पर फिर अपने ही तकों से काट देते। वर्षाकाल में बादलों की नयी-नयी सूरतें बनती

और फिर हवा के बेग से बिगड़ जाती है; वही दशा इस समय उनके मनरूपों की हो रही थी।

पर इस मानसिक अशान्ति में भी एक विचार पूर्खरूप से स्थिर था—किसी तरह इन कागजात को अपने हाथ में लाना चाहिए। काम कठिन है—माना! पर हिम्मत न थी, तो रार क्यां मोल ली? क्या २० हजार की जायदाद दाल-भात का कौर है!—चाहे जिस तरह हो, चोर बने बिना काम नहीं चल सकता। आखिर जो लांग चारियाँ करते हैं, वे भी तो मनुष्य ही होते हैं। बस, एक छलांग का काम है। अगर पार हां गये, तो राज करेंगे; मगर पड़े, तो जान से हाथ धोयेंगे।

(५)

रात के दस बज गये। मुन्शी सत्यानारायण कुञ्जियाँ का एक गुच्छा कमर में दबाये घर से बाहर नेकले। द्वार पर योड़ा-सा पुआल रखा हुआ था। उसे देखते ही वे चाँक पड़े। मारं डर के छूता धड़कने लगा। जान पड़ा कि कोइ छिपा नैठा है। कदम रुक गये। पुआल को तरफ ध्यान से देखा। उसमें बिल-कुल हरकत न हुई। तब हम्मत बोधी, आगे बढ़े और मन को समझाने लगे—मैं कैसा बाल्ल हूँ!

अपने द्वार डर कसको डर आर सड़क पर भी मुझे किसका डर है? मैं अपनी राह जाता हूँ! कोइ मेरी तरफ। तरक्की आँख से नहीं देख सकता। हाँ, जब मुझे संघ लागते देख ले—नहीं, पकड़ ले—तब अलबत्ते डरने की बात है। तिस पर भी बचाव युक्त निकल सकती है।

ऋक्स्मात् उन्होंने भानुकुँवरि के एक चपरासी को आते हुए देखा। कलेजा धड़क उटा। लपककर एक अंधेरी गली में छुस गये। बड़ी देर तक वहाँ खड़े रहे। जब वह सिपाही आँखों से ओभल हो गया, तब फिर सड़क पर आये। वह सिपाही आज सुबह तक इनका गुलाम था, उसे उन्होंने कितनी ही बार गालियाँ दी थीं, लातें भी मारी थीं; पर आज उसे देखकर उनके प्राण सूख गये।

उन्होंने फिर तर्क को शरण ली। मैं मानो भेंग जाकर आया॥ हूँ। इस चपरासी से इतना डरा मानो कि वह मुझे देख लेता, पर मेरा कर क्या सकता था? हजारों आदमी रास्ता चल रहे हैं। उन्हीं मैं भी एक हूँ। क्या वह

आन्तर्यामी हैं ? सबकं दृदय का हाल जानता है ? मुझे देख कर वह अद्व से सलाम करता और वहाँ का कुछ हाल भी कहता ; पर मैं उससे ऐसा डरा कि सूरत नक न दिखायी। इस तरह मन को ममभाकर वे आगे बढ़े। सच है, पाप के पञ्चों में फँसा हुआ मन पतझड़ का पता है, जो हवा के जाने से झोंके से गिर पड़ता है।

मुन्शीजी बाजार पहुँचे। आधेकतर दूकानें बंद हो रही थीं। उनमें सौँड़ आर गायं बैठी हुई जुगली कर रही थीं। जबल हलवाइयों की दूकानें खुली थीं और कहींकहीं गजरेवाले हार की हाँक लगाते फिरते थे। सब हलवाई मुन्शीजी को पहचानते थे ; अतएव मुन्शीजी ने भिर मुका लिया। कुछ नाल बदली और लपकते हुए चले। एकाएक उन्हें एक बम्ही आती दिखायी दी। यह सेठ बल्लभ-दास बकील की बम्ही थी। इसमें बैठकर हजारों बार नेटजी के साथ कचहरी गये थे ; पर आज वह बम्ही कालदेव के समान भयंकर मालूम हुई। फौरन एक खाली दूकान पर नढ़ गये। वहाँ विश्राम करने वाले सौँड़ ने समझा, वे मुझे पद्ध्युत करने आगे हैं ! माथा झुकाये कुंकारता हुआ ऊठ बैया; पर इसी बीच में बम्ही निकल गयी और मुन्शीजी की जान-मैं-जान आयी। अबका उन्होंने तर्क का आश्रय न लिया। समझ गये कि इस समय इससे काई लाभ नहीं, खेसियत यह हुई कि बकील ने देखा नहीं। वह एक घाव है। मेरे चेहरे से ताङ जाता।

कुछ विद्वानों का कथन है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाप की ओर होती है, पर यह काग अनुमान-ही-अनुमान है, अनुभव-मिद बात नहीं। सच बात तो यह है कि मनुष्य स्वभावतः पाप-भीम होता है और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पाप में रंग कैमी शरण नहीं है।

एक फलांड्र आंग नलकर मुन्शीजी को एक गली मिली। यह भानकून्हरि के पर का एक रास्ता था। धुंधली-सी लालटेन जल रही थी। जैसा मुन्शीजी ने अनुमान किया था, पहरेदार का पता न था। अस्तबल में चमारों के यहाँ नाच हो रहा था। कई चमारिनें बनाव-सिंगार करके नाच रही थीं। चमार मूदंग बजा-बजाकर गाते थे—

‘नाहीं धरे श्याम, धेरि आये बदरा।

सोवत रहेँ सपन एक देखेँ रामा

खुलि गयी नींद ठरक गये कजरा ।
नाहीं घरे इयाम, घेरि आए बदरा ।'

दोनों पहरेदार वहीं तमाशा देव रहे थे । मंशीजी दबे-पौव लालटेन के पास गये, और जिस तरह बिल्ली चूहे पर भगड़ती है; उसी तरह उन्होंने भगड़कर लालटेन को बुझा दिया । एक पड़ाव पूरा हो गया, पर वे उस कार्य को जितना दुष्कर समझते थे, उतना न जान पड़ा । हृदय कुछ मजबूत हुआ । दफ्तर के बरामदे में पहुँचे और स्लूब बान लगाकर आहट ली । चारों ओर सन्नाड़ा छाया हुआ था । केवल चमारी का कोलाहल मुनाशी देता था । इस समय मुंशीजी के दिल में धड़कन थी, पर सिर धमधम कर रहा था; हाथ-पौव काप रहे थे, माँस बड़े वेग से चल रही थी । शरोर का एक-एक रोम आँख और बान बना हुआ था । वे सजीवता की मूर्ति हो रहे थे । उनमें जितना शौरुप, जितनी चप-लता, जितना साहस, जितनी चेतना, जितनी बुद्धि, जितना औसान था, वे सब इस बक्त सजग और सनेत होकर इच्छा-शिंह की सहायता कर रहे थे ।

दफ्तर के दरवाजे पर वहीं पुराना ताला लगा हुआ था । इनकी कुँड़ी आज बहुत तलाश करके वे बाजार से लाये थे । ताला सुल गया, बिवाङ्गी ने बहुत दबी जबान से प्रतिरोध किया । इस पर किसी ने ध्यान न दिया । मुंशीजी दफ्तर में दाखल हुए । भीतर चिराग जल रहा था । मुंशोजी को देखकर उसने एक दफे सिर हिलाया, मानो उन्हें भीतर आने से रोका ।

मुंशीजी के दैर थर-थर कौप रहे थे । एँड़ियाँ जमीन से उछली पड़ती थीं । पाप का बोझ उन्हें असद्य था ।

पल भर में मुंशोजी ने बहियां का उत्तयानलय । लिखावट उनकी आँखों में तैर रही थी । इतना अवकाश कहों था कि जरूरी कागज, छाँड़ लेते । उन्होंने सारी बंधाया को मसेड़ कर एक गठुर बनाया और चिर पर रखकर तार के समान कमरे के बाहर गिकल आये । उस पाप की गठरी का लादे हुए वह अंधेरी गली से गावब हो गये ।

तंग, अंदेटो, दुर्गन्धरूण कीनड़ से भरी हुई गलियाँ में वे नंगे पौव, स्वार्थ, लोभ और कपट का बोझ लिए चले जाते थे । मानो पापमय आत्मा नरक का नालियों में बही चली जाती थी ।

बहुत दूर तक भटकने के बाद वे गंगा के किनारे पहुँचे। जिस तरह कलु-
षित हृदयों में कहीं-कहीं धर्म का धुँधला प्रकाश रहता है, उसी तरह नदी की
काली सतह पर तारे फिलमिला रहे थे। तट पर कई सातु धूती जमाये पढ़े थे।
ज्ञान की ज्वाला मन की जगह बाहर दहक रही थी। मुंशीजी ने अपना गढ़र
उतारा और नादर से खूब मजबूत बोतकर बलपूर्वक नदी में फेंक दिया। सोती
हुई लहरां में कुछ हलचल हुई और फिर सभाया हो गया।

(६)

मुंशी सत्यनारायणलाल के घर में दो स्त्रियों थीं—माता और पत्नी। वे
दोनों आशाचूना थीं। लम्ब पर भी मुंशीजी को गंगा में डूब मरने या कहीं भाग जाने
की जरूरत न होती थी। न वे बांडा पहनती थीं, न माजे-जूते, न हारमोनियम
पर गा सकती थीं। यहाँ तक कि उन्हें साबुन लगाना भी न आता था। हेयरपिन,
प्रूचेज, जाएट आदि परमावश्यक चीज़ा का ता उन्होंने नाम ही नहीं मुना था।
बहुंगे आत्म-सम्मान जरा भी नहीं था; न सान में आत्म-गौरव का जोश। बहुं
अब तक माम की चुड़िकियों भीयों बहनी की तरह महलेती थी—हा मूर्ख ! दास
को बच्चे के नहलानें-खुलाने, यहो तक एक घर में भाड़ देने से भी बरणा न थी,
मा जानाये ! बहुंगी क्या थी, मिट्टी का लोदा थी। एक पैसे का जरूरत होती
तो सास में लोगना। साराश यह एक दोनों स्त्रियों अपने आधकारों से बेखबर,
अन्यकाम में पड़ी हुँ यशुवत् जीवन व्यतीत करती थी। ऐसी फूहड़ थी कि रोटियों
भी अपने हाथ में बना लेती थीं। कंजस्ती के भारं दालमाट, समोसे कभी बाजार
से न मंगाना। आगर बाल का दूकान की चीजें खायी होती हों उनका मजा
जानती। इद्या गूप्त द्यान्दरपत भी जानती थी। वैद्य-वैद्यी शास-पात झूटा करती।

मुंशीजी ने भी ए पास जाकर कहा—अभ्मा ! अब क्या होगा ? भानु-
कुवार ने मुझे जवाब दे दिया।

माना ने घरवाकर पूछा—जवाब दे दिया ?

मुंशी—हो, बलकुल बेक्ष्यूर !

माता—क्या बात हुई ? भानुकुवार का मिजाज तो ऐसा न था।

मुंशी—बात कुछ न थी। मैंने अपने नाम से जो गौव लिया था, उसे
मैंने अपने आधकार में कर लिया। बल मुझसे और उनसे साफ-साफ बातें हुईं।

मैंने कह दिया कि गाँव मेरा है। मैंने अपने नाम से लिया है, उसमें तुम्हारी कोई इजारा नहीं। बस, बिगड़ गयीं, जो मुँह में आया, बकता रहीं। उसी वक्त मुझे निकाल दिशा और धमकाकर कहा—मैं तुमसे लड़कर अपना गाँव ले लूँगा। अब आज ही उनकी तरफ से मेरे ऊपर मुकदमा दायर होगा; मगर इससे होता क्या है? गाँव मेरा है। उस पर मेरा कब्जा है। एक नहीं, हजार मुकदमे चलायें, डिगरी मेरी होगी।

माता ने बहू को तरफ मर्मांतक दृष्टि में देखा और बाली—क्यों मैंना? वह गाँव लिया था, तब लिया था। अब मुझे ऐसा आवाद और मालदार

मुंशी—लिया था, तब लिया था। अब मुझे ऐसा आवाद और मालदार गाँव नहीं छोड़ा जाता। वह मेरा कुछ नहीं छर सकता। तुम्हें अरपा रुपया भी नहीं ले सकती। डेढ़ सौ गाँव तो हैं। तब भी हवस नहीं भारती।

माता—वेणु, किंतु के घर जादा हाना दे, तो नह उन्हें केन याडे ही देता है? तुमने अपनी नीयत बिगड़ी, यह अच्छा काम नहीं किया। दुनिया तुम्हें क्या कहेगी? और दुनिया चाहे कहे या न कहे, तुम मा भना ऐसा नाहिए कि जिवकी गांद में इतने दिन पले, तिसका इतने दिनों तक नभर खाया, अब उसी से दगा करो? नारायण ने तुम्हें क्या नहीं दिया? मने से न्यांत हो, पहनते हो, वर में नारायण को देश चार पक्का है, बाज़-बद्दों हैं, आर क्या नाहिए? मेरा कहना भाना, इस कलंक का यथा असने नाये न लगाया। यह अप्रजस भत लो। वरकरत अपनो कमाई में हासी है; हरान को कड़ो कर्मी नहीं फलती।

मुंशी—ऊँह! ऐसी बातें बहुत सुन चुका हूँ। दुनिया उत्तर चलने लगे, तो सारे काम बन्द हा जार्ह। मैंने इतने ऐसा इनका सेवा का, मेरी ही बदौलत ऐसे-ऐसे चार-पाँच गाँव बढ़ गये। जब तक परिषदतजी ये, मंत्री नीयत का मान या। मुझे आँख में धूल डालने की जरूरत न थी, वे आर हा मेरी खातिर कर दिया करते थे। उन्हें मेरे आठ साल हो गये; मगर मुसम्मात के एक बीड़े पान की कसम खाता हूँ; मेरी जात से उनकी हजारों रुपये मासिक का बचत होती थी। क्या उनको इतनी भी समझ न थी कि यह बेचारा, जो इतनी ईमानदारी से मेरा काम करता है, इस नफे में कुछ उसे भी मिलना नाहिए? हक कहकर

ब दो, इनाम कहकर दो, किसी तरह दो तो, मगर वे तो समझती थी कि मैंने इसे बीस रुपये महीने पर मोल ले लिया है। मैंने आठ साल तक सब्र किया, अब क्या इसी बीस रुपये में गुलामी करता रहूँ और आपने बच्चों को दूसरों का मुँह लाकर के लिए छोड़ जाऊँ? अब मुझे यह अवसर मिला है। इसे क्यों छोड़ूँ? बर्मीदारी की ल-लसा लिए हुए क्यों मरूँ? जब तक जीऊँगा, खुद खाऊँगा। मेरे पांछे मेरे बच्चे चैन उड़ायेंगे।

माता की आँखों में आँसू भर आये। बाली—बेटा, मैंने तुम्हारे मुँह से देसी बातें बही नहीं मुझी थीं। तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हारे आगे बाल-बच्चे हैं। आग में हाथ न डालो।

बहू ने सास की ओर देखकर कहा—हमको ऐसा धन न चाहिए, हम अपनी दाल-रोटी में मगन हैं।

मंशा—अच्छी बात है, तुम लोग रोटी-दाल खाना, गाढ़ा पहनना, मुझे अब दृश्येन्पूरी की इच्छा है।

माता—यह अधम मुझसे न देखा जायगा। मैं गंगा में छब मरूँगी। पस्ती तुम्हें यह सब कौन्ता बोना है, ता मुझे मायाकं पहुँचा दो, मैं आपने बच्चों का लेकर इश्य घर में रहींगी।

मुंशी ने मुँभलाकर कहा—दूध लोगों की कुदिं तो भौंग खा गयी है। लालों दूध-बर, नाकर रात दिन दूसरों का गला दबा-दबाकर रिश्वतें लेते हैं और लालों दूध-बर, नाकर रात दिन दूसरों का गला दबा-दबाकर रिश्वतें लेते हैं। न उनके बीचा दूध दूत है। न उनको बोनी नहीं क्या जाना, जो मुझी को खा जायगा। मैंने दूध छारा है। दूधर्न उनको बोनी नहीं क्या जाना, जो जो कुछ किया है, उसका दूध छारा है। दूधार नन में जो आये, करो।

प्राची ले दपतर खुला तो कागजान मुब्र गायब थे। मुंशी छुक्कनलाल बहुलहानेरे घर में रथे और नालाबन से पूछा—कागजात आपने उठवा किया है?

भाग्नुकूँवार ने कहा—मुझे वया खबर, जहाँ आने रखे होंगे, वही होंगे। किर दार घर में खलबली पढ़ गयी। पहरेदारों पर मार पड़ने लगी। मानकूँवार का तुरन्त मुंशी सत्यनारायण परसन्देह हुआ, मगर उनकी समझ में

छुकनलाल की सहायता के बिना यह काम होना असम्भव था । पुणेर में राट हुई । एक ओमा नाम निकालने के लिए बुलाया गया । मौलिंगी साइब ने कुर्हा फेंका । ओमा ने बताया, यह किसी पुराने तैरी का काम है । मौलिंगी साइब ने कर्माणा, किसी घर के भेदिये ने यह हरकत की है । शाम तक यह दाङ्धधूर हो । फिर यह सलाह होने लगी कि इन कागजात के बर्ग मुकदमा कैसे चले । पत्थर तो पहले ही से निर्वल था । जो कुछ बल था, वह इसी बही-न्याते का था । अब तो सबूत भी हाय से गये । दावे में कुछ जान ही न रही : मगर भानुकुंडरि ने कहा—बला से हार जायेंगे । हमारी चीज़ काँइ छीन लें, तो हमारा धर्म है कि उससे यथाशक्ति लड़, हारकर तैठ रहना कायरां का काम है । सेड्जो (फॉल) को इस दुर्घटना का समाचार मिला तो उन्होंने भा यही कहा कि अब दावे में जारा भी जान नहीं है । केवल अनुमान और तर्क का भरोसा है । अदालत ने माना तो माना; नहीं तो हार माननी पड़ेगी । पर भानुकुंडरि ने एक न मानी । लखनऊ और इलाहाबाद से दो हांशियार बैरिस्टर बुलाये । मुकदमा गुस्से हो गया ।

सारे शहर में इस मुकदमे की खूब थी । किनने ही गईं को मानुकुंडरि ने सारी बनाया था । मुकदमा शुरू होने के समय हजारों आदमियों की भीड़ हो जाती थी । लोगों के इस विचार का मुख्य कारण यह था कि मानुकुंडरि एक पदे की आड़ में तैठी हुई अदालत की कारवाई देना करती थी ; क्योंकि उसे अब अपने नीकर्ण पर जरा भी विश्वास न था ।

वादी बैरिस्टर ने एक बड़ी मार्पिक वक्तुता दी । उसने सत्यनारायण की पूर्वावस्था का खूब अच्छा चित्र खींचा । उसने दिखलाया कि वे कैसे स्वामिभक्त, कैसे कर्य-कुशल, कैसे कर्म-शील थे; और स्वर्गवासी पण्डित भगुदत्त क्या उन पर पूर्ण विश्वास हो जाना किस नरह स्वभाविक था । इसके बाद उसने सिद्ध किया कि मुंशी सत्यनारायण की आर्थिक अवस्था कभी ऐसी न थी कि वे इतना धन-संचय करते । अन्त में उसने मुंशीजी को स्वार्थपरता, कूटनीति, निष्ठयता और विश्वास-श्रातकता का ऐसा धणोत्पादक चित्र खींचा कि लोग मुंशीजी को गौलियाँ देने लगे । इसके साथ ही उसने पण्डितजी के अनाय बालकों की दशा का बड़ा ही करणोत्पादक वर्णन किया—कैसे शोक और लजा की बात है कि ऐसा चरित्रानु, ऐसा नीति-कुशल मनुष्य इतना गिर जाय कि अपने स्वामी

के अनाय बालकों की गर्दन पर हुरी चलाने में संकोच न करे। मानवन्पतन का ऐसा करण, ऐसा हृदय-विदारक उदाहरण मिलना कठिन है। इस कुटिल कार्य के परिणाम की दृष्टि से इस मनुष्य के पूर्व-पर्याचित सदगुणों का गौरव लुप्त हो जाता है। क्योंकि वे असली भोती नहीं, नकली कॉच के दाने थे, जो केवल विश्वास जमाने के निर्मित दर्शाये गये थे। वह केवल मुन्द्र जाल था, जो एक सरल हृदय और छुल-चुन्द्र ग दूर रहने वाले रईस को फँसाने के लिए फैलाया गया था। डग नरपण का अन्तःकरण कितना अन्धकारमय, कितना कपट-पूर्ण, कितना कठोर है; और इसकी दृष्टिकोणीय ओर आर कितनी अपावन है। अपने शत्रु के साथ दया करना एक बार तो नम्भ है; मगर इस मलिन हृदय मनुष्य ने उग बैठने के माय दगा किए हैं, जिन पर मानव-स्वभाव के अनुमार दया करना उन्नित है ! याह आज हमारे पास वही-न्याय भीजूद होते, अदालत पर सत्यनाराण्य की सन्तान साप्तरूप से प्रकट हो जाती ; पर मुंशीजी के बरतान होंगे ही दफ्तर में उगका लुप्त हा जाना भी अदालत के लिए एक बढ़ा सघृत है।

शहर के कई रुद्धिमाने गवाही दी; पर मुंशी-नुगायी वातें जिरह में उखड़ गयीं। दूसरे दिन फँक मुकदमा पेश हुआ।

प्रगतिवादी के वकील ने द्वयनी वक्तव्य शुरू की। उसमें गंभीर विचारों की अपेक्षा हास्य का आविष्यक था—यह एक विलक्षण न्याय-सिद्धान्त है कि किसी धनाढ़ी भनुः । का गाकर जो कुछ खरीदे, वह उसके स्वामी की नीच समझी जाय। इम रामदान के अनुमार हमारी गवानमेन्ट को अपने कर्मचारियों की भारी सम्पत्ति पर कड़ा कारणेना चाहेंगे ! यह स्वीकार करने में हमको कोई आपत्ति नहीं कि हम इतने रुपयों का प्रबन्ध न कर सकते थे और यह धन हमने स्वामी ही से खरीद लिया; पर हमें चुणा चुकाने का बोई नकाजा न करके वह जायदाद ही मोगी जानी है। यदि हसगत के कागजात दृश्यताये जायें, तो वे साफ बता देंगे। कि मैं सारा ऋण दे चुका। हमारे भित्र ने कहा है कि ऐसी अवस्था में बहिर्यों का गुप्त हो जाना भी अदालत के लिये एक सघृत होना चाहिये। मैं भी उनकी युक्ति का समर्थन करता हूँ। यदि मैं आप से ऋण लेकर अपना विवाह करूँ, तो क्या आप मुझ से मेरी नव-विवाहिता वधु को छीन लेंगे ?

‘हमारे सुयोग्य मित्र ने हमारे ऊपर आनाधों के साथ दगा करने का दोष लगाया है। अगर मुंशी सत्यनारायण की नीयत खराब होती, तो उनके लिए सब से अच्छा अवसर वह था, जब परिडत भ्रगुदत्त का स्वर्गवाम हुआ था। इतने विलंब की क्या जरूरत थी? यदि आप शेर को फँसाकर उसके बच्चे को उसी वक्त नहीं पकड़ लेते, उसे बढ़ने और सबल होने का अवसर देते हैं, तो मैं आपको बुद्धिमान न कहूँगा। यथार्थ बात यह है कि मुंशी सत्यनारायण ने नमक का जो कुछ हक था, वह पूरा कर दिया। आठ वर्ष तक तन-मन संसारी के सन्तान की सेवा की। आज उन्हें अपनी भासुना का जो फल मिल रहा है, वह बहुत ही दुखजनक और हृदय-विदारक है। इसमें भानुकुँवर का दायप नहीं। वे एक गुण-सम्पन्न महिला हैं; मगर अपनी जाति के अवगुण उनमें भी विश्वमान हैं! ईमानदार मनुष्य स्वभावतः स्पष्टभाषी होता है; उसे अपनी बातों में नमक-मिर्च लगाने की जरूरत नहीं होती। यही कारण है कि मुंशीजी के मृदुभाषी मातहतों को उनपर आक्रोप करने का मांका मिल गया। इस दावे की जड़ केवल इतनी ही है, और कुछ नहीं। भानुकुँवरि यहाँ उपास्थित हैं। क्या वे कह सकती हैं कि इस आठ वर्ष की मुद्रत में कभी इस गोव का जिक्र उनके सामने आया? कभी उसके हानि-लाभ, आय-व्यय, लेन-देन की चर्चा उनसे की गयी? मान लीजिए कि मैं गवर्नरेंट का मुलाजिम हूँ। यदि मैं आज दफतर में आकर अपनी पढ़ी के आय-व्यय और अपने दहलुआं के टैक्सों का पचड़ा गाने लगूँ, तो शायद मुझे शांघ हो अपने पद से पृथक् होना पड़े, और सम्भव है, कुछ दिनों तक बरेली की विशाल आतिथिशाला में भी रखा जाऊँ। जिम गाँव से भानुकुँवरि का सरोकार न था, उसकी चर्चा उनसे क्यों की जाती?

इसके बाद बहुत-से गवाह पेश हुए; जिनमें अधिकांश आस-नास के देहांतों के जरीदार थे। उन्होंने बयान किया कि हमने मुंशी सत्यनारायण को असामियों को अपनी दस्तखती रसीदें देते आं और अपने नाम से खजाने में रुपया दाखिल करते देखा है।

इतने में सन्ध्या हो गयी। अदालत ने एक सप्ताह में फैसला सुनाने का हुक्म दिया।

(७)

सत्यनारायण का अब अपनी जीत में कोई सन्देह न था । वादी पक्ष के गवाह भी उखड़ गये थे और बहस भी सचूत से खाली थी । अब इनकी गिनती भी जर्मादारों में होंगी और सम्भव है, वह कुछ दिनों में ईस कहलाने लगेंगे । पर ऐसी-न-किंही कारण से अब वह शहर के गण्य-मान्य पुरुषों से आँखें मिलते शमति थे । उन्हें देखते ही उनका सिर नीचा हो जाता था । वह मन में डरते थे कि वे लोग कहीं इस विषय पर कुछ पूछतात्क्षण्य न कर दें । वह बाजार में निकलते तो दूकानदारों में कुछ कानफूसी होने लगती और लोग उन्हें तिरछी दृष्टि से देखने लगते । अबतक लोग उन्हें विवेकशील और सच्चरित्र मनुष्य समझते थे, शहर के धनी-मानी उन्हें इज्जत की निगाह से देखते और उनका बढ़ा आदर करते थे । यथापि मूँशीजी को अबतक इसने टेझी-निराकृति सुनने का संयोग न पड़ा था, तथापि उनका मन कहता था कि मब्दी बात किसी से छिपी नहीं है । जाहे अदालत से उनकी जीत हो जाय; पर उनकी साथ अब जाती रही । अब उन्हें लोग स्वार्थी, कपटी और दगबाज समझेंगे । दूसरों की बात तो अलग रही, स्वयं उनके घरवाल उनका उपेक्षा करते थे । बृद्धी माता ने तीन दिन में भूँह में पानी नहीं डाला था । ऊँची बार-बार हाथ जोड़कर कहती थी कि अपने प्यारे बालकों पर दया करो । तुरे काम का फल कभी अच्छा नहीं होता ! नहीं तो पहले भुक्तीको विष खिला दो ।

जिस दिन फैसला मुनाया जानेवाला था, प्रातःकाल एक कुँजांडन तरकारियों लेकर आयी और मुंशियाइन से बोली—

‘बहूजी ! हमने बाजार में एक बात सुनी है । तुरा न मानो तो कहूँ ? जिसको देखो, उसके भूँह से यही बात निकलती है कि लाला बाबू ने जालसाजी से परिष्ठताइन का कोई हल्का ले लिया । हमें तो इसपर यकीन नहीं आता । लाला बाबू ने न सँभाला होता, तो अबतक परिष्ठताइन का कहीं पता न लगता ! एक अंगुल जमीन न बचती । इन्हीं ऐसा सरदार या कि सबको सँभाल लिया । तो क्या अब उन्हीं के साथ बढ़ी करेंगे ? अरे बहू ! कोई कुछ साथ लाया है कि ले जायगा ? यही नेकी बढ़ी रह जाती है । तुरे का फल तुरा होता है । आठमी न देखे, पर अल्लाह सब कुछ देखता है ।’

बहूजी पर घड़ों पानी पढ़ गया। जो चाहता था कि धरती कट जाती, तो उसमें समा जाती। खियों स्वभावतः लज्जावती होती है। उनमें आत्माभिमान की मात्रा अधिक होती है। निन्दा-अपमान उनसे सहन नहीं हो सकता है। सिर मुकाये हुए बोली—बूआ ! मैं इन बातों को क्या जानूँ ? मैंने तो आज ही तुम्हारे मुँह से सुनी है। कौन-सी तरकारियाँ हैं ?

मुंशी सत्यनारायण अपने कपरे में लेटे हुए कुँबड़िन की बातें सुन रहे थे, उसके चले जाने के बाद आकर खी से पूछने लगे—यह शैतान की खाला क्या कह रही थी ?

खी ने पति की ओर से मुँह केर लिया और जमीन की ओर ताकते हुए बोली—ख्या तुमने नहीं सुना ? तुम्हारा गुन-गन बर रही थी। तुम्हारे पीछे देखो, किस-किसके मुँह से ये बातें सुननी पड़ती हैं और किस-किससे मुँह लिपाना पड़ता है।

मुंशीजी अपने कपरे में लौट आये। खी को कुछ उत्तर नहीं दिया। उनकी आत्मा लज्जा से परास्त हो गयी। जो मनुष्य सदैव सर्व-सम्मानित रहा हो, जो सदा आत्माभिमान से सिर उठाकर चलता रहा हो, जिसकी मुकांत की सारे शहर में चर्चा होती रही हो, वह कभी सर्वथा लज्जाशूल्य नहीं हो सकता; लज्जा कुपथ की सबसे बड़ी शब्द है। कुवासनाथों के भ्रम में पड़कर मुंशीजी ने समझा था, मैं हस्त काम को ऐसी गुप्त-रीति से पूरा कर ले जाऊँगा कि किसी को कानों-कान खबर न होगी, पर उनका यह मनोरथ सिद्ध न हुआ। बाधाएँ आ खड़ी हुईं। उनके हयाने में उन्हें बड़े दुस्साहस से काम लेना पड़ा; पर यह भी उन्होंने लज्जा से बचने के निमित्त किया। जिसमें यह कोई न कहे कि अपनी स्वामिनी को धोखा दिया। इतना यक्ष करने पर भी वह निन्दा से न बच सके। बाजार की सौदा बेचनेवालियाँ भी अब उनका अपमान करती हैं। कुवासनाथों से दबी हुई लज्जा-शक्ति इस कड़ी ज्योट को सहन न कर सकी। मुंशीजी संचने लंग, अब मुझे धन-सम्पत्ति मिल जायगी, ऐश्वर्यवान् हो जाऊँगा, परन्तु निन्दा से मेरा पीछा न छूटेगा। अदालत का फैसला मुझे लोकनिन्दा से न बचा सकेगा। ऐश्वर्य का फल क्या है ?—मान और मर्यादा। उससे हाथ धो बैठा, तो ऐश्वर्य को लेकर क्या करूँगा ? चित्त की शक्ति खोकर, लोक-लज्जा सहकर, जन समुदाय

में नीच बनकर और अपने पर में कज़ह का बीज बोकर यह सम्पत्ति मेरे किस काम आयेगी ? और यदि वास्तव में कोई न्याय-शक्ति हो और वह मुझे इस कुकूल्य का दरड़ दे, तो मेरे लिए खिलासुव में कालिख लगाकर निकल जाने के और कोई मार्ग न रहेगा । सत्यवादी मनुष्य पर कोई विपत्ति पढ़ती है, तो लोग उसने भाष महानुभूति करते हैं । दुष्टों की विपत्ति लोगों के लिए व्यंग्य की सामग्री बन जाती है । उस अवस्था में ईश्वर अन्यायी ठहराया जाना है; मगर दुष्टों की वर्गीन ईश्वर के न्याय को सिद्ध करती है । परमात्मन ! इस दुर्दशा से कमी न रह मेरा उद्घार करो ! क्यों न जाकर मैं भानुकुवरि के पैरों पर गिर पड़ूँ और विनय करूँ कि यह मुकदमा उठालो ? शोक ! पहले यह बात मुझे क्यों न गूँझी ? अगर कल तक मैं उनके पास चला गया होना, तो बात बन जाती; पर अब क्या हो सकता है । आज तो फैसला मुनाया जायगा ।

मुंशीजी देर तक इसी विचार में पड़े रहे, पर कुछ निश्चय न कर सके तक क्या करे ।

भानुकुवरि को भी विश्वास हो गया कि अब गाँव हाथ से गया । बेचारी हाथमल कर रह गयी । रात-भर उस नीद न आयी, रह-रहकर मुंशी सन्ध्यनारायण पर कोप आता था । हाथ पापी ! ढाल बजाकर मेरा पनास हजार का माल लिए जाता है । और मैं कुछ नहीं कर सकती । आज गल के न्याय करने वाले बिलकुल आँख के अन्धे हैं । जिस बात को सारो दुनियाँ जानती है, उसमें भी उनकी दाष्ठ नहीं पहुँचती । बस, दूसरों की ओँओं गे देखते हैं । कोरे कागजों के गुलाम हैं । न्याय वह है जो ऐंक दूध का दूध, पानी का पानी कर दे; यह नहीं कि खुद ही कागजों के धोखे में आ जाय, युद ही पालवैणिडयों के जाल में फँस जाय । इसी गे तो ऐंक छुनी, करटी, दगाबाज और दुरान्माओं का साहस बढ़ गया है । गंवर, गाँव जाता है तो जाय; लोकन गुणनारायण, तुम तो शहर में कहीं मैंह दिवाने के लायक भी न रहे ।

इस खयाल में भानुकुवरि को कुछ शान्ति हुई । शत्रु की हानि मनुष्य को अपने लाभ में भी अधिक प्रिय होती है, मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा है । तुम हमारा एक गाँव ले गये, नारायण चाहेंगे, तो तुम भी इससे सुख न

पाओगे । तुम आप नरक की आग में जलोगे, तुम्हारे घर में कोई दिया जाने वाला न रह जायगा ।

फैसले का दिन आ गया । आज इजलास में बड़ी भीड़ थी । ऐसे-ऐसे महानुभाव उपस्थित थे, जो बगुलों की तरह अफसरों की बधाई और बिदाई के अवसरों ही में नजर आया करते हैं । बचीलों और मुखतारों की पलटन भी जमा थी । नियत समय पर जज साहब ने इजलास मुशोभिन किया । वंश्वृत न्याय भवन में सन्नाय छा गया । अहलमद ने संदूक में तजवीज निखाली । लोग उत्सुक होकर एक-एक कदम और आगे विसक गये ।

जज ने फैसला मुनाया—मुद्राई का दावा खारिज । दोनों पक्ष अपना-अपना खर्च सह लें ।

यद्यपि फैसला लोगों के अनुमान के अनुभार ही था, तथापि जज के मुँह से उसे मुनकर लोगों में हल-चल-सी भव गयी । उदासीन भाव से फैसले पर आलोचनाएँ करते हुए लोग धीरे-धीरे कहरे से निकलने लगे ।

एकाएक भानुकुँवरि शूँवट निकाले इजलास पर आकर घट्टी हो गयी । जानेवाले लौट पड़े । जो बाहर निकल गये थे, दौड़कर आ गये और कानूनल पूर्वक भानुकुँवार की तरफ ताकने लगे ।

भानुकुँवरि ने कंपित स्वर में जज से कहा—सरकार, यांद हुकम दें, तो मैं मुन्शीजी से कुछ पूछूँ ।

यद्यपि यह बात नियम के विशद थी, तथापि जज ने दयापूर्वक आज्ञा दे दी ।

तब भानुकुँवरि ने मत्यनारायण की तरफ देखकर कहा—लालाजी, सरकार ने तुम्हारी डिग्री तो कर ही दी । गोय तुम्हें मुचारक रहे; मगर ईमान आदमी का सब कुछ है । ईमान से कह दो, गाँव किसका है ?

हजारों आदमी यह प्रश्न मुनकर कौनूनल में सत्यनारायण की तरफ देखने लगे । मुन्शीजी विचार-सागर में ढूब गये । दृढ़ भूमि में संकल्प और विकल्प में घोर संग्राम होने लगा । हजारों मनुष्यों की आँखें उनकी तरफ जमी हुई थीं । यथार्थ बात अब किसी से छिपो न थी । इतने आदमियों के सामने असत्य बात मुँह से निकल न सकी । लजा से जबान बन्द कर ली—‘मेरा’ कहने में काम बनता था । कोई बात न थी ; किन्तु घोरतम पाप का दंड समाज दे सकता है,

उसके मिलने का पूरा भय था। 'आपका' कहने से काम बिगड़ता था। जीती-जितायी बाजी हाथ से जाती थी; मर्वौकष्ट काम के लिए समाज से जो इनाम मिल सकता है, उसके मिलने की पूरी आशा थी। आशा ने भय को जीत लिया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे ईश्वर ने मुझे अपना मुख उज्ज्वल करने का यह अंतिम अवसर दिया है। मैं अब भी मानव-सम्मान का पात्र बन सकता हूँ। अब भी अपनी आत्मा की रक्षा कर सकता हूँ। उन्होंने आगे बढ़कर भानुकुर्वरि को प्रणाम किया और कौपते हुए स्वर में बोले—आपका !

हजारों मनुष्यों के मुँह से एक गगनस्पर्शी ध्वनि निकली—‘सत्य की जय !’

जज ने खड़े होकर कहा—यह कानून का न्याय नहीं,

ईश्वरीय न्याय

है ! इस कथा न समझिएगा ; यह मुझो वशना है। भानुकुर्वरि और सन्धनारायण अब भी जीवित हैं। मुन्शीजी के इस नैतिक साहस पर लोग मुझ हो गये। मानवीय न्याय पर ईश्वरीय न्याय ने जो चिलकण चिजय पाशी, उसकी चर्चा शहर-मर में मझीनों रहो। भानुहुँगर मृत्योजी के बार गर्भी, उन्हें मनाकर लायीं। फिर अपना सारा कारोबार उन्हें भाँग आँग कुछ दिनों के उपरान्त यह गाँव उन्हीं के नाम हिन्दा कर दिया। मुन्शीजी ने भी उस अपने अधिकार में रखना उचित न समझा, कृप्यार्पण कर दिया। अब उसकी आमदनी दीन-दुखिया और विश्वापियों की सहायता में बच्चे होती हैं।

भ्रमता

(?)

बाबू रामरक्षादास दिल्ली के एक ऐश्वर्यशाली खत्री थे, बहुत ही ठाट-बाट से रहनेवाले। बड़े-बड़े अमीर उनके यहाँ नित्य अते-जाते थे। वे आये हुओं का आदर-सत्कार ऐसे अच्छे दंग से करते थे कि इस बात की धूम सारे मुहल्ले में थी। नित्य उनके दरवाजे पर किसी-न-किसी बहाने से इष्ट-मत्र एकत्र हो जाते, देनिस खेलते, ताश उड़ता, हारमोनियम के मधुर स्वरां से जी बहलाते, चाय-पानी से हृदय प्रकुल्लित करते, अधिक और क्या चाहिए? जाति की ऐसी अमूल्य सेवा कोई क्लोटी बात नहीं है। नीची जातियों के नुधार के निए दिल्ली में एक सोसायटी थी। बाबू साहब उसके सेकेटरी थे, और इस कार्य को असाधारण उत्साह से पूर्ण करते थे। जब उनका बूढ़ा कहार बीमार हुआ और किञ्चियन मिशन के डाक्टरों ने उसकी शुश्रूपा की, जब उसकी विधवा छो ने निर्वाह की कोई आशा न देखकर किञ्चियन-समाज का आश्रय लिया, तब इन दोनों अवसरों पर बाबू साहब ने शोक के रेजल्यूशन्स पास किये। संसार जानता है कि सेकेटरी का काम सभाएँ करना और रेजल्यूशन बनाना है। इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता।

भिस्टर रामरक्षा का जातीय उत्साह यहीं तक भीमाचद न था। वे सामाजिक कुप्रथा और नाया अन्ध-विश्वास के प्रबन्ध शत्रु थे। होली के दिनों में, जब कि मुहल्ले में चमार और कहार शराब से मतवाले होकर फाग गाते और डफ बजाते हुए निकलते, तो उन्हें बड़ा शाक होता। जाति की इस मूर्खता पर उनकी आँखों में आँगू भर आते और वे प्रायः इस कुरीति का निवारण अपने हण्डर से किया करते। उनके हण्डर में जाति-हिन्दै-पेता की उमंग उनकी वक्तुना से भी अधिक थी। यह उन्हीं के प्रशंसनीय प्रयत्न थे, जिन्हने मुख्य हो गी के दिन दिल्ली में हलचल मचा दी, फाग गाने के अपराध में हजारों आदमी पुलिस के पांडे में आ गये। सैकड़ों घरों में मुख्य होली के दिन मुदर्दम कान्सा शांक फैल

गया। इधर उनके दरवाजे पर हजारों पुरुष-स्त्रियों अपना दुखङ्गा रो रही थीं। उधर बाबू माहब के हिंतेगी मित्रगण अपने उदारशोल मित्र के सद्व्यवहार की प्रशंसा करते। बाबू साहब दिन-भर में इतने रंग बदलते थे कि उसपर 'पेरिस' की परियों को भी ईश्या हो सकती थी। कई बैंकों में उनके हिस्से थे। कई दूकानें थीं; किन्तु बाबू साहब को इन्हाँ अवकाश न था कि उनकी कुछ देल-भाल करते। आर्तीश-सत्कार एक पवित्र धर्म है। वे सच्ची देशांहृतियों की उमड़ी से कहा करते थे—आतांग-संघर आदि काल से भारतवर्ष के निवासियों का एक प्रथान और सराहनीय गुण है। अभ्यागतों का आदर-न्ममान करने में हम आदर्तीय हैं। इस इससे संसार में मनुष्य कृत्त्वानें गोप्य हैं! हम सब कुछ खो दें हैं, किन्तु जग दृढ़। हम में यह गुण शेष न रहेगा, वह दिन हिन्दू-जाते के लिए लाभगा, अपमान आर मृत्यु का दृढ़ होगा।

भिस्टर रामरक्षा जातीय आवश्यकनाओं से भी बेपरवाह न थे। वे सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में पूर्णरूप भै याग देते थे। यहाँ तक एक प्रांतिवर्ष दों; बालक कमीन-कमी तीन वर्क्कूताएँ अवश्य तैयार कर लेते। भाषणों की भाषा अत्यन्त उपयुक्त, आंतर्जन्मी और मर्वाड़िन-नुन्दर होती थी। उपर्युक्त जन और इष्टमित्र उनके एक-एक शब्द पर प्रशंसा मूलक शब्दों की ध्वनि प्रकट करते, तालियों बजाते, यद्दों तकाक बाबू साहब का दग्धव्यायाम का क्रम स्थिर रखना काढ़ना हो जाता। दग्धव्यायाम समाप्त होने पर उनके मित्र उन्हें गोद में उठा लेने और आश्वयन-नाका द्वारा रहते—तेरी भाषा में जादू है। नगांश यह एक बाबू साहब था यह जातीय प्रम और उत्तम कविल बनावटी, महृदयता-शूल्य राता फैसानेबल था। यदि उन्होंने किसी सदुशाय में भाग लिया था, तो वह सांभालत कुद्रुम का विरोध था। अपने पिता के पश्चात् व अपनी विधवा माँ से अलग हो गये थे। इस जातीय नवाँ में उनकी छाँ। वरेषप सहायक थी। विधवा माँ अपने बेटे और बहू के साथ नहीं रह सकती था। इससे बहू की स्वाधीनता में विप्र पड़ने से मन दुर्बलता और मर्स्तिष्ठक शाक्तहीन हो जाता है। बहू को जलाना और कुदाना सोम की आदत है। इसलिए बाबू रामरक्षा अपनी माँ से अलग हो गये थे। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने मातृ शृण का विचार करके दस हजार रुपये अपनी माँ के नाम जमा कर दिये थे, कि उसके व्याज से उनका

निर्वाह होता रहे; किन्तु बेटे के इस उत्तम आचरण पर माँ का दिल ऐसा दूरा कि वह दिल्ली छोड़कर अयोध्या जा रही। तब से वहीं रहती है। बाबू साहब कभी-कभी मिसेज रामरत्ना से छिपकर उससे मिलने अयोध्या जाया करते थे, किन्तु वह दिल्ली आने का कभी नाम न लेते। हाँ, यदि कुशलक्षेम की चिट्ठी पहुँचने में कुछ देर हो जाती, तो विवश होकर समानार पूछ लेती थी।

(२)

उसी मुहूले में एक सेठ गिरधारी लाल रहते थे। उनका लाली का लेन-देन था। वे हीरे और रबीं का व्यापार करते थे। बाबू रामरत्ना के दूर के नाते ने साढ़े हांते थे। पुराने ढंग के आदमी थे—प्रातःकाल यमुना-स्नान करनेवाले तथा गाय को अपने हाथों से भाड़ने-पोछनेवाले! उनसे मिस्टर रामरत्ना का स्वभाव न मिलता था; परन्तु जब कभी रुपयों की आवश्यकता होती, तो वे सेठ गिरधारीलाल के यहाँ से बेखटके मैंगा लाया करते थे। आपस का मामला था, येवल चार अंगुल के पत्र पर रुपया मिल जाता था, न कोई दस्तावेज, न स्थाप, न सार्क्यां की आवश्यकता। माझकार लिए दस हजार की आवश्यकता हुई, वह वहाँ से आया। बुड़दाङ्ड के लिए एक आदर्श-लियन घोड़ा डेहु जहार में लिया गया। उसके लिए भी रुपया सेठजी के यहाँ से आया। धीरंधीर कोई बास हजार का मामला हो गया। सेठजी सरल हृदय के आदमी थे। सभभते थे रक्त उसके पाग दूकानें हैं। बैंकों में रुपया है। जब जी चाहेगा, रुपया अमूल कर लेगे; किन्तु जब दोन्तीन वर्ष व्यतीत हो गये और सेठजी के तकाजों की अपेक्षा मिस्टर रामरत्ना की माँग ही का आधिक्य रहा तो गिरधारी लाल को सन्देह हुआ। वह एक दिन रामरत्ना के माकन पर आये और सभ्य-भाव से बोले—माई साहब, मुझे एक हुएड़ी का रुपया देना है, यदि आप मेरा हिसाब कर दें तो बहुत अच्छा हो। यह कहकर हिसाब के कागजात और उनके पत्र दिखलाये। मिस्टर रामरत्ना किसी गार्डन-पार्टी में समिलित होने के लिए तैयार थे। बोले—इस समय ज्ञामा कीजिए; फिर देख लूँगा, जल्दी क्या है!

गिरधारीलाल को बाबू साहब की रुखाई पर कोष आ गया, वे रुष्ट होकर बोले—आपको जल्दी नहीं है, मुझे तो है! दो सौ रुपए मासिक की मेरी हानि

हो रही है ? मिस्टर रामरक्षा ने असन्तोष प्रकट करते हुए वही देखी । पार्टी का समय बहुत करीब था । वे बहुत विनीत भाव से बोले—भाई साहब, मैं वही जल्दी में हूँ । इस समय मेरे ऊपर कृपा कीजिए । मैं कल स्वयं उपस्थित हूँगा ।

सेठजी एक माननीय और धन-सम्पन्न आदमी थे । वे रामरक्षा के इस कुरुचार्यव्यवहार पर जल गये । मैं इनका महाजन हूँ—इनसे धन में, मान में, ऐश्वर्य में, वहाँ हुआ, चाहूँ तो ऐसों को नौकर रख लूँ, इनके दरवाजे पर आऊँ और आदर्शसंवार की जगह उल्टे ऐसा दखा बर्ताव ! वह हाथ बौंधे मेरे सामने न खड़ा रहे; किन्तु क्या मैं पान, इलायची, इत्र आदि से भी सम्मान करने के योग्य नहीं ? वे तिनकर बोले—अच्छा, तो कल हिसाब साक हो जाय ।

रामरक्षा ने अकड़कर उत्तर दिया—इो जायगा ।

रामरक्षा के गौरवशील हृदय पर सेठजी के इस बर्ताव का प्रभाव का कुछ विद-जनक न हुआ । इस काठ के कुदे ने आज मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी । वह मेरा अपमान कर गया । अच्छा, तुम भी इसी दिल्ली में रहते हो और हम भी यहीं हैं । निदान दोनों में गौठ पढ़ गयी । बाबू साहब की तबियत ऐसी गिरी और हृदय में ऐसी चिन्ता उत्पन्न हुई की पार्टी में जाने का ध्यान जाता रहा, वे देर तक इसी उलझन में पड़े रहे । फिर सूर्य उतार दिया और सेवक से बोले—जा, मुनीमजी को बुला लो ? मुनीमजी आए, उनका हिसाब देखा गया, फिर वे को ३१ एस्टाउण देखा, किन्तु ज्यो-ज्यो इस घाटी में उतरते गये, लां-त्यो शंखें बढ़ता गया । बहुत कुछ ट्यॉला, कुछ हाथ न आया । अन्त में निराश हो गया कि न-नुर्मापर पढ़ गये और उन्होंने एक टाँडी नौंगा ले ली । दूसरों का भाल विश्व: किन्तु रूपया बकाया में पड़ा हुआ था । कहे ग्राहकों की दूकानें दूर गईं । और उनपर जो नकद रूपया बकाया था, वह छव गया । कल उसे को आढ़तं से जो गाल मँगाया था, रूपये नुकाने की नियि मिर पर आ पहुँचा और यहाँ रूपया वसूल न हुआ । दूकानों का यह हल, बैंकों का इससे भी तुरा । रात-भर वे इन्हीं चिन्ताओं में करवां बदलते रहे । अब क्या करना नाहिए ? गिरवारीलाल सज्जन पुरुष है । यदि सारा कच्चा हाल उसे मुना दूँ, तो अवश्य मान जायगा; किन्तु यह कष्टप्रद कार्य होगा कैसे ? ज्यो-ज्यो

प्रातःकाल सभीप आता था ; ज्यों-न्यों उनका दिल बैठ जाता था । कन्धे विद्यार्थी को जो दशा परीक्षा के सञ्चिकट आने पर होती है, वही द्वाल इस समय रामरक्षा का था । वे पलंग से न उठे । मुँह-हाथ भी न घोया, खाने को कौन कहे । इतना जानते थे कि दुःख पहने पर कोई किसी का साथी नहीं होता । इसलिए एक आपत्ति से बचने के लिए कई आपत्तियों का बोझा न उठाना पड़े, इस खयाल से मित्रों को इन मामलों की खबर तक न दी । जब दोपहर हो गया और उनकी दशा ज्यों-की-न्यों रही, तो उनका छोटा लड़का बुलाने आया । उसने बाप का हाथ पकड़ कर कहा—लालाजी, आज काने क्यों नहीं तलते ?

रामरक्षा—भूख नहीं है ।

‘क्या काया है ?

‘मन की मिटाई है ।’

‘और क्या काया है ?’

‘मार ।’

‘किसने मारा ?’

‘गिरधारी लाल ने ।’

लड़का रोता हुआ घर में गया और इस मार की चोट से देर तक रोता रहा । अन्त में तश्तरी में रखी हुई दूध की मलाई ने उसकी इस चोट पर मरहम का काम दिया ।

(३)

रोगी को जब जाने की आशा नहीं रहती, तो औषधि छोड़ देता है । मिस्टर रामरक्षा जब इस गुत्थी को न मुलझा सके, तो चादर तान ली और मुँह लपेटकर सो रहे । शाम को एकाएक उठकर सेठजी के यहाँ पहुँचे और कुछ असावधानी से बाले—महाशय, मैं आपका हिसाब नहीं कर सकता ।

सेठजी घबराकर बाले—क्यों ?

रामरक्षा—इसलिए कि मैं इस समय दरिद्रनिहंग हूँ । मेरे पास एक छैड़ी भी नहीं है । आप अपना रुपया जैसे चाहें, बदूल कर लें ।

सेठ—यह आप कैसी बातें कहते हैं ?

रामरक्षा—बहुत सच्ची ।

संठ—दूकानें नहीं हैं ?

रामरक्षा—दूकानें आप मुफ्त ले जाइए ।

संठ—बैंक के हिस्से ?

रामरक्षा—वह कब के उड़ गये ।

संठ—जब यह हाल था, तो आप को उचित नहीं था कि मेरे गले पर
झूरी फेरते ?

रामरक्षा—(अर्थमान से) मैं आपके यहाँ उपदेश सुनने के लिए नहीं
आया हूँ ।

यह कहकर भिस्टर रामरक्षा वहाँ से चल दिये । सेठजी ने तुरन्त नालिश
कर दी । बीस हजार मूल, पौन्च हजार व्याज । डिगरी हो गयी । मकान नीलाम
पर चढ़ा । पन्द्रह हजार की जायदाद पौन्च हजार में निकल गयी । दस हजार
की भाँटर चार हजार में बिकी । सारी सम्पात्त उड़ जाने पर कुल मिलाकर
चाँह हजार से आंधक रकम न रखी हो सकी । सारी गहराई नष्ट हो गयी, तब
भी दस हजार के अणु रह गये । मान-बड़ाँ, धन-दालत सभी मिट्ठी में मिल
गये । बहुत लंज दाढ़ने वाला मनुष्य प्रायः भुँद के बल गिर पड़ता है ।

(४)

इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् दूसरी म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरों का चुनाव
आरम्भ हुआ । इस पद के आंभलापी बोटरों की पूजाएँ करने लगे । दलालों
के भाग्य रदय हुए । सर्मार्तियों मोतियों की तोल बिकने लगी । उम्मेदवार
मेम्बरों के सहायक अपने-अपने मुवांक्ल के गुण-गण करने लगे । चारों ओर
चहल-चहल मच गयी । एक बक्काल महाशय ने भारी सभा में मुवक्किल साहब
के विषय में कहा—

‘मैं जिस बुजुर्ग का पैरोंकार हूँ, वह कोई मामूली आदमी नहीं है । यह
वह शरस है, जिसने फरजन्द अकबर की शादी में पचीस हजार रुपया सिर्फ
रक्स व सरूर में सर्फ़ कर दिया था ।’

उपर्युक्तजनों में प्रशंसा की उच्च-व्यवहार हुई ।

एक दूसरे महाशय ने अपने मुहाल के बाटों के सम्मुख सुविकल्प की प्रशंसा यों की—

‘मैं यह नहीं कह सकता कि आप सेठ गिरधारी लाल को अपना मेम्बर बनाइए। आप अपना भला-बुरा स्वयं समझते हैं, और यह भी नहीं कि सेठजी मेरे द्वारा अपनी प्रशंसा के भूले हों। मेरा निवेदन केवल यही है कि आप जिसे भी मेम्बर बनायें, पहले उसके गुण-दोषों का भली-भौंति परिचय ले लें। दिल्ली में केवल एक मनुष्य है, जो गत २० वर्षों से आपकी सेवा कर रहा है। केवल एक आदमी है, जिसने पानी पहुँचाने और स्वच्छता-प्रबन्धों में हार्दिक धर्म-भाव से सहायता दी है। केवल एक पुरुष है, जिसको भीमान् वायसराय के दरबार में कुर्सी पर बैठने का अधिकार प्राप्त है, और आप सब महाशय उसे जानते भी हैं।’

उपस्थित जनों ने तालियों बजायीं।

सेठ गिरधारीलाल के महल्ले में उनके एक प्रतिबादी थे। नाम था मुंशी फैजुलरहमान खाँ। वडे जमादार और प्रसिद्ध वकील थे। बाबू रामरक्षा ने अपनी दृढ़ता, साहस, बुद्धिमत्ता और मृदु भाषण से मुंशीजो साहब की सेवा करनी आरम्भ की। संठजी को परास्त करने का यह आरूप अवसर हाथ आया। वे रात और दिन इसी धुन में लगे रहते। उनकी भीड़ और जनक बार्ता का प्रभाव उपस्थित जनों पर बहुत ही अच्छा पड़ता। एक बार आपने असाधारण श्रद्धालुमंग में आकर कहा—मैं डंक की चोट पर कहता हूँ कि मुंशी फैजुलरहमान से अधिक योग्य आदमी आपका दिल्ली में न मिल सकेगा। यह वह आदमी है, जिसकी गजलों पर कविजनों में ‘वाह-वाह’ मच जाती है। ऐसे श्रेष्ठ आदमी की सहायता करना मैं अपना जातीय और सामाजिक धर्म समझता हूँ। अत्यन्त शोक का विषय है कि बहुत-से लोग इस जातीय और पवित्र काम को व्यक्तिगत लाभ का साधन बनाते हैं। धन और वस्तु है, श्रीमान् वायसराय के दरबार में प्रतिष्ठित होना और वस्तु, किन्तु सामाजिक सेवा तथा जातीय चाकरों और ही चीज है। वह मनुष्य, जिसका जीवन व्याख्या-प्राप्ति, बैईमानी, कठोरता तथा निर्दयता और मुख-विलास में व्यतीत होता हो, इस सेवा के योग्य कदापि नहीं है।

(५)

संठ गिरधारीलाल इस अन्योक्ति-पूर्ण भाषण का हाल मुनकर कोघ से शाग हो गये । मैं वेईमान हूँ ! व्याज का धन खानेवाला हूँ ! विषयी हूँ : कुशल हुई, जो तुमने मेरा नाम नहीं लिया; किन्तु अब भी तुम मेरे हाथ में हो । मैं अब भी तुम्हें जिस तरह नचाहूँ, नचा सकता हूँ । खुशामदियाँ ने आग पर तेल डाला । इधर रामरक्षा अपने काम में तत्पर रहे । यहाँ तक कि 'वांटिंग-डे' आ पहुँचा । मिस्टर रामरक्षा का उद्योग में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई थी । आज वे बहुत प्रसन्न थे । आज गिरधारीलाल को नीचा दिखाऊँगा, आज उसको जान पढ़ेगा । कि धन संसार के सभी पदार्थों का इकट्ठा नहीं कर सकता । जिस समय कैजुलरहमान के बोट अधिक निकलेंगे और मैं तालियों बजाऊँगा, उस समय गिरधारीलाल का चेहरा देखने योग्य होगा । मुँह का रंग बदल जायगा, हवाइयों उड़ने लगेंगी, आँखें न भिजा सक्तगा । शायद फिर मुझे मुँह न दिखा सके । इन्हीं विचारों में भग रामरक्षा शाम को यानहाल में पहुँचे । उपस्थित जनों ने बड़ी उमंग के साथ उनका स्वागत किया ; योझी देर बाद 'वांटिंग' आरम्भ हुआ । मेम्बरी मिलने की आशा रखनेवाले महानुभाव अपने-अपने भाग्य का अन्तिम फल मुनने के लिए आतुर हो रहे थे । छः बजे चंथरमैन ने कैसला मुनाया । संठजी को हा हा गयी । कैजुलरहमान ने मैदान मार लिया । रामरक्षा ने हाथ के आवेग म यांत्र हवा में उछाल दी । आर स्वयं भी कई बार उछल पड़े । मुहल्ले वालों को अचम्भा हुआ । चौंदनी-चाक से सेठजी को हटाना मेरु को स्थान से उत्थाना था । सेठजी के चंहरे से रामरक्षा को जितनी आशाएँ थीं, वे सब पूरी हो गयीं । उनका रंग फीका पड़ गया था । वे खेद और लज्जा की मूर्ति बने हुए थे । एक वकील साहब ने उनसे सहानुभूत प्रकट करते हुए कहा— 'संठजी, मुझे आपकी हार का बहुत बड़ा शंक है । मैं जानता कि खुशी के बदले रुक्ख रोग, तो कभी यहाँ न आता । मैं तो केवल आपके ख्याल से यहाँ आया था ।' संठजी ने बहुत रोकना चाहा, परन्तु आँखों में आँसू डबडबा ही गये । वे निःस्पृह बनने का व्यथ प्रयत्न करके बोले— 'वकील साहब, मुझे इसकी कुछ चिन्ता नहीं, कौन रियासत निकल गयी ? व्यथ उलझन, चिन्ता तथा भंगट रहती थी, चलो, अच्छा हुआ । गला छूटा । अपने काम में हरज होता था ।

सत्य कहता हूँ, मुझे तो हृदय से प्रसन्नता ही हुई । यह काम तो बेकाम वालों के लिए है, वर न बैठे रहे, यहीं बेगार की । मेरी मूर्खता थी कि मैं इतने । देनों तक आँखें बन्द किये बैठा रहा ।^१ परन्तु सेठजी की मुख्याकृत ने इन विचारों का गमाण्य न दिया । मुखमंडल हृदय का दर्पण है, इसका निश्चय अलबना हो गया ।

किन्तु बाबू रामरक्षा बहुत देर तक इम आनंद का मजा न लूटने पाये और न सेठजी को बदला लेने के लिये बहुत तेर तक प्रतीक्षा करता रही । सभा विसर्जित होते ही जब बाबू रामरक्षा सफलता की उमंग में एंट्रे, मोल्ड पर ताव देते और चारों ओर गर्व की दृष्टि डालते हुए बाहर आये, तो दीवानी के तीन सिपाहियों ने आगे बढ़कर उन्हें गिरफ्तार का वारण्ड दिला दिया । अबकी बाबू रामरक्षा के चेहरे का रंग उतर जाने की, और सेठजी के इस मनोवाङ्मित दृश्य से आनन्द उठाने की बारी थी । गिरधारीलाल ने आनन्द की उमंग में तालियों तो न बजायी, परन्तु मुस्कुराकर मँहूँ फेर लिया । रङ्ग में भंग पड़ गया ।

आज इस विषय के उपलक्ष्य में मुन्शी कैजूलरहमान ने पहले ही से एक बड़े समारोह के साथ गार्डन-पार्टी की तैयारियों की थी । मिस्टर रामरक्षा इसके प्रबन्धकर्ता थे । आज की अपार्टमेंट डिनर स्पॉच उन्होंने बड़े परिश्रम से तैयार की थी ; किन्तु इस वारण्ड ने सारी कामनाओं का सत्यानास कर दिया । यों तो बाबू साहब के भिन्नों में ऐसा कोई भी न था, जो दस हजार रुपये जमानत दे देता; अदा कर देने का तो जिक्र ही क्या ; किन्तु कदाचित् ऐसा होता भी नो सेठजी अपने को भाग्यहीन समझते । दस हजार रुपये और म्युनिसिपैलिटी की प्रतिष्ठित मेम्बरी खाकर उन्हें इस समय यह हर्ष प्राप्त हुआ था ।

मिस्टर रामरक्षा के घर पर ज्यांही यह खबर पहुँची, कुहराम मच गया । उनकी ल्ली पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । जब कुछ होश में आयी तो रोने लगी । और रोने से छुट्टी मिली तो उसने गिरधारीलाल को कोसना आरम्भ किया । देवी-देवता मनाने लगी । उन्हें रिश्वत देने पर तैयार हुई कि ये गिरधारीलाल को किसी प्रकार निगल जायँ । इस बड़े भारी काम में वह गंगा और यमुना सं सहायता माँग रही थी, प्लेग और विसूचिका की खुशामदें कर रही थी कि ये दोनों मिलकर इस गिरधारीलाल को हड्डप ले जायँ ! किन्तु गिरधारी का कोई दोष नहीं । दोष तुम्हारा है । बहुत अच्छा हुआ ! तुम इसी

पूजा के देवता थे । क्या अब दावतें न खिलाओगे ? मैंने तुम्हें कितना समझाया, रोयी, रुठी, बिगड़ी ; किन्तु तुमने एक न सुनी । गिरधारीलाल ने बहुत अच्छा किया । तुम्हें शित्ता तो मिल गयी; किन्तु तुम्हारा भी दोष नहीं । यह सब आग मैंने ही लगायी है । मखमली स्लीपर्ट के बिना मेरे पौंछ ही नहीं उठते थे । बिना जड़ाऊ कड़ों के मुके नींद न आती थी । सेजगाड़ी मेरे ही लिए मँगवायी थी । अँगरेजी पढ़ने के लिए मैम साहबा को मैंने ही रखा । ये सब काँटे मैंने ही बोये हैं ।

मिसेज रामरत्ना बहुत देर तक इन्हीं विचारों में डूबी रही । जब रात-भर करवटें बदलने के बाद वह सरेरे उठी, तो उसके विचार चारों ओर से ठोकरें लाकर कंवल एवं तन्द्र पर जम गये । गिरधारीलाल बड़ा बदमाश और घमण्डी है । मेरा सब कुछ बेकर भी उस संतोष नहीं हुआ । इतना भी इस निर्दयी कसाई ने न देखा गया । भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों ने मिलकर एक रूप धारण किया और कांधायिं को दहलाकर प्रबल कर दिया । ज्वालामुखी शिशी में जब सूर्य की किरणें एक होती हैं, तब आँग प्रकट हो जाती है । इस खी के हृदय में रह-रहकर कांध की एक असाधारण लहर उत्पन्न होती थी । बच्चे ने मिठाई के लिये हठ किया ; उसपर बरस पड़ी ; महरी ने चौकान्वरत करके चूल्हे में आग जला दी, उ । न पीछे पड़ गयी—मैं तो अपने दुःखों को रो रही हूँ, इस चुड़ैल को राणियों की धुन मुवार है । निदान ६ बजे उससे न रहा गया । उसने यद पर लालकर अपने हृदय की ज्वाला ठएड़ी की—

‘सेठजी, तुम्हें अब अपने धन के घमण्ड ने अन्धा कर दिया है, किन्तु किसां का घमण्ड इसी तरह सदा नहीं रह सकता । कभी-न-कभी मिर अवश्य नीचा होता है । अफमोस कि कल शाम को, जब तुमने मेरे प्यारे पति को पकड़वाया है, मैं वहाँ माँझूर न थी ; नहीं तो अपना और तुम्हारा रक्त एक कर देती । तुम धन के मद में भूले हुए हो । मैं उसी दम तुम्हारा नशा उतार देती । एक खी के हाथों अपमानित होकर तुम फिर किसी को भूँह दिखाने लायक न रहते । अच्छा, इसका बदला तुम्हें किसी-न-किसी तरह जरूर मिल जायगा । मेरा कलेजा उम दिन ठएड़ा होगा, जब तुम निर्वश हो जाओगे और तुम्हारे कुल का नाम मिट जायगा ।’

सेठजी पर यह फटकार पड़ी तो वे क्रोध से आग हो गये। यद्यपि कुदहूदय के मनुष्य न थे, परन्तु क्रोध के आवेग में संजन्य का निह भी शेष नहीं रहता। यह ध्यान न रहा कि यह एक दुखिनी की कन्दन-ध्वनि है। एक सातायी हुई छी की मानसिक दुर्बलता का विचार है। उसकी धन-हीनता और विवशता पर उन्हें तनिक भी दया न आयी। मरे हुए को मारने का उपाय सोचने लगे।

(६)

इसके तीसरे दिन सेठ गिरधारीजाल पूजा के आमन पर बैठे हुए थे, महरा ने आकर कहा—सरकार, कोई खो आप से मिलने आर्ह है। सेठजी ने पूछा—कौन खी है? महरा ने कहा—सरकार, मुझे क्या मालूम? लेकिन है कोई भलेमानुस? रेशमी साड़ी पहने हुए। हाथ में सोने के कड़े हैं। पैरों में टाट के स्लीपर हैं। बड़े घर की खी जान पड़ती है।

यों साधारणः सेठजी पूजा के समय किसी से नहीं मिलते थे। नाहे कैसा ही आवश्यक काम क्यों न हो, ईश्वरांपासना में सामाजिक बाधाओं को धूमने नहीं देते थे। किन्तु ऐसी दशा में जब कि किसी बड़े घर की खी मिलने के लिए आये, तो योड़ी देर के लिए पूजा में त्रिलक्ष्म करना निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। ऐसा विचार करके वे नौकर से बोले—उन्हें बुला लाओ।

जब वह खी आयी तो सेठजी स्वागत के लिए उठकर खड़े हो गये। तत्पश्चात् अत्यन्त कोमल वचनों से कारणिक शब्दा में बोले—माता, कहाँ से आना हुआ? आंग जब यह उत्तर मिला कि वह आयोध्या से आयी है, तो आप ने उसे फिर से दण्डवत् किया और चीनी तथा भिश्रो से भी अधिक मधुर और नवनीत से भी अधिक त्रिकने शब्दों में कहा—अच्छा, आप श्री आयोध्या जी से आ रही है? उस नगरी का क्या कहना! देवताओं की पुरी है। बड़े भाग्य थे कि आपके दर्शन हुए। यहाँ आपका आगमन कैसे हुआ? खी ने उत्तर दिया—घर तो मेरा यही है। सेठजी का मुख पुनः मधुरता का त्रिव बना। वे बोले—अच्छा, तो मकान आपका इसी शहर में है? तो आपने माया-जंजाल को त्याग दिया? यह तो मैं पहले ही समझ गया था। ऐसी पवित्र आत्माएँ संसार में बहुत योकी हैं। ऐसी देवियों के दर्शन दुर्लभ होते हैं। आपने मुझे दर्शन दिया, वही कृपा की। मैं इस योग्य नहीं, जो आप-जैसी विदुषियों की कुछ सेवा कर

सकैँ? किन्तु जो काम मेरे योग्य हो— जो कुछ मेरे किए हो सकता हो— उसके करने के लिए मैं सब भाँति से तैयार हूँ। यहाँ सेठ-साहूकारों ने मुझे बहुत बदनाम कर रखा है, मैं सबकी आँखों में खटकता हूँ। उसका कारण सिवा इनके और कुछ नहीं कि जहाँ वे लोग लाभ पर ध्यान रखते हैं, वहाँ मैं भलाई पर रखता हूँ। यदि कोई बड़ी अवस्था का बृद्ध मनुष्य मुझसे कुछ कहने-सुनने के लिए आता है, तो विश्वास माना, मुझसे उसका बचन याला नहीं जाता। कुछ बुद्धापे का विचार; कुछ उसके दिल टूट जाने का ढर; कुछ यह ग्लाल कि कहीं यह विश्वासप्राप्तियों के फले में न फैस जाय, मुझे उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए विवश कर देता है। मेरा यह सिद्धान्त है कि अच्छी जायदाद और कम व्याज। किन्तु इस प्रकार की बातें आपके सामने करना व्यर्थ है। आप से तो घर का मामला है। मेरे योग्य जो कुछ काम हो, उसके लिए मैं सिर-आँखों से तैयार हूँ।

बृद्ध स्त्री—मेरा काम आप ही से हो सकता है।

मंठजी—(प्रसन्न होकर) बहुत अच्छा : आजा दो।

स्त्री—मैं आपके सामने भिलारिनी बनकर आयी हूँ। आपको छोड़कर कोई मेरा सवाल पूरा नहीं कर सकता।

मंठजी—कहिए, कहिए।

स्त्री—आप रामरक्षा को छोड़ दीजिए।

सेठजी के मुख का रङ्ग उतर गया। सारे हत्ताड़ बिले, जो अधी-अधी तैयार हुए थे, गर पड़े। वे बोले— उसने मेरी बहुत हानि की है। उसका घमण्ड तोड़ डालूँगा, तब छोड़ूँगा।

स्त्री—तो वया कुछ मेरे बुद्धापे का, मेरे हाथ फैलाने का, कुछ अपनी बढ़ाई का विचार न करोगे? वेणा, मामता बुरी होती है। संसार से नाता टूट जाय, धन जायः धर्म जायः किन्तु लड़के का न्नेह हृदय से नहीं जाता। सन्तोष सब कुछ बर सकता है। किन्तु बेटे दा प्रेम माँ के हृदय से नहीं निकल सकता। इस पर हाँकम का, राजा का, यहाँ तक कि डैश्वर का भी बस नहीं है। तुम मुझ पर तरस रखा था। मेरे दूँड़के की जान छोड़ दो, तुम्हें बड़ा यश मिलेगा। मैं जब तक जीऊँगी, तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी।

सेठजी का हृदय कुछ पसीजा। पर्याप्त की तह में पानी रहता है; किन्तु तत्काल ही उन्हें मिसेज रामरक्षा के पत्र का ध्यान आ गया। वे बोले—मुझे रामरक्षा से कोई उतनी शत्रुता नहीं थी। यदि उन्होंने मुझे न छोड़ा होता, तो मैं न बोलता। आपके कहने से मैं अब भी उनका अपराध कमा कर सकता हूँ। परन्तु उनकी बीवी साहबा ने जो पत्र मेरे पास भेजा है, उसे देखकर शरीर में आग लग जाती है। दिखाऊँ आपको! रामरक्षा की माँ ने पत्र लेकर पढ़ा तो उनकी आँखों में आँख भर आये। वे बोलीं—वेणु, उस छोटी ने मुझे बहुत दुःख दिया है। उसने मुझे देश से निकाल दिया। उसका मिजाज और जबान उसके वश में नहीं; किन्तु इस समय उसने जो गर्व दिखाया है, उसका तुम्हें रघ्याल नहीं करना चाहिये। तुम इसे भुला दो। तुम्हारा देश-देश में नाम है। यह नेकी तुम्हारे नाम को और भी फैला देगी। मैं तुमसे प्रण करती हूँ कि भारा समानार रामरक्षा ने निखवाकर किसी अन्धेरे समानार-पत्र में छपवा दूँगी। गम-रक्षा में गहना कहना नहीं आनेगा। तुम्हारे इस उपकार को वह कभी न भलेगा। जिस समय ये समानार संचादपत्रों में छपेंगे, उस समय हजारों मनुष्यों को तुम्हारे दर्शन की अंगिलाशा होगी। सरकार में तुम्हारी बड़ाई होगी और मैं सच्चे हृदय से कहती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें कोई-न-कोई पदबी मिल जायगी। रामरक्षा की अँगरेज में बहुतों मित्रता है, वे उसकी बात कभी न शालेंग।

सेठजी न हृदय में गुदगुदी पैदा हो गयी। यदि इस व्यवहार में वह पवित्र और मानीय स्थान प्राप्त हो जाए—जिसके लिए हजारों खर्च किये, हजारों डालियां दी, हजारों अनुनयन-वेनय की, हजारों खुशामदें की, खानमामों की भिड़कियाँ सहीं, बँगलों के चक्कर लगाये—तो इस मफलता के लिए ऐसे कई हजार में खर्च कर सकता हूँ; निस्सनदेह मुझे इस काम में रामरक्षा से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है; किन्तु इन विचारों को प्रकट करने से क्या लाभ? उन्होंने कहा—माता, मुझे नामन्मूद की बहुत चाह नहीं है। बड़ी ने कहा है—नेकी कर दरिया में डाल। मुझे तो आपकी बात का रघ्याल है। पदबी मिले तो लेने से इनकार नहीं, न मिले तो तृष्णा नहीं; परन्तु यह तो बता-इए कि मेरे रुपयों का क्या प्रबन्ध होगा? आपको मालूम होंगा कि मेरे दस्त-हजार रुपये आते हैं।

गामरक्षा की माँ ने कहा—तुम्हारे रूपये की जमानत में करती हैं। यह देखो, बंगाल-बंडी की पास-बुक है। उसमें मेरा दस हजार रुपया जमा है। उस रूपये से तुम रामरक्षा को कोई अवसाय करा दो। तुम उस दूकान के मालिक रहोगे, रामरक्षा को उसका मैनेजर बना देना। जबतक वह तुम्हारे कहे पर चले, निभाना; नहीं तो दूकान तुम्हारी है। मुझे उसमें से कुछ नहीं चाहिए। मेरी खाज-खबर लेनेवाला ईश्वर है। रामरक्षा अब्जी तरह रहे, इससे अधिक मुझे और न चाहिए। यह कहकर पास-बुक सेठजी को दे दी। माँ के इस अथाह प्रेम ने भेटजी को विडल कर दिया। पानो उबल पड़ा और पत्थर के नीचे ढक गया। ऐसे पवित्र दृश्य देवने के निए जीवन में कम अवसर मिलते हैं। सेठजी के हृदय में परापकार की एक लहर-सी उठी; उनकी आँखें डबडबा आर्ही। जिस प्रकार पानी के बहाव से कभी-कभी बौंध टूट जाता है; उसी प्रकार परापकार की इस उमंग ने स्वार्थ और माया के बौंध को तोड़ दिया। वे पास-बुक बृद्धा छों को वापस देकर बोले—माता, यह अपनी किताब लो। मुझे अब अधिक लजिजत न करो। यह देखो, रामरक्षा का नाम बही से उड़ा देता है। मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैंने अपना सब कुछ पा लिया। आज तुम्हारा रामरक्षा तुम सो मिल जाकरा।

इस घटना के दो वर्ष उपरान्त श्रावणहाल में फिर एक बड़ा जलसा हुआ। बैंड बज रहा था, भैंडियों और ध्वजाएँ वायु-मण्डल में लहरा रही थीं। नगर के गमी माननीय पुरुष उपस्थित थे। लैंडो, फिल्न और मोटरों से सारा हाता भरा हुआ था। एकाएक मुरक्की गोड़ों की एक फिल्न जे होने में प्रवेश किया। सेठ गिरधारीलाल बद्मूल्य वस्त्रों से सजे हुए उसमें से उतरे। उनके साथ एक फैशनेब्ल नवयुवक अँग्रेजी सूट पहने मुसकिगाता हुआ उतरा। वे मिस्टर रामरक्षा थे। वे अब सेठजी की एक खास दूकान के मैनेजर हैं। केवल मैनेजर ही नहीं, किन्तु उन्हें मैनेजिंग प्रोफ्राइटर समझना चाहिए। दिल्ला-दरबार में सेठजी का रायबहार का पद मिला है। आज डेस्ट्रक मैजिस्ट्रेट नियमानुसार इनकी घोषणा करेंगे और सूचित करेंगे कि नगर के माननीय पुरुषों की ओर से सेठजी को धन्यवाद देने के लिए यह बैठक हुई है। सेठजी की ओर से धन्यवाद मा वक्तव्य मिस्टर रामरक्षा करेंगे। जिन लोगों ने उनको वक्तुताएँ सुनी हैं, वे बहुत उत्सुकता से उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बैठक समाप्त होने पर सेठजी रामरक्षा के साथ अपने भवन पर पहुँचे, तो मालूम हुआ कि आज वही बृद्धा ल्ली उनसे किर मिलने आयी है। सेठजी दौड़ कर रामरक्षा की माँ के चरणों से लिपट गये। उनका हृदय इस समय नदी की खाँति उमड़ा हुआ था।

‘रामरक्षा ऐएड फ्रैंड्स’ नामक चीनी बनाने का कारखाना बहुत उन्नति पर है। रामरक्षा अब भी उसी ठाट-बाट से जीवन व्यतीत कर रहे हैं; किन्तु पाठियाँ कम देते हैं और दिन-भर में तीन से अधिक भूट नहीं बदलते। वे अब उस पत्र को, जो उनकी ल्ली ने सेठजी को लिया था, संसार की एक बहुत अमूल्य वस्तु समझते हैं और मिसेज रामरक्षा को भी अब सेठजी के नाम को मियाने को अधिक चाह नहीं है। क्योंकि अभी हाल में जब लड़का पैदा हुआ था, मिसेज रामरक्षा ने अपना सुवर्ण-कंकण धाय को उपहार दिया था और मनो मिठाई बँथी थी।

यह सब हो गया; किन्तु वह बात, जो अब होनी चाहिए थी, न हुई। रामरक्षा की माँ अब भी अयोध्या में रहती हैं और अपनी पुत्रवश् की सूरत नहीं देखना चाहती।

मन्त्र

(१)

सन्ध्या का समय था । डाक्टर चड्ढा गोल्फ खेलने के लिए तैयार हो रहे थे । मोटर द्वार के सामने खड़ी थी कि दो कहाँ एक डोली लिए आते दिखायी दिये । डोली के पीछे एक बूढ़ा लाडी टेकता चला आता था । डोली औषधालय के सामने आकर रुक गयी । बूढ़े ने धीरे-धीरे आकर द्वार पर पड़ी हुई चिक्के से भौंका । ऐसी माफ-सुवर्णी जमीन पर रखते हुए भय हो रहा था कि कोई घुड़क न बैठे । डाक्टर साहब को मेज के सामने खड़े देखकर भी उसे कुछ कहने का गाहसु न हुआ ।

डाक्टर साहब ने चिक्के के अंदर से गरज कर कहा—कौन है ! क्या चाहता है ?

बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा—हजूर, बड़ा गरीब आदमी हूँ । मेरा लड़का कई दिन सं.....

डाक्टर साहब ने सिगार जलाकर कहा—कल सबेरे आओ, कल सबेरे; हम इस बक्स मरीजों को नहीं देखते ।

बूढ़े ने गुटने टेककर जमीन पर सिर रख दिया और 'बोला—उहाँ है सरकार की, लड़का मर जायगा । हजूर चार दिन से नौँखें नहीं.....

डाक्टर चड्ढा ने कलाई पर नजर डाली । केवल दस मिनट समय और बाकी था । गोल्फ-स्टिक खूँटी से उतारते हुए बोले—कल सबेरे आओ, कल सबेरे; यह हमारे खेलने का समय है ।

बूढ़े ने पगड़ी उतारकर नौखट पर रख दी और रोकर बोला—हजूर, एक निगाह देख लें । बस, एक निगाह ! लड़का हाथ से चला जायगा हजूर, सात लड़कों में यही पृथक बन रहा है, हजूर । हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायेंगे, सरकार ! आपकी बढ़ती होय, दीनबन्धु !

ऐसे उजड़ देहाँसी यहाँ प्रायः रोज आशा करते थे । डाक्टर साहब उनके स्वभाव से खूब परिचित थे । कोई कितना ही कुछ कहे; पर वे अपनी ही स्ट

लगाते जायेंगे । किसी की सुनेंगे नहीं । बीरे से चिक उठायी और बाहर निकलकर मोटर की तरफ चले । बूढ़ा यह कहता हुआ उनके पीछे दौकान—सरकार, बड़ा धरम होगा । हजूर, दया कीजिए, बड़ा दीन-दुखी हूँ ; संसार में कोई और नहीं है, बाबूजी !

मगर डाक्टर साहब ने उसकी ओर मुँह फेरकर देखा तक नहा । मोटर पर बैठकर बोले—कल सबेरे आना ।

मोटर चली गयी । बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति को भौंति निश्चल लड़ा रहा । संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था । भय संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा भर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था । वह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मुर्दे को कन्धा देने, किसी के छुप्पर को उठाने और किसी कलह को शान्त करने के लिए सदैव तैयार रहते थे । जब तक बूढ़े का मोटर दिखायी दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा । शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी । फिर उसने कहारों से ढोली उठाने को कहा । ढोली जिधर से आयी थी, उधर ही चली गयी । चारों ओर से निराश होकर वह डाक्टर चड्ढा के पास आया था । इनकी बड़ी तारीफ सुना थी । यहाँ से निराश होकर फिर वह किसी दूसरे डाक्टर के पास न गया । किस्मत ठोक ली ।

उसी रात को उसका हँसता-खेलता सात साल का बालक अपनी बाल-लीला समाप्त करके इस संसार से सिधार गया । बूढ़े मौंबाप के जीवन का यही एक आधार था । इसी का मुँह देखकर जीते थे । इस दीपक के बुझते ही जीवन की आँधेरी रात भौंय-भौंय करने लगी । बुढ़ाये की विशाल ममता दूटे हुए हृदय से निकलकर उस अन्धकार में आर्त-स्वर से रोने लगी ।

(२)

कई साल गुजर गये । डाक्टर चड्ढा ने खूब वश-ओर धन कमाया; लेकिन इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य की रक्षा भी की, जो एक असाधारण बात थी । यह उनके नियमित जीवन का अशीर्वाद था कि ५० वर्ष की अवस्था में उनकी

सुस्ती और फुर्ती युवकों को भी लिंजित करती थी। उनके हरएक काम का समय नियत था, इस नियम से वह जां-भर भी न ठलते थे। बहुधा लोग स्वास्थ्य के अन्यथों का पालन उस समय करते हैं, जब रोगी हो जाते हैं। डाक्टर चड्हा उपचार और संयम का रहस्य खबर समझते थे। उनकी संतान-संन्ध्या भी इसी नियम के अधीन थी। उनके केवल दो बच्चे हुए, एक लड़का और एक लड़की। तीसीरी सन्तान न हुई; इसलिए श्रीमती चड्हा भी अभी जवान मालूम होती थीं। लड़की का तो विवाह हो चुका था। लड़का कालेज में पढ़ता था। वही माता-पिता के जीवन का आधार था। शील और विनय का पुतला, बड़ा ही रासिक, बड़ा ही उदार, विद्यालय का गोरख, युवक-समाज की शोभा। मुख-मण्डल से तेज की छुटा-सी निकलती थी। आज उसी की बीसवीं सालगिरह थी।

सन्ध्या का समय था। हरी-हरी धास पर कुर्सियाँ बिछी हुई थीं। शहर के रईस और हुक्माम एक तरफ, कालेज के छात्र दूसरी तरफ बैठे भोजन कर रहे थे। बिजली के प्रकाश से सारा मैदान जगमगा रहा था। आमोद-प्रमोद का सामान भी जमा था। लोया-सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलाशनाथ ने लिया था। वही मुख्य ऐवर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज पहने, नंगे चिर, नंगे पौँछ, इधर-से-उधर मिठां की आवध-भगत में लगा हुआ था। कोई पुकारता—कैलाश, जरा इधर आना; कोई उधर से बुलाता—कैलाश, क्या उधर ही रहांगे? सभी उसे छोड़ते थे, चुहले करते थे। बैचारे को जरा दम भारने का भी अवकाश न मिलता था। सहसा एक रमणी ने उसके पास आकर कहा—क्या कैलाश, तुम्हारे सौंप कहाँ हैं? जरा मुझे दिखा दो।

कैलाश ने उससे हाथ मिलाकर कहा—मृणालिनी, इस वक्त ज्ञामा करो, कल दिखा दूँगा।

मृणालिनी ने आश्रह किया—जी नहीं, तुम्हें दिखाना पड़ेगा, मैं आज नहीं मानने की। तुम रोज 'कल-कल' करते हो।

मृणालिनी और कैलाश दोनों सहयोगी थे और एक दूसरे के प्रेम में पगे हुए। कैलाश को सौंपा के पालने, खेलने और नचाने का शौक था। तरह-तरह के सौंप पाल रखे थे। उनके स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करता रहता था। थोड़े दिन हुए, उसने विद्यालय में 'सौंपो' पर एक मार्क का व्याख्यान दिया था।

सौंपों को नचाकर दिखाया भी था । प्राणि-शास्त्र के बड़े बड़े परिषद्वत् भी यह व्याख्यान सुनकर दंग रह गये थे ! यह विद्या उसने एक बूँढ़ सँपेरे से साधा थी । सौंपों की जड़ी-बूटियों जमा करने का उसे मरज था । इतना पता-भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति के पास कोई अच्छी जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था । उसे लेकर ही छोड़ता था । यही व्यसन था । इस पर हजारों रूपये फूँक चुका था । मृणालिनी कई बार आ चुकी थी ; पर कभी सौंपों को देखने के लिए इतनी उत्सुक न हुई थी । कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सचमुच जाग गयी थी, या वह कैलाश पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहती थी; पर उसका अग्राह बेमोका था । उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायगी, भीड़ को देखगर सौंप कितने चौंकेंगे और रात के समय उन्हें छेड़ा जाना कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे जरा भी ध्यान न आया ।

कैलाश ने कहा—नहीं, कल जरूर दिखा दूँगा । इस वक्त अच्छी तरह दिखा भी तो न सकँगा, कमरे में तिल रखने को भी जगह न मिलेगी ।

एक महाशय ने छेड़कर कहा—दिखा क्यों नहीं देते, जग-सी बात के लिए इतना शाले-मटोल कर रहे हो ? मिस गोविन्द, हर्गिज न मानना । देखें, कैसे नहीं दिखाते ।

दूसरे महाशय ने और रहा चढ़ाया—मिस गोविन्द इतनी सीधी और भोली है, तभी आप इतना मिजाज करते हैं ; दूसरी मुन्दरी हांती, तो इसी बात पर बिगड़ लड़ी होती ।

तीसरे साहब ने मजाक उड़ाया—अजी, बोलना छोड़ देती । भला, कोई बात है ! इस पर आप कंज दावा है कि मृणालिनी के लिए जान हाजिर है ।

मृणालिनी ने देखा कि ये शोहदे उसे चग पर चढ़ा रहे हैं, तो बोली—आप लोग मेरी बकालत न करें, मैं खुद अपनी बकालत कर लूँगी । मैं इस वक्त सौंपों का दमाशा नहीं देखना चाहती । चलो, छुट्टी हुई ।

इस पर मित्रों ने ठहाका लगाया । एक साहब बोले—देखना तो आप सब कुछ चाहें, पर कोई दिखाए भी तो ?

कैलाश को मृणालिनी की भौंपी हुई सूरत देखकर मालूम हुआ कि इस वक्त उसका इनकार वास्तव में उसे बुरा लगा है । ज्योही प्रीति-भोज समाप्त हुआ और

गाना शुरू हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को सौंपों के दरबे के सामने ले जाकर महुआर बजाना शुरू किया। फिर एक-एक खाना खोलकर एक-एक सौंप को निकालने लगा। वाह ! क्या कमाल था ! ऐसा जान पड़ता था कि के कोड़े उसकी एक-एक बात, उसके मन का एक-एक भाव समझते हैं। किसी को उठा लिया, उसी को गर्दन में डाल लिया, किसी को हाथ में लपेट लिया। मृणालिनी बार-बार मना करता कि इन्हें गर्दन में न डालों, दूर ही से दिखा दो। बस, जरा नचा दा। कैलाश भी गर्दन में सौंपों को लिपटते देखकर उसकी जान निकल जाती थी। पछता रही थी कि मैंने व्यर्थ ही इनसे सौंप दिखाने को कहा ; मगर कैलाश एक सुनता न था। प्रीमिका के सभुख अपने सर्प-कला-प्रदशन का एसा अवसर पाकर वह कब चूकता ! एक मित्र ने टीका की-दाँत तोड़ डाले होंगे !

कैलाश हसकर बोला — दाँत तोड़ डालना मदारियां का काम है। किसी के दाँत नहीं तोड़ गये हैं। कहिए तो दिखा दूँ ? यह कह कर उसने एक काले सौंप का पकड़ लिया और बोला —मेरे पास इससे बड़ा और जहरीला सौंप दूसरा नहीं है। अगर किसी को काट ले, तो आदमी आनन-कानन में मर जाय। लहर भी न आये। इसके काटे का मन्त्र नहीं। इसके दाँत दिखा दूँ ?

मृणालिना ने उसका हाथ पकड़कर कहा — नहीं-नहीं, कैलाश, इश्वर के लिए इसे छाड़ दो। तुम्हारे पैरों पड़ी हूँ।

इसपर एक दूसरे मित्र बोले — मुझे तो विश्वास नहीं आता, लेकिन तुम कहते हो, तो मान लेंगा।

कैलाश ने साप की गर्दन पकड़ कर कहा — नहा साहब, आप आँखों से देखकर मानए। दाँत तोड़कर वश में क्या, तो क्या ! केया। सौंप बड़ा समझदार हाता है। अगर उसे विश्वास हो जाय कि इस आदमी में मुझे कोई हानि न पहुँचेगी, तो वह उसे हार्गिज न काटेगा।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलाश पर इस वक्त भूत सवार है, तो उसने यह तमाशा न करने के विचार से कहा — अच्छा भाई, अब यहाँ से चलो। देखो गाना शुरू हो गया है। आज मैं भी कोई चीज सुनाऊँगी। यह कहते हुए उसने कैलाश का कल्पा पकड़कर चलने का इशारा किया और कमरे से निकल गयी;

मगर कैलाश विरोधियों का शंकान्समाधान करके ही दमलेना चाहता था। उसने सौंप की गर्दन पकड़कर जोर से दबायी, इतनी जोर से दबायी कि उसका मुँह लाल हो गया, देह की सारी नसें तन गयी। सौंप ने अब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार न देखा था। उसकी समझ में न आता था कि यह मुझसे क्या चाहते हैं। उसे शायद भ्रम हुआ कि यह मुझे मार डालना चाहते हैं; अतएव वह आत्मरक्षा के लिए तैयार हो गया।

कैलाश ने उसकी गर्दन खूब दबाकर मुँह खोल दिया और उसके जहरीले दौत दिखाते हुए बोला—जिन सज्जनों को शक हो, आकर देख लें। आया विश्वास या अब भी कुछ शक है? मित्रों ने आकर उसके दौत देखे और चकित हो गये। प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने संदेह को स्थान कहाँ। मित्रों का शंकानिवारण, करके कैलाश ने सौंप की गर्दन ढीली कर दी और उसे जमीन पर रखना चाहा; पर वह काला गेहूवन कोध से पागल हो रहा था। गर्दन नरम पड़ते ही उसने सिर उठाकर कैलाश की ऊँगली में जोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलाश की ऊँगली से घट-घट खून घटकने लगा। उसने जोर से ऊँगली दबा ली और अपने कमरे की तरफ दौड़ा। वहाँ भेज की दराज में एक जड़ी रखी हुई थी, जिसे पीसकर लगा देने से धातक विष भी रफ़ हो जाता था। मित्रों में हलचल पड़ गयी। बाहर महफिल में भी खबर हुई। डाक्टर साहब प्रबराकर दौड़े। फौरन ऊँगली की जड़ कसकर बौंशी गयी और जड़ी पीसने के लिए दी गयी। डाक्टर साहब जड़ी के कायल न थे। वह ऊँगली का डसा भाग नश्तर से काट देना चाहते थे, मगर कैलाश को जड़ी पर पूर्ण विश्वास था। मृणालिनी प्यानो पर बैठी हुई थी। यह खबर सुनते ही दौड़ी, और कैलाश की ऊँगली से घटकते हुए खून को रुमाल से पोछने लगी। जड़ी पीसी जाने लगी; पर उसे एक मिनट में कैलाश की ओँखें भरकने लगीं, औंडां पर पीलापन दौड़ने लगा। यहाँ तक कि वह खड़ा न रह सका। फर्श पर बैठ गया। सारे मेहमान कमरे में जमा हो गये। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। इतने में जड़ी पीसकर आ गयी। मृणालिनी ने ऊँगली पर लेप किया। एक मिनट और बीता। कैलाश की ओँखें बन्द हो गयीं। वह लेट गया और हाथ से पंखा भलने का इशारा किया माँ ने दौड़कर उसका सिर गोद में रख लिया और बिजली का टेबुल-फैन लगा दिया।

डाक्टर साहब ने मुक्कर पूछा—कैलाश, कैसी तबीयत है ? कैलाश ने चीरे से हाथ उठा दिया ; पर कुछ बोल न सका । मृणालिनी ने कुछ स्वर में कहा— कदा जड़ी कुछ असर न करेगी ? डाक्टर साहब ने सिर पकड़कर कहा — बया बतलाऊँ, मैं इसकी बातों में आ गया । अब तो नश्तर से भी कुछ फायदा न होगा ।

आध पर तक यही हाल रहा । कैलाश की दशा प्रतिक्षण बिगड़ती जाती थी । यहाँ तक कि उसकी ओँखे पथरा गयीं, हाथ-पौँव ठंडे हो गये, मुख की कांन मालन पक गयीं, नाड़ी का कहीं पता नहीं । मौत के सारे लक्षण दिखायी देने लगे । घर में कुहराम मच गया । मृणालिनी एक ओर सिर पीटने लगी; मौं अलग पट्टाँड़ खाने लगी । डाक्टर चट्टा को मित्रों ने पकड़ लिया, नहीं तो वह नश्तर अपनी गर्दन पर मार लेते ।

एक महाशय बोले—कोई मन्त्र भाइनेवाला मिले, तो सभव है, अब भी जान बच जाय ।

एक मुसलमान सज्जन ने इसका समर्थन किया—अरे साहब, कब्र में पढ़ी हुई लाशें जिन्दा हो गयी हैं । ऐसे-ऐसे बाकमाल पढ़े हुए हैं ।

डाक्टर चट्टा बोले—मेरी अबल पर पत्थर पढ़ गया था कि इसकी बातों में आ गया । नश्तर लगा देता, तो यह नौबत ही क्यों आती । बार-बार समझाता रहा कि बेटा, सोप न पालो, मगर कौन सुनता था ! बुलाइए, किसी भाइ-सौंक वरनेवाले ही को बुलाइए । मेरा छब कुछ ले ले, मैं अपनी सारी जायदाद रखूँगे । देरों पर रख दूँगा । लंगोंटी बोधकर घर से निकल जाऊँगा ; मगर मेरा कैलाश, मेरा प्यारा कैलाश उठ बैठे । ईश्वर के लाल किसी को बुलाइए ।

एक महाशय को किसी भाइनेवाले से पर्चम या । वह दाढ़कर उसे बुला लाये; मरर कैलाश की सूरत देखकर उसे मन्त्र चलाने की हम्मत न पढ़ी । बैलो— छब बया हो सकता है, सरकार ! जो कुछ होना था, हो चुका ।

अब मूर्ख, यह क्यों नहीं कहता कि जो कुछ न होना था, हो चुका । जो बुल होना । था, वह वहो हुआ ? मौं बाप ने बेटे का सेहरा कहाँ देखा ? मृणालिनी वा बामना-तरु वया पट्टाव और पुष्प से रंजित हो उठा ? मन के वह स्वर्ण-स्वप्न जिनसे जीवन आनन्द वा स्नोत बना हुआ था, वया पूरे हो गये ? जीवन के

नृत्यमय तारिका-मणिडत सागर में आमोद की बहार लुटते हुए क्या उनकी नौका जलमग्न नहीं हो गयी ? जो न होना था, वह हो गया !

वही हरा-भरा मैदान था, वही सुनहरी चौंदनी एक निःशब्द संगीत की मौति प्रकृति पर छायी हुई थी; वही मित्र-समाज था । वही मनोरंजन के सामान थे । मगर जहाँ हास्य की ध्वनि थी, वहाँ अब कषण कन्दन और अभु-प्रवाह था ।

(३)

शहर से कई मील दूर एक छोटेसे घर में एक बूढ़ा और एक बुद्धिया शौचीठी के सामने बैठे जाड़े की रात काट रहे थे । बूढ़ा नारियन पीता था और बीच-बीच में खाँसता था । बुद्धिया दोनों घुणियों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी । एक मिट्ठी के तेल की कुपी ताक पर जल रही थी । घर में न चारपाई थी, न बिछौना । एक किनारे योड़ी-सी पुआल पड़ी हुई थी । इसी कोठरी में एक चूल्हा था । बुद्धिया दिन-भर उपले और सूखी लकड़ियाँ बटोरती थी । बूढ़ा रस्सी बटकर बाजार में बैच लाता था । यही उनकी जीविका थी । उन्हें न किसी ने रोते देखा, न हँसने । उनका सारा समय जीवित रहने में कट जाता था । मात्र द्वार पर लड़ी थी, राने या हँसने को कहाँ फुर्सत ! बुद्धिया ने पूछा—कल के लिए सुन तो है नहीं, काम क्या करोगे ?

‘जाकर भगड़ साह से दस सेर सन उधार लाऊँगा ।’

‘उसके पहले के पैसे तो दिये ही नहीं, और उधार कैसे देगा ?’

‘न देगा न सही । आस तो कहीं नहीं गयी है । दांपहर तक क्या दो आने की भी न काढ़ूँगा ?’

इनने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज दी—भगत, भगत, क्यां सो गये ? जरा किवाड़ खोलो ।

भगत ने उठकर किवाड़ खोल दिये । एक आदमी ने अन्दर आकर कहा—
कुछ सुना, डाक्टर चट्टा बाबू के लड़के को सौंप ने काट लिया ।

भगत ने चौंककर कहा—चट्टा बाबू के लड़के को ! वही चट्टा बाबू हैं न, जो छावनी में बँगले में रहते हैं ?

‘हाँ-हाँ, वही । शहर में हस्ता मचा हुआ है । जाते हों तो जाओ, आदमी बन जाओगे ।’

बूढ़े ने कठोर भाव से सिर हिलाकर कहा—मैं नहीं जाता ! मेरी बला जाय ! वही चड्ढा है । खूब जानता हूँ । भैया को लेकर उन्हीं के पास गया था । खेलने जा रहे थे । पैरों पर गिर पड़ा कि एक नजर देख लीजिए; मगर सीधे मुँह बात तक न की । भगवान् बैठे सुन रहे थे । अब जान पड़ेगा कि बेटे का गम कैसा होता है । कई लड़के हैं ?

‘नहीं जी, वही तो एक लड़का था । सुना है, सबने जवाब दे दिया है ।’

‘भगवान् बड़ा कारसाज है । उस बबत मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े थे, पर उन्हें तनिक भी दया न आया थी । मैं तो उनके द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता ।

‘तो न जाओगे ? हमने जो सुना था, सो कह दिया ।’

‘अच्छा किया—अच्छा किया । कलेजा ठण्डा हो गया, आँखें ठण्डी हो गयीं । लड़का भी ठण्डा हो गया होगा ! तुम जाओ । आज चैन की नींद सोऊँगा (बुद्धिया से) जरा तमाखू ले ले ! एक चिलम श्रीर पीऊँगा । अब मालूम होगा लाला को ! सारी साहिबी निकल जायगी, हमारा क्या बिगड़ा । लड़के के मर जाने से कुछ राज तो नहीं चला गया ? जहाँ छः बच्चे गये थे, वहाँ एक और चला गया, तुम्हारा तो राज यूना हां जायगा । उसी के बाले सबका गला दबा-दबाकर जोड़ा था न ! अब क्या करागे ? एक बार देखने जाऊँगा ; गर कुछ दिन बाद, मिजाज का हाल पूछूँगा ।’

आदमी चला गया । भगत ने किवाड़ बन्द कर लिये, तब चिलम पर तमाखू रखकर पीने लगा ।

बुद्धिया ने कहा—इतनी रात गये जाइ-पाले में कौन जायगा ?

‘अरे, दोपहर ही होता, तो मैं न जाता । मवारा दरवाजे पर लेने आती, तो भी न जाता । भूल नहीं गया हूँ । पन्ना को सूरत आज भी आँखों में फिर रही है । इस निर्दयी ने उसे एक नजर देखा तरु नहीं । क्या मैं न जानता था कि वह न बचेगा ? खूब जानता था । चड्ढा भगवान् नहीं थे कि उनके एक निगाह देख लेने से अमृत बरस जाता । नहीं, खाली मन का दौड़ थी । जरा तसल्ली हो जाती । बस, इसीलिए उनके पास दौड़ा गया था । अब किसी दिन जाऊँगा और कहूँगा—क्यों साहब, कहिए, क्या रंग है ? दुनिया बुरा कहेगी,

कहै; कोई परवाह नहीं। छोटे आदमियों में तो सब ऐस होते ही हैं। बड़ों में कोई ऐस नहीं होता। देवता होते हैं।'

भगत के लिए यह जीवन में पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पाकर वह बैठा रह गया हो। २० वर्ष के जीवन में ऐसा कभी न हुआ था कि साँप की खबर पाकर वह दौड़ा न गया हो। माघ-पूस की अँधेरी रात, चैत-बैसाख की धूप और लू, सावन-भादों को चढ़ी हुई नदी और नाले, किसी की उसने कभी परवाह न की। वह तुरन्त घर से निकल पड़ता था—[नःस्वार्थ, निष्काम]। 'लेन-देन का विचार कभी दिल में आया नहीं। यह ऐसा काम ही न था। जान का मूल्य कौन दे सकता है? यह एक पुण्य-कार्य था। सैकड़ों निराशों को उसके मन्त्रों ने जीवन दान दे दिया था; पर आज वह घर से कदम नहीं निकाल सका। यह खबर नुन कर भी सोने जा रहा है।

बुद्धिया ने कहा—तमाखू औंगीठी के पास रखी हुई है। उसके भो आज दाई पैसे हो गये। देती ही न थी।

बुद्धिया यह कह कर लेटी। बूढ़े ने कुपी बुझायी, कुछ देर खड़ा रहा, फिर बैठ गया। अन्त को लेट गया; पर यह खबर उसके हृदय पर बोझ की भाँति रखी हुई थी। उसे मालूम हो रहा था, उसकी कोई चीज खो गयी है, जैसे सारे कपड़े गीते हो गये हैं या पैरों में कीचड़ लगा हुआ है, जैसे काई उसके मन में बैठा हुआ। उसे घर से निकलने के लिए कुरेद रहा है। बुद्धिया जरा देर में खट्टे लेने लगी। बूढ़े बातें करते-करते साते हैं और जरा-सा खट्टका होते ही जागते हैं। तब भगत उठा, अपनी लकड़ी उठा ली, और धीरे से किवाढ़ खोले।

बुद्धिया ने पूछा—कहाँ जाते हो?

'कहीं नहीं, देखता था कि कितनी रात है।'

'अभी बहुत रात है, सो जाओ।'

'नीद नहीं आती।'

'नीद काहे को आवेगी? मन तो चइदा के घर पर लगा हुआ है।'

'चइदा ने मेरे साथ कौन-मी नेकी कर दी है, जा वहाँ जाऊँ? वह आकर पैरों पढ़े, तो भी न जाऊँ।'

‘उठे तो तुम इसी इरादे से ही !’

‘नहीं री, ऐसा पागल नहीं हूँ कि जो मुझे कौटे बोये, उसके लिए छूल बोता फिरूँ !’

बुद्धिया फिर सो गयी। भगत ने किवाह लगा दिये और फिर आकर बैठा। पर उसके मन की कुछ ऐसी दशा थी, जो बाजे की आवाज कान में पड़ते ही उपदेश मुननेवालीं की होती है। आँखें चाहे उरदेशक की ओर हों; पर कान बाजे ही की ओर होते हैं। दिल में भी बाजे की ध्वनि गँजती रहती है। शर्म के मारे जगह से नहीं उठता। निर्दयी प्रतिशत का भाव भगत के लिए उपदेशक था; पर हृदय उस अभागे युवक की ओर था, जो इस समय मर रहा था, जिसके लिए एक-एक पल का विलम्ब प्राप्तक था।

उसने फिर किवाह खोले, इतने भीरे से कि बुद्धिया को खबर भी न हुई। बाहर निकल आया। उसी वक्त गाँव का चौकीदार गश्त लगा रहा था। बोला—कैसे उठे भगत ? आज तो बड़ी सरदी है ! कहीं जा रहे हो क्या ?

भगत ने कहा—नहीं जी, जाऊँगा कहाँ ? देखता था, अभी कितनी रात है। भला, कै बजे होंगे ?

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या, अभी याने से आ रहा था, तो डाक्टर नद्दा बाबू के बँगले पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उनके लड़के का हाल तो तुमने मुना होगा, कीड़े ने पूल लिया है। चाहे मर भी गया हो। तुम चले जाओ, तो पाइत बच जाय। मुना है, दस हजार तक देने को तैयार हैं।

भगत—मैं तो न जाऊँ, चाहे वह दस लाख भी दें। मुझे दस हजार या दस लाख लेकर करना क्या है ? कल मर जाऊँगा, फिर कौन भोगनेवाला बैठा हुआ है।

चौकीदार चला गया। भगत ने आगे पैर बढ़ाया। जैसे नशे में आदमी की देह आपने काढ़ू में नहीं रहती, पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है, जबान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था। मन में प्रतिकार था; पर कर्म मन के अधीन न था। जिसने कभी तलवार नहीं चलायी, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता। उसके हाथ कौपते हैं, उठते ही नहीं।

भगत लाठी खट्खट करता लपका चला जाता था । चेतना रोकती थी पर उपचेतना ठेलती थी । सेवक स्वामी पर हावी था ।

आधी राह निकल जाने के बाद सहसा भगत रुक गया । हिंसा ने किया पर विजय पायी—मैं यो ही इतनी दूर चला आया । इस जाड़े-बाले में मरने की मुझे क्या पड़ी थी ? आराम से सोया क्यों नहीं ? नीद न आती, न सही ; दो-चार, भजन ही गाता । व्यर्थ इतनी दूर दौड़ा आया । चड़ा का लड़का रहे था मरे, मेरी बला से ! मेरे साथ उन्होंने ऐसा कौन-सा सलूक किया था कि मैं उनके लिए मरूँ ? दुनियाँ में हजारों मरने हैं, हजारों जीते हैं । मुझे किसी के मरने-जीने से मतलब !

मगर उपचेतना ने अब एक दूसरा रूप धारण किया, जो हिंसा से बहुत कुछ मिलता-जुलता था—वह भाङफँक करने नहीं जा रहा है, वह देखेगा कि लोग क्या कर रहे हैं । डाक्टर साहब का रोना-पीटना देखेगा कि किस तरह सिर पीटते हैं, किस तरह पछांड़ लाते हैं । वह देखेगा कि बड़े लाग भा छांटों ही की भाँति रोते हैं, या सबर कर जाते हैं । वे लोग तो विद्रोह होते हैं, सबर कर जाते होंगे ! हिंसा-भाव को यो धीरज देता हुआ वह फिर आगे बढ़ा ।

इतने में दो आदमी आते दिखायी दिए । दोनों बातें करते चले आ रहे थे—चड़ा बाबू का घर उजड़ गया, वही तो एक लड़का था । भगत के कान में यह आवाज पड़ी । उसकी न्याय और भी तेज ही गयी । यकान के मारे पाँव न उठते थे । शिरोभाग इतना बढ़ा जाता था, मानो अब मुँह के बल गिर पड़ेगा । इस तरह वह कोई १० मिनट चला होंगा कि डाक्टर साहब का बँगला नजर आया । बिजली को बर्तियाँ जल रही थीं ; मगर सब्राटा छाया हुआ था । रोने-पीटने की आवाज भी न आती थी । भगत का कालेजा धक्क-धक्क करने लगा । कहीं मुझे बहुत देर तो नहीं हो गयी ? वह दौड़ने लगा । अपनी उम्र में वह इतना तेज कभी न दौड़ा था । बस, यही मालूम होता था मानो उसके पीछे मौत दौड़ी आ रही है ।

(४)

दो बजे थे ये थे । मेहमान बिदा हो गये । रोने वाले में केवल आकाश के तारे रह गये थे । और सभी रो-रोकर यक गये थे । बड़ी उत्सुकता के साथ लोग

रह-रहकर आकाश की ओर देखते थे कि किसी तरह सुबह हो और लाश मंगा की गोद में दी जाय।

सहसा भगत ने द्वार पर पहुँचकर आवाज दी। डाक्टर साहब समझे, कोई मरीज आया होगा, किमी और दिन उन्होंने उस आदमी को दुल्कार दिया होता; मगर आज बाहर निकल आये। देखा, एक बूढ़ा आदमी लड़ा है—कमर झुकी हुई, पोपला मुँह, भौंहें तक सफेद हो गयी थीं। लकड़ी के सहारे कौप रहा था। बड़ी नम्रता से बोले क्या है भई, आज तो हमारे ऊपर ऐसी मुसीबत पड़ गयी है कि कुछ कहने नहीं बनता, फिर कर्मी आना। इधर एक महीना तक तो शायद मैं किसी भी मरीज का न देख सकूँगा।

भगत ने कहा—उन चुप्पे हूँ बाजू बाजू; इसाजिए आया हूँ। मैंना नहाँ है? जरा मुझे दिखा दीजिए। भगवान् बड़ा कारसाज है, भुरदे को भी जिला सकता है। कौन जाने, अब भी उने दशा आ जाय।

चड़ा ने व्यथित स्वर से कहा—चलो, देख ला; मगर तीन-चार घण्टे हो गये। जो कुछ होना था, हां चुका। बहुतेरे भाङ्ने-फँकने वाले देख-देख-कर चले गये।

डाक्टर साहब को आशा तो क्या होती। हाँ, बूढ़े पर दया आ गयी। अन्दर ले गये। भगत ने लाश का एक मिनट तक देखा। तब मुर्सिकाकर बोला—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, बाजूजी! वह नारायण चाहेगे, तो आध घण्टे में मैंना उठ देंगे। आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं। जरा कहारों से कहिए, पानी तो भरें।

कहारों ने पानी भर-भरकर कैलाश को नहलाना शुरू किया। पाइप बंद हो गया था। कहांग की संख्या अर्धक न थी, इगालेए मेहमानों ने अहाते के बाहर के कुएँ से पानी भर-भरकर कहारों को दिया, मुर्णालिनी कलसा लिए पानी ला रही थी। बूढ़ा भगत लड़ा मुर्सिकरा-मुर्सिकराकर मन्त्र पड़ रहा था, मानो विजय उसके सामने खड़ी है। जब एक बार मन्त्र समाप्त हो जाता, तब वह एक जड़ी कैलाश को सुँवा देता। इस तरह न-जाने कितने घड़े कैलाश के सिर पर ढाले गये और न-जाने कितनी बार भगत ने मन्त्र फँका। आखिर जब ऊपर ने अपनी लाल-लाल और्खे खोली तो कैलाश की भी लाल-लाल और्खे

खुल गयी ! एक क्षण में उसने अँगडाई ली और पानी पीने को माँगा । डाक्टर चुड़ा ने दाढ़कर नारायणी को गले लगा लिया । नारायणी शौकर भगत के पैरा पर गिर पड़ी और मृणालिनी कैलाश के सामने आँखों में आँखुभरे पूछने लगी—अब कैसी तबीयत है ?

एक क्षण में चारों तरफ खबर फैल गयी । भित्रगण मुबारकबाद देने आने लगे । डाक्टर साहब बड़े श्रद्धा-भाव से हर एक के सामने भगत का यश गति फिरते थे । सभी लोग भगत के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे ; मगर अन्दर जाकर देखा, तो भगत का कहीं पता न था । नीकरां ने कहा—अभी तो यहाँ चैठे चिलम पी रहे थे । हम लोग तमाखू देने लगें, तो नहीं ली ; अपने पास से तमाखू निकालकर भरी ।

यहाँ त' भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, ओर भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुढ़िया के उठने से पहले पहुँच जाऊँ ।

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहब ने नारायणी से कहा—
बुड़ा न-जाने कहाँ चला गया । एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ ।

नारायणी—मैंने तो सोचा था, इसे कोई बड़ी रकम दूँगी ।

चुड़ा—रात का तो मैंने नहीं पहचाना; पर जरा साफ हो जाने पर पहचान नहीं । एक बार यह एक मरीज को लेकर आया था । मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज को देखने से इनकार कर दिया था । आज उस दिन को बात याद करके मुझे जितनी ग़लानि हाँ रही है, उसे प्रगट नहीं कर सकता । मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पैरों पर गिरकर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा । वह कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ. उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिए हुआ है । उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अब स जीवन-पर्यन्त मेरे सामने रहेगा ।

प्रायश्चित

(१)

दफ्तर में जरा देर से आना अफसरों की शान है । जितना ही बड़ा अधिकारी होता है, उतनी ही देर में आता है ; और उतने ही सबेरे जाता भी है । चपरासी की हाजिरी नौबीसों घरेटे की । वह लुट्ठी पर भी नहीं जा सकता । अपना एवज देना पढ़ता है । सैर, जब बरेली जिला-बोर्ड के हेडकार्फ बाबू मदारीलाला ग्यारह बजे दफ्तर आये, तब मानो दफ्तर नींद से जाग उठा । चपरासी ने दौड़कर पैरगाढ़ी ली, अरदली ने दौड़कर कमरे की चिक उठा दी और जमादार ने डाक की किश्ती मेज पर लाकर रख दी । मदारी लाल ने पहला ही सरकारी लिफाका खोला था कि उनका रंग फक हो गया । वे कई मिनट तक आश्चर्यान्वित हालत में खड़े रहे, मानो सारी ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयी हों । उनपर बड़े-बड़े आशात हो चुके थे ; पर इतने बदहवास वे कभी न हुए थे । बात यह थी कि बोर्ड के सेकेटरी की जो जगह एक महीने से खाली थी, सरकार ने मुबांधचन्द्र को यह जगह दी थी और मुबांधचन्द्र वह व्यक्ति था, जिसके नाम ही से मदारीलाल को पृणा थी । वह मुबांधचन्द्र, जो उनका सहपाठी था, जिसे जक देने को उन्होंने किननी ही बार चेष्टा की ; पर कभी सफल न हुए थे । वही मुबांध आज उनका अफसर होकर आ रहा था । मुबांध की इधर कई सालों से कोई स्वबर न थी । इतना मालूम था कि वह फौज में भरती हो गया था । मदारीलाल ने समझा था—वहीं मर गया होगा ; पर आज वह मानो जी उठा और संकेटरी होकर आ रहा था । मदारी लाल को उसकी मातहनी में काम करना पड़ेगा । इस अपमान से तो मर जाना कर्दृ अच्छा था । मुबांध को स्कूल और कालेज की सारी बातें अवश्य ही याद होंगी । मदारीलाल ने उसे कालेज से निकलवा देने के लिए कई बार मन्त्र चलाये, झूठे आरोप किये, बदनाम किया । क्या मुबांध सब कुछ भूल गया होगा ? नहीं, कभी नहीं । वह आते-ही आते पुरानी कसर निकालेगा । मदारी बाबू को अपनी प्राण-रक्षा का कोई उपाय न सूझता था ।

मदारी और सुबोध के ग्रहों में ही विरोध था । दोनों पक्ष ही दिन, एक ही शाला में भरती हुए थे, और पहले ही दिन से दिल में ईर्ष्या और द्रेप की वह चिनगारी पड़ गयी, जो आज बीस वर्ष बीतने पर भी न तुझी थी । सुबोध का अपराध यही था कि वह मदारीलाल से हर एक बात में बड़ा हुआ था । डील-डौल, रंग-रूप, रीति-व्यवहार, विश्वास-तुदि ये सारे मैदान उसके हाथ थे । मदारीलाल ने उसका यह अपराध कभी ज्ञान नहीं किया । सुबोध बीस वर्ष तक निरन्तर उनके हृदय का कॉटा बना रहा । जब सुबोध डिग्री लेकर अपने घर चला गया और मदारी फेल होकर इस दफ्तर में नौकर हो गये, तब उनका चित्त शान्त हुआ । किन्तु जब यह मालूम हुआ कि सुबोध बसरे जा रहा है, तब तो मदारीलाल का चेहरा लिल उठा । उनके दिल से वह पुरानी फौस निकल गयी । पर हा हतभाय ! आज वह पुराना नासूर शतगुण टीस और जलन के साथ खुल गया । आज उनकी किस्मत सुबोध के हाथ में थी । ईश्वर इतना अन्यायी है ! विधि इतना कठोर !

जब जरा चित्त शान्त हुआ, तब मदारी ने दफ्तर के कलकों^१ को सरकारी हुक्म मुनाते हुए कहा—अब आप लोग जरा हाथ-पैँव सँभालकर रहिएगा । सुबोध चन्द्र वे आदमी नहीं हैं, जो भूलों को ज्ञान कर दें ।

एक कलर्क ने पूछा—क्या बहुत सख्त हैं ?

मदारीलाल ने मुसकिराकर कहा—वह तो आप लोगों को दो-चार दिन ही में मालूम हो जायगा । मैं आपने मुँह से किसी की क्यों शिकायत करूँ ? बस, चेतावनी दे दी कि जरा हाथ-पैँव सँभालकर रहिएगा । आदमी योग्य है, पर बड़ा हा कोधी, बड़ा दम्भी । गुस्सा तो उसकी नाक पर रहता है । खुद हजारों हजाम कर जाय और डकार तक न ले ; पर क्या मजाल कि कोई मातहत एक कोइ भी हजाम करने पाये । ऐसे आदमी से ईश्वर ही बचाये ! मैं तो सोच रहा हूँ कि लुट्री लेकर घर चला जाऊँ । दोनों वक्त घर पर हाजिरी बजानी होगी । आप लोग आज से सरकार के नौकर नहीं, सेकेन्डरी साहब के नौकर हैं । कोई उनके लड़के को पढ़ायेगा, कोई बाजार से सौदा-मुलक लायेगा और कोई उन्हें अवधार मुनायेगा । और चपरासियों के तो शायद दफ्तर में दर्शन नहीं न हों ।

इस प्रकार सारे दफ्तर का सुबोध चन्द्र की तरफ से भड़काकर मदारीलाल ने अपना कलेजा ठंडा किया ।

(२)

इसके एक सप्ताह बाद सुबोध चन्द्र गाड़ी से उतरे, तब स्टेशन पर दफ्तर के सब कर्मचारियों को हाजिर पाया। सब उनका स्वागत करने आये थे। मदारी-लाल को देखते ही सुबोध लपककर उनके गले से लिपट गए और बोले—तुम खूब मिले भाई ! यहाँ कैसे आये ? ओह ! आज एक युग के बाद मैंट हुई !

मदारीलाल बोले—यहाँ जिलान्डोर्ड के दफ्तर में हेड क्लर्क हूँ। आप तो कुशल से हैं ?

सुबोध—अजी, मेरी न पूछो। बसरा, फ्रांस, मिस्र और न-जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा। तुम दफ्तर में हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। मेरी तो समझ ही में न आता था कि कैसे काम चलेगा। मैं तो बिलकुल कोरा हूँ; मगर जहाँ जाता हूँ, मेरा सीभाग भी मेरे साथ जाता है। बसरे में सभी अफसर खुश हैं। फ्रांस में भी खूब चैन किये। दो साल में कोई पचीस हजार रुपये बना लाया और सब उड़ा दिया। वहाँ से आकर कुछ दिनों को आपरेशन के दफ्तर में मठरगश्त करता रहा। यहाँ आया तब तुम मिल गये। (क्लर्कों को देखकर) ये लोग कौन हैं ?

मदारी के हृदय में बर्लियॉन्सी चल रही थी। दुष्ट पनोस हजाह रुपये बसरे से कमा लाया ! यहाँ कलम घिसते-घिसते मर गये और पैंच साँ भी न जमा कर सके। बोले—ये लाग बोर्ड के कर्मचारी हैं। मलाम करने आये हैं।

सुबोध ने उन सब लोगों से बारी-बारी में हाथ मिलाया और बोला—आप लोगों ने व्यर्थ यह कष्ट किया। बहुत आभारी हूँ। मुझे आशा है कि आप सब सज्जनों को सुभसे कोई शिकायत न होगी। मुझे अपना अफसर नहीं, अपना भाई सर्वभए। आर सब लोग मिलकर इस तरह काम कीजिए कि बोर्ड की नेकनामी हो और मैं भी सुखरू रहूँ। आपके हेड क्लर्क साहब तो मेरे पुराने मित्र और लैंगोटिया यार हैं।

एक वाक्चतुर कर्जक ने कहा—हम सब हुजूर के तो बेदार हैं। यथा-शक्ति आप को असन्तुष्ट न करेंगे ; लेकिन आदमी ही हैं, अगर कोई भूल हो भी जाय, तो हुजूर उसे ज्ञान करेंगे।

सुबोध ने नम्रता से कहा—यही मेरा सिद्धान्त है और हमेशा से यही सिद्धान्त

रहा है। जहाँ रहा, मातहतो से मित्रों का-सा बर्ताव किया ! हम और आप दोनों ही किसी तीसरे के गुलाम हैं। किर रोब केसा और अफसरी कैसी ? हाँ, हमें नेकनियती के साथ अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

जब मुबोध में बिदा होकर कर्मचारी लोग चले, तब आपस में बातें होने लगीं—

‘आदमी तो अच्छा मालूम होता है।’

‘हेड कलर्क के कहने से तो ऐसा मालूम होता या कि सब को क्या ही खा जायगा।’

‘पहले सभी ऐसी ही बातें करते हैं।’

‘ये दिलाने के दौत हैं।’

(३)

मुबोध को आये एक महीना गुजर गया। बोर्ड के कलर्क, अरदली, चपरासी सभी उसके बर्ताव से खुश हैं। वह इतना प्रसन्नन्ति है, इतना नम्र है कि जो उससे एक बार मिलता है, सदैव के लिए उसका मित्र हो जाता है। कठोर शब्द तो उनकी जबान पर आता ही नहीं। इनकार का भी वह अप्रिय नहीं होने देता, लेकिन द्रेष की आँखों में गुण और भी भयंकर हो जाता है। मुबोध के ये सारे सद्गुण मदारीलाल की आँखों में लटकते रहते हैं। उसके विरुद्ध कोई-न-कोई गुप षड्यन्त्र रचते ही रहते हैं। पहले कर्मचारियों को भड़काना चाहा, सफल न हुए। बोर्ड के मेम्बरों को भड़काना चाहा, मुँह की खायी। ठीकेदारों को उभारने का बीड़ा उठाया, लजिजत होना पड़ा। वे चाहते थे कि भुस में आग लगाकर दूर से तमाशा दें। मुबोध से थों हँसकर मिलते, यों चिकनी-चुपड़ी बातें करते, मानो उसके सच्चे मित्र हैं; पर आत में लगे रहते। मुबोध में सब गुण थे, पर आदमी पहचानना न जानते थे। वे मदारीलाल को अब भी अपना दोस्त समझते हैं।

एक दिन मदारीलाल सेकेटरी साहब के कमरे में गये तब कुरसी खाली देखी। वे किसी काम से बाहर चले गये थे। उनकी मेज पर पाँच हजार के नोट पुलिन्डों में बैंधे हुए रखे हुए थे। बोर्ड के मदरसों के लिए कुछ सकड़ी के सामान बनवाये गये थे। उसी के दाम थे। ठीकेदार बस्तूली के लिए बुलाया

गया था। आज ही सेके टरी साहब ने चेक भेजकर खजाने से दूपये मँगवाये थे। मदारीलाल ने बरापदे में भाँकर देखा, मुबोध का कहीं पता नहीं। उनकी नीयत बदल गयी। ईर्ष्या में लोभ का सम्मश्रण हो गया। कौपते हुए हाथों से पुलिन्दे उठाये, पतलून की दोनों जेबों में भरकर तुरन्त कमरे से निकले और चपरासी को पुकारकर बोले—बाबूजी भीतर हैं? चपरासी आज ठेकेदार से कुछ वसूल करने की खुशी में फूला हुआ था। सामने बाले तमोली की दूकान से आकर बाला—जी नहीं, कचहरी में किसी से बातें कर रहे हैं। अभी-अभी तो गये हैं।

मद रीलाल ने दफ्तर में आकर एक क्लर्क से कहा—यह मिसिल ले जाकर सेके टरी साहब को दिखाओ।

क्लर्क मिसिल लेकर चला गया। जरा देर में लौटकर बोला—सेके टरी साहब कमरे में न थे। फाइल मेज पर रख आया हूँ।

मदारीलाल ने मुँह रिसेकोड़कर कहा—कमरा छोड़कर कहाँ चले जाया करते हैं? किसी दिन धोंखा उठायेंगे।

क्लर्क ने कहा—उनके कमरे में दफ्तरवालों के सिवा और जाता ही कौन है?

मदारीलाल ने तीव्र स्वर में कहा—तो क्या दफ्तरवाले सब-के-सब देवता हैं? कब किसकी नीयत बदल जाय, कोई नहीं कह सकता। मैंने छोटी-छोटी रस्मों पर अच्छां-अच्छां की नीयत बदलते देखी हैं। इस वक्त हम सभी साह हैं; लाकन अवसर पाकर शायद ही कोई चूके। मनुष्य की यहां प्रकृति है। आप जाकर उनके कमरे के दानों दरवाजे बन्द कर दीजिए।

क्लर्क ने शलकर कहा—चपरासी तो दरवाजे पर बैठा हुआ है।

मदारीलाल ने झुँझलाकर कहा—आप से मैं जो कहता हूँ, वह कीजिए। कहने लगे, चपरासी नैया हुआ है। चपरासी कोई झृणि है, मुनि है? चपरासी ही कुछ उड़ा दे, तो आप उगका क्या लंगे? जमानत भी है। तो तीन सौ की। यहाँ एक-एक कागज लाखों का है।

यह कहकर मदारीलाल खुद उठे और दफ्तर के द्वार दोनों तरफ से बन्द कर दिये। जब चित्त शान्त हुए तब नोटों के पुलिन्दे जेब से निकालकर एक

आलमारी में कागजों के नीचे छिपाकर रख दिये। फिर आकर अपने काम में व्यस्त हो गये।

सुबोधचन्द्र कोई घटेभर में लौटे तब उनके कमरे का द्वार बन्द था। दफ्तर में आकर मुस्किराते हुए बोले—मेरा कमरा किसने बन्द कर दिया है, मार्ड, क्या मेरी बेदखली हो गयी?

मदारीलाल ने खड़े होकर मृदु तिरस्कार दिखाते हुए कहा—साहब, गुस्ताली माफ हो, आप जब कभी बाहर जाँय, चाहे एक ही मिनट के लिए क्यों न हो, तब दरवाजा बन्द कर दिया करें। आपकी मेज पर रुपयेष्ठेसे और सरकारी कागज-पत्र दिखरे पढ़े रहते हैं, न-जाने किस वक्त किसकी नीयत बदल जाय। मैंने अभी सुना कि आप कहीं बाहर गये हुए हैं, तब दरवाजे बन्द कर दिये।

सुबोधचन्द्र द्वारा खोलकर कमरे में गये और एक सिगार पीने लगे। मेज पर नोट रखे हुए हैं, इसकी खबर ही न थी।

सहसा ठीकेदार ने आकर सलाम किया। सुबोध कुरसी से उठ बैठे आंर बोले—तुमने बहुत देर कर दी, तुम्हारा ही हन्तजार कर रहा था। दस ही बजे रुपये मँगवा लिए थे। रसीद का टिकट लाये द्वा न?

ठीकेदार—हजूर रसीद लिखवा लाया हूँ।

सुबोध—तो अपने रुपये ले जाओ। तुम्हारे काम से मैं बहुत खुश नहीं हूँ। लकड़ी तुमने अच्छी नहीं लगायी और काम में सफाई भी नहीं है। अगर ऐसा काम फिर करोगे, तो ठीकेदारों के रजिस्टर से तुम्हारा नाम निकाल दिया जायगा।

यह कहकर सुबोध ने मेज पर निगाह ढाली, तब नोटों के पुलिन्दे न थे। सोचा, शायद विसी फाइल के नीचे दब गये हों। कुरसी के सर्वीप के सब कागज उलट-पलट ढाले; मगर नोटों का कहीं पता नहीं। एं! नोट कहाँ गये! अभी तो यही मैंने रख दिये थे। जा कहाँ सकते हैं। फिर फाइलों को उलटने-पलटने लगे। दिल में जरा-जरा घड़कन होने लगी। सारी मेज के कागज ढाले, पुलिन्दों का पता नहीं। तब वे कुरसी पर बैठकर इस आब घटेमें होने वाली घटनाओं की मन में आलोचना करने लगे—चपराही ने नोटों के पुलिन्दे

लाकर मुझे दिये, खूब याद है। भला, यह भी भूलने की बात है और इतनी जल्द ! मैंने नोटों को लेकर यहीं मेज पर रख दिया, गिना तक नहीं। फिर बकील साहब आ गये, पुराने मुलाकाती हैं। उनसे बातें करता जरा उस पेढ़ तक चला गया। उन्होंने पान मैंगवाये, बस इतनी ही देर हुई। जब गया हुए तब पुलिसे रखे हुए थे। खूब अच्छी तरह याद है। तब ये नोट कहाँ गायब हो गये ? मैंने किसी सन्दूक, दराज या आलमारी में नहीं रखे। फिर गये तो कहाँ ? शायद दफ्तर में किसी ने सावधानी के लिए उठाकर रख दिये हों। यहीं बात है। मैं व्यर्थ ही इतना घबरा गया। क्षिः !

तुरन्त दफ्तर में आकर मदारीलाल से बाले—आप ने मेरी मेज पर के नोट तो उठाकर नहीं रख दिये ?

मदारीलाल ने भौचक्के होकर कहा—क्या आपकी मेज पर नोट रखे हुए थे ? मुझे तो खबर ही नहीं। अभी पाँडित संहनलाल एक फाइल लेकर गये थे तब आप को कमरे में न देखा। जब मुझे मालूम हुआ कि आप किसी से बातें करने चले गये हैं, तब दरवाजे बन्द करा दिये। क्या कुछ नोट नहीं मिल रहे हैं ?

मुबोध आँखें फैलाकर बोले—अरे साहब, पूरे पाँच हजार के हैं। अभी-अभी चेक भुनाया है।

मदारीलाल ने सिर पीटकर कहा—पूरे पाँच हजार ! या भगवान् ! आपने मेज पर खूब देख लिया है ?

‘अजी पन्द्रह मिनट से तलाश कर रहा हूँ।’

‘नपरासी से पछु लिया कि कौन-कौन आया था ?’

‘आइए, जरा आप लोग भी तलाश कीजिए। मेरे तो होश उड़ हुए हैं।’

सारा दफ्तर मेकेटरी साहब के कमरे की तलाशी लेने लगा। मेज, आलमारियाँ, सन्दूक सब देखे गये। रजिस्टरों के बर्क उलट-पलटकर देखे गये; मगर नोटों का कहीं पता नहीं। कोई उड़ा ले गया, अब इसमें कोई शुब्बहा न था। मुबोध ने एक लम्बी साँस ली और कुर्सी पर बैठ गये। चेहरे का रंग कह हो गया। जरा-सा मुँह निकल आया। इस समय कोई उन्हें देखता तो समझता कि महीनों से बीमार है।

मदारीलाल ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—गबब हो गया और क्या !

आज तक कभी ऐसा अन्वेर न हुआ था । मुझे यहाँ काम करते दस साल हो गये, कभी बेले की चीज भी गायब न हुई । मैंने आपको पहले ही दिन साक्षात् कर देना चाहा था कि रुपये-पैसे के विषय में होशियार रहिएगा ; मगर शुद्धनी थी, ख्याल न रहा । जरूर बाहर से कोई आदमी आया और नोट उड़ाकर गायब हो गया । चपरासी का यही अपराध है कि उसने किसी को कमरे में जाने ही क्यों दिया । वह लाल कसम खाये कि बाहर से कोई नहीं आया ; लेकिन मैं इसे मान नहीं सकता । यहाँ से तो केवल पश्चिम सोहनलाल एक फाइल लेकर गये थे ; मगर दरवाजे ही से भाँककर चले आये ।

सोहनलाल ने सफाई दी—मैंने तो अन्दर कदम ही नहीं रखा, साहब ! अपने जवान बेटे की कसम खाता हूँ, जो अन्दर कदम भी रखा हो ।

मदारीलाल ने माथा सिकोड़कर कहा—आप व्यर्थ में कसमें क्यों खाते हैं ? कोई आपसे कुछ कहता है ? (सुबोध के कान में) बैङ्ग में कुछ रुपये हो तो निकालकर ठीकेदार को दे दिये जायें, वरना बड़ी बदनामी होगी । तुमसान तो हो ही गया, अब उसके साथ अपमान क्यों हो ।

सुबोध ने करण्य-स्वर में कहा—बैङ्ग में मुश्किल से दो-चार सौ रुपये होंगे, भाईजान ! रुपये हांते तो क्या बिन्ता थी । समझ लेता, जैसे पचीस हजार उड़ गये, वैसे ही तीस हजार भी उड़ गये । यहाँ तो कफन को भी कौड़ी नहीं ।

उसी रात को सुबोधचन्द्र ने आत्महत्या कर ली । इतने रुपयों का प्रबन्ध करना उनके लिए कठिन था । मृत्यु के परदे के सिवा उन्हें अपनी बेदना, अपनी विवशता का क्षिगाने की ओर कोई आँह न थी ।

(४)

दूसरे दिन प्रातःकाल चपरासी ने मदारीलाल के घर पहुँचकर आव जदी । मदारी को रात-भर नींद न आयी थी । घबराकर बाहर आये । चपरासी उन्हें देखते ही बोला—हजर ! बड़ा गजब हो गया, सिंकटरी साहब ने रात को अपनी गर्दन पर छुरी फेर ली ।

मदारीलाल को आँखें ऊपर चढ़ गयीं, मुँह फैल गया और सारी देह सिंहर उठी, मानो उनका हाथ बिजली के तार पर पड़ गया हो ।

‘छुरी फेर ली !’

‘जी हौं, छाज सबरे मालूम हुआ। पुलसचाले जमा हैं। आपको बुलाया है।

‘लाश अभी पढ़ी हुई है?’

‘जी हौं, अभी डाक्टरी होनेवाली है?’

‘बहुत से लोग जमा हैं?’

‘सब बड़े-बड़े अपसर जमा हैं। हजूर, लहास की ओर ताकते नहीं बनता।

कैसा भलामानुस हीरा आदमी था! सब लोग रो रहे हैं। छोटे-छोटे तो बच्चे हैं, एक सयानी लड़का है व्याहने लायक। बहूंजी को लोग कितना रोक रहे हैं; पर बार-बार दाँड़कर लहास के पास आ जाती हैं। कोई ऐसा नहीं है, जो रुमाल से ओखे न पोछ रहा है। अभी इतने ही दिन आये हुए, पर सबसे बक्सना मेल-जोल हो गया था। रुध्ये की तो कभी परवा ही नहीं थी। दिल दरियाव या?’

मदारीलाल के। सुर म चक्र आनं लगा। ढार की चौखट पकड़कर अपने को सभाल न लेते, तो शायद १४-र पड़ते। पूछा—बहूंजी बहुत रो रही थी?

‘बुछु न पूछ्यए, हजूर। पेंड की पांत्यो भड़ी जाती हैं। आँखें फूल कर गूलर हो गयी हैं।’

‘कितने लड़न बतलाये तुमने?’

‘हजूर, दो लड़न अौर एक लड़की।’

‘हो-हाँ, लड़कों को तो देख चुका हूँ, लड़की सयानी होगी?’

‘जा हो, व्याहने लायक हैं। राते-राते बेचारी की आँखे सूज आयी हैं।’

‘नोटों अं बारं मं भी बातचीत हो रही हागी?’

‘जी हो। सब लोग यही कहते हैं कि दपतर के किसी आदमी का काम है। दारंगाड़ी तो संहनलाल के। गिरपतार करना चाहते थे; पर साइत आपसे सलाह लेकर करेंगे। सुबृती साहब तो लिख गये हैं कि मेरा किसी पर शक नहीं है।

‘क्या संकेटरी साहब कोई खत लिखकर छोड़ गये है?’

‘हाँ, मालूम होता है, छुरी चलाते बखत याद आयी कि मुबहे में दफतर वं. सब लोग पकड़ लाए जायेंगे। बस, कलटर साहब के नाम चिट्ठी लिख दी।’

‘चट्टी में मेरे बारे में भी कुछ लिखा है? तुम्हें यह क्या मालूम होगा?’

‘हजूर, अब मैं क्या जानूँ, मुदा इतना सब लोग कहते थे कि आपकी बड़ी तारीफ लिखी है।’

मदारीलाल की साँस और तेज हो गयी। आँखों से आँसू का दो बड़ो-बड़ी बूँदे गिर पड़ी। आँखें पोछते हुए बोले—वे और मैं एक साथ के पढ़े थे, नन्दू! आठ-दस साल साथ रहा। उठते-बैठते साथ खाते, साथ खेलते। वह, इसी तरह रहते थे, जैसे दो माई सगे रहते हों। खत में मेरी क्या तारीफ लिखी है? मगर तुम्हें क्या मालूम होगा?

‘आप तो चल ही रहे हैं, देख लीजिएगा।’

‘कफन का इन्तजाम हो गया है?’

‘नहीं हजूर, कहा न कि अभी लहास की डाकटरी होगी। मुदा अब जल्दी चलिए। ऐसा न हो, कोई दूसरा आदमी बुलाने आता हो।’

‘हमारे दफ्तर के यह लोग आ गये होंगे?’

‘जी हाँ, इस मुहल्लेवाले तो सभी थे।’

‘पुलिस ने मेरे बारे में तां उन से कुछ पूछ-ताछ नहीं की?’

‘जो नहीं, किसी से भी नहीं!’

मदारीलाल जब मुबोधनन्द्र के घर पहुँचे, तब उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि सब लोग उनकी तरफ संदेह की आँखों ने देख रहे हैं। पुलिस इन्सपेक्टर ने तुरन्त उन्हें बुलाकर कहा—आप भी अपना व्यान लिखा दें और सबके ब्यान तो लिख चुका हूँ।

मदारीलाल ने ऐसी सावधानी में अपना व्यान लिखाया कि पुलिस के अफसर भी दग रह गये। उन्हें मदारीलाल पर मुबाला होता था, पर इस व्यान ने उसका अंकुर मीं निकाल डाला।

इसी वक्त मुबाध न दानों बालक रोते हुए मदारी लाल के पास आये और कहा—चालें आपका अम्माँ चुलाती है। दानों मदारीलाल से परिचित थे। मदारीलाल यहाँ तो रोज ही आते थे; पर घर में कभी न गये थे। मुबोध की जी उनसे पर्दा करती थी। यह बुलावा मुनकर उनका दिल धड़क उठा—कहीं इसका मुझपर शुब्बहा न हो। कहीं मुबाध ने मेरे विषय में कोई संदेह न प्रकट हो। कुछ फिकरते और कुछ ढरते हुए भीतर गये, तब विषवा का कषण-विलाप

सुनकर कलेजा कौप उठा । इन्हें देखते ही उस अबला के आँखुओं का कोई दूसरा सोता खुल गया और लड़की तो दौड़कर इनके पैरों से लिपट गयी । दोनों लड़कों ने भी घेर लिया । मदारीलाल को उन तीनों की आँखों में ऐसी अथाह वेदना, ऐसी विदारक याचना भरी हुई मालूम हुई कि वे उनकी ओर देख न सके । उनकी आत्मा उन्हें धिक्कारने लगी । जिन बेचारों को उन पर इतना विश्वास, इतना भरोसा, इतनी आत्मीयता, इतना ल्लेह था, उन्हीं की गर्दन पर उन्होंने हूँरी फेरी ! उन्हीं के हाथों यह भरा-पूरा परिवार धूल में मिल गया ! इन असहायों का अब क्या हाल होगा ? लड़की का विवाह करना है, कौन करेगा ? बच्चों के लालन-पालन का भार कौन उठाएगा ? मदारीलाल को इतनी आत्मग्लानि हुई कि उनके मुँह से तसल्ली का एक शब्द भी न निकला । उन्हें ऐसा जान पढ़ा कि मेरे मुख में कालिख पुती हुई है, मेरा कद कुछ छोटा हो गया है । उन्होंने जिस वक्त नोट उड़ाये थे, उन्हें गुमान भी न था । कि उसका यह फल होगा । वे केवल सुबोध को जिच करना चाहते थे । उनका सर्वनाश करने की इच्छा न थी ।

शांकातुर विधवा ने सिसकते हुए कहा-भैयाजी, हम लोगों को वे मँझधार में छोड़ गये । अगर मुझे मालूम होता कि मन में यह बात ठान तुके हैं तो अपने पास जो कुछ था, वह सब उनके चरणों पर रख देती । मुझ से तो वे यही कहने रहे कि काई-न-काई उपाय हो जायगा । आप ही की मार्फत वे कोई महाजन ठीक करना चाहते थे । आप के ऊपर उन्हें कितना भरोसा था कि कह नहीं सकती ।

मदारीलाल को ऐसा मालूम हुआ कि कोई उनके हृदय पर नश्तर चला रहा है । उन्हें अपने करण में कोई चीज़ फँसी हुई जान पड़ती थी ।

रामेश्वरी ने फिर कहा—रात सोये, तब खूब हँस रहे थे । रोज की तरह दूध पीया, बच्चों को प्यार किया, योद्धी देर हारमोनियम बजाया और तब कुल्ली करके लेटे । कोई ऐसी बात न थी जिससे लेश मात्र भी संदेह होता । मुझे चिन्तित देखकर बोले—तुम व्यंग्य बबराती हो । बाबू मदारीलाल से मेरी पुरानी दोस्ती है । आखिर वह किस दिन काम आयेगी ? मेरे साथ के लेले हुए हैं । इस नगर में उनका सबसे परिचय है । उपर्यों का प्रबन्ध आसानी से हो जायगा ।

फिर न-जाने कब भन में यह बात समायी । मैं नसीबो-जली ऐसी सोची कि रात को मिनकी तक नहीं । क्या जानती थी कि वे अपनी जान पर खेल जायेंगे ।

मदारीलाल को सारा विश्व आँखों में तैरता हुआ मालूम हुआ । उन्होंने बहुत जब्त किया; मगर आँसुओं के प्रवाह को न रोक सके ।

रामेश्वरी ने आँखें पोछकर फिर कहा—मैयाजी, जो कुछ होना या, वह तो हो चुका; लेकिन आप उस दुष्ट का पता जरूर लगाइए, जिसने हमारा सर्वनाश कर दिया है । यह दफ्तर ही के किसी आदमी का काम है । वे तो देवता थे । मुझसे यही कहते रहे कि मेरा किसी पर सन्देह नहीं है; पर है यह किसी दफ्तरखाले ही का काम । आप से केवल इतनी चिनती करती हूँ कि उस पापों को बचकर न जाने दीजिएगा । पुलिसवाले शायद कुछ रिश्वत लेकर उसे क्षोड़ दें । आपको देखकर उनका यह हौसला न होगा । ग्रब हमारे सिर पर आपके सिवा और कौन है । किससे अपना दुख कहें? लाश को यह दुर्घटि होनी भी लिखी थी ।

मदारीलाल के मन में एक बार ऐसा उबाल उठा कि सब कुछ खोज दें । साफ कह दें, मैं ही वह दुष्ट, वह अधम, वह गमर हूँ । विधवा के पैरों पर गिर पड़ और कहें, वही हुरी इस हल्यारे की गर्दन पर फेर दो । पर जबान न खुली; इसी दशा में बैठे-बैठे उनके सिर में ऐसा चक्कर आया कि वे जमीन पर गिर पड़े ।

(५)

तीसरे पहर लाश की परीक्षा समाप्त हुई । अर्थी जलाशय की ओर चली । सारा दफ्तर, सारे हुक्काम और हजारों आदमी साथ थे राह-पंस्कार लड़कों को करना चाहिए था, पर लड़के नाचालिक थे । इसलिए विधवा चलने को तैयार हो रही थी कि मदारीलाल ने जाकर कहा—बहूजी, यह संस्कार मुझे करने दो । तुम किया पर बैठ जाओगी, तो बच्चों को कौन सँभानेगा । मुझ मेरे भाई थे । जिन्दगी में उनके साथ कुछ सलूक न कर सका, “अब जिन्दगी के बाद मुझे दोस्ती का कुछ हम आदा कर लेने दो । आखिर मेरा भी तो उनपर कुछ हक था । रामेश्वरी ने रोकर कहा—आपको भगवान् ने बड़ा उदार-हृदय दिया है मैयाजी, नहीं तो मरने पर कौन किसको यूक्ता है । दफ्तर के ओर

सोग जो आधी-आधी रात तक हाथ बौंचे लड़े रहते थे, झूठों बात पूछने न आये कि जरा दाढ़स होता ।

मदारीलाल ने दाह-संस्कार किया । तेरह दिन तक किया पर बैठे रहे । तेरहवें दिन पिण्डदान हुआ, ब्राह्मणों ने भोजन किया, भिलारियों को अब्रदान दिया गया, मित्रों की दावत हुई, और यह सब कुछ मदारीलाल ने अपने खर्च से किया । रामेश्वरी ने बहुत कहा कि आपने जितना किया उतना ही बहुत है, अब मैं आपको और जेरबार नहीं करना चाहती । दोस्ती का हक इससे ज्यदा और कोई क्या अदा करेगा, मगर मदारीलाल ने एक न सुनी । सारे शहर में उनके यश की धूम मच गयी, मित्र हो तों पेसा हो !

सोलहवें दिन विधवा ने मदारीलाल से कहा—मैयाजी, आपने हमारे साथ जो उपकार और अनुग्रह किये हैं, उनसे हम मरते दम तक उन्मृण नहीं हो सकते । आपने हमारी पीठ पर हाथ न रखा होता, तो न-जाने हमारी क्या गति होती । कहीं रुख की भी छाँह तो नहीं थी । अब हमें घर जाने दीजिए । वहाँ देहात में खर्च भी कम होगा और कुछ खेती-बारी का सिलसिला भी कर लूँगी । किसी-न-किसी तरह विपत्ति के दिन कट ही जायेंगे । इसी तरह हमारे ऊपर दया रखिएगा ।

मदारीलाल ने पूछा—घर पर किननी जायदाद है ?

रामेश्वरी—जायदाद क्या है, एक कच्चा मकान है और दस-बारह बैंचे की काश्तकारी है । पक्का मकान बनवाना खुरु किया या; मगर रुपये पूरे न पढ़े । अभी अधूरा पड़ा हुआ है । दस-बारह हजार खर्च हो गये और अभी कुत पढ़ने की नौबत नहीं आयी ।

मदारी—कुछ रुपये बैंक में जमा हैं, या बस खेती ही का सहारा है ?

विधवा—जमा तो एक पाई भी नहीं है, मैयाजी ! उनके हाथ में रुपये रहने ही न पाते थे । बस, वही खेती का सहारा है ।

मदारी—तो उन खेतों में इतनी पैदावार हो जायगी कि लगान भी अदा हो जाय और तुम लोगों की गुञ्जन-बसर भी हो ?

रामेश्वरी—और कर ही क्या सकते हैं, मैयाजी ! किसी न-किसी तरह जिन्दगी तो काटनी ही है । बच्चे न होते तो मैं जहर खा लेती ।

मदारी—ओर अभी बेटी का विवाह भी तो करना है ?

विधवा—उसके विवाह की अब कोई चिन्ता नहीं । किसानों में ऐसे बहुत से मिल जाएँगे, जो बिना कुछ लिये-दिये विवाह कर लेंगे ।

मदारीलाल ने एक छण साचकर कहा—अगर मैं कुछ सनाइ दूँ, तो उसे मानेंगी आप ?

रामेश्वरी—मैयाजी, आपको सलाह न मानूँगो तो किसकी सनाह मानूँगो । और दूसरा ही ही कौन ?

मदारी—तो आप अपने घर जाने के बदले मेरे घर चलिए । जैसे मेरे बाल-बच्चे रहेंगे, वैसे ही आप के भो रहेंगे । आपको कष्ट न हागा । ईश्वर ने चाहा, तो कन्या का विवाह भी किसी अच्छे कुल में हो जायगा ।

विधवा को आँखें सजल हा गयीं । बाली—मगर मैयाजी, मांचिए...मदारी लाल ने बात काटकर कहा—मैं कुछ न साचूँगा आर न काई उड़ा मुनेंगा । क्या दो भाइयों के परिवार एक साथ नहीं रहते ? मुबांध को मैं अपना भाई समझता था और हमेशा समझूँगा ।

विधवा का कोई उड़ाना सुना गया । मदारीलाल सब का अपने साथ ले गये और आज दस साल से उनका पालन कर रहे हैं । दानों बच्चे कालेज में पढ़ते हैं और कन्या का एक प्रतिष्ठित कुल में विवाह हो गया है । मदारीलाल और उनकी खो तन-मन से रामेश्वरी को सेवा करते हैं और उसके इशारों पर चलते हैं । मदारीलाल मेवा से अपने पाप का प्रायशिच्त कर रहे हैं ।

कस्तान साहब

(१)

जगत सिंह का स्कून जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था । वह सैलानी, आवारा, तुमझ न्युक था । कभी अमर्लद की बागों की ओर निकल जाता और अमर्लदों के साथ माली की गालियाँ बड़े शौक से खाता । कभी दरिया की सैर करता और मझाझों की डंगियों में बैठकर उस पर के देहातों में निकन जाता । गालियाँ खाने में उसे मजा आता था । गालियाँ खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता । सवार के घोड़े के पीछे ताली बजा ना, एकों को पीछे से पकड़कर अपनी ओर लीचना, बूढ़ों की चाल वा नकल बरना, उसके मनोरञ्जन के विषय थे । आलसी काम तो नहीं करता; पर दुर्घटनाका दास होता है, और दुर्घटन धन के बिना पूरे नहीं होते । जगतसिंह को जब अवसर मिलता, घर से रुपये उड़ा ले जाता । नकद न मिले, तो बरतन और कपड़े उड़ा ले जाने में भी उसे संकोच न होता था । घर में जितनी शीशियाँ और बोतलें थीं, वह सब उसने एक-एक करके गुदड़ी-बाजार पहुँचा दी । पुराने दिनों की कितनी चीजें घर में पड़ी थीं । उसके मारे एक भी न बची । इस कला में ऐसा दश्त और निपुण था कि उसकी चतुराई और पटुता पर आश्चर्य होता था । एक बार वह बाहर-ही-बाहर, केवल कर्निसों के सहारे, अपने दो-मंजिला मकान की छत पर नढ़ गया और उपर ही से पीतल की एक बड़ी याली लेकर उतर आया । घर बालों को आहट तक न मिली ।

उसके पिता ठाकुर भक्तसिंह अपने कस्बे के डाकखाने के मुंशी थे । अफसरों ने उन्हें शहर का डाकखाना बड़ी दौड़-धूप करने पर दिया था; किन्तु भक्तसिंह जिन इरादों से यहाँ आये थे, उनमें से एक भी पूरा न हुआ । उलटी हानि यह हुई कि देहातों में जो भाजा-नाग, उपले-इधन मुफ्त मिल जाते थे, वे सब यहाँ बन्द हो गये । यहाँ सबसे पुराना प्ररोँव था । न किसी को दबा सकते थे, न सता सकते थे । इस दुरवस्था में जगतसिंह की हय-न्लपचयों बहुत अखरती ।

* * * *

। उन्होंने कितनी ही बार उसे बड़ी निर्दयता से पीया । जगत सिंह भी मकाय होने पर भी चुपके से मार खा लिया करता था । अगर वह अपने पिता के हाथ टिपकड़ लेता, तो वह हिल भी न सकते ; पर जगतसिंह इतना सीनजार न था । हाँ, मार्टीट, घुरकी-धमकी किसी का भी उस पर असर न होता था ।

• • जगतसिंह ज्योही घर में कदम रखता; चारों ओर से कौव-कौव भच जाती, माँ दुर्दुर करके दौड़ती, बहनें गालियाँ देने लगतीं; मानो घर में कोई सौंढ घुस आया हो । बेचारा उलटे पैंव भागता । कमी-कमी दो-दो, तीन-तीन दिन भूखा रह जाता । घर बाले उसकी सूरत से जलते थे । इन तिरस्कारों ने उसे निलंब बना दिया था । कष्टों के शान से वह निर्दन्द-सा हो गया था । जहाँ नीद आ जाती, वहीं पड़ रहता ; जो कुछ मिल जाता, वही खा लेता ।

ज्यो-ज्यों घर बालों को उसकी चौर-कला के गुप्त साधनों का शान होता जाता था, वे उससे चौकन्ने होते जाते थे । यहाँ तक कि एक बार पूरे महीने-भर तक उसकी दाल न गली । चरसवाले के कई रुपये ऊपर चढ़ गये । गाँजेवाले ने धुश्रौंशार तकाजे करने शुरू किये । हलवाईं कडवी बातें सुनाने लगा । बेचारे जगत को निकलना भुशिकल हो गया । रात-दिन ताक-भकाक में रहता ; पर घात न मिलती थी । आखिर एक दिन बिल्ली के भागों की कट्टा । भक्तसिंह दोपहर को डाकलाने से चले; तो एक बीमा-रजिस्ट्री जेब में डाल ली । कौन जाने, कोई हरकारा या डाकिया शरारत कर जाय ; किन्तु घर आये तो लिफाफे को अनकन की जेब से निकालने की सुधि न रही । जगतसिंह तो ताक लगाये हुए था ही । ऐसों के लोभ से जेब टांगली, तो लिफाफा मिल गया । उस पर कई आने के टिकट लगे थे । वह कई बार टिकट चुराकर आधे दामों पर बेच चुका था । चट लिफाफा उड़ा दिया । यदि उसे मालूम होता कि उसमें नोट है, तो कदाचित् वह न छूता ; लेकिन जब उसने लिफाफा फाढ़ ढाला और उसमें से नोट निकल पड़े, तो वह बड़े संकट में पड़ गया । वह फट हुआ लिफाफा गला फाढ़-फाढ़कर उसके दुःखत्य को धिङ्कारने लगा । उसकी दशा उस शिकारी की-सी हो गया, जो चिड़ियों का शिकार करने जाय और अनजान में किसी आदमी पर निशाना मार दे । उसके मन में पश्चात्ताप था, लजा थी, दुःख था, पर

उसे भूल का दण्ड सहने की शक्ति न थी। उसने नोट लिफाफे में रख दिये और बाहर चला गया।

गरमी के दिन थे। दोपहर को सारा घर सो रहा था; पर जगत की आँखों में नीद न थी। आज उसकी तुरी तरह कुन्दो होगी—इसमें सनरेह न था। उसका घर पर रहना ठीक नहीं, दस-बाँच दिन के लिए उसे कहीं खिसक जाना चाहिए। तब तक लोगों का कोध शान्त हो जाता। लेकिन कहीं दूर गये बिना काम न चलेगा। बत्ती में वह कई दिन तक अशानताप सहना कर सकता। काई-न-कोई जरूर ही उसका पता दे देगा और वह पकड़ लिया जायगा। दूर जाने के लिए कुछ-न-कुछ खर्च तो पास होना ही चाहिये। क्यों न वह लिफाफा में से एक नोट निकाल ले? यह तो मालूम ही हो जायगा कि उसने लिफाफा काढ़ा है, फिर एक नोट निकाल लेने में क्या हानि है? दादा के पास रुपये तो हैं ही, भक्त मारकर दे देंगे। यह सोचकर उसने दस रुपये का एक नोट उड़ा लिया; मगर उसी वक्त उसके मन में एक नयी कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। अगर ये सब रुपये लेकर किसी दूसरे शहर में कोई दूकान खोल ले, तो वह मजा हो। फिर एक-एक पैसे के लिये उसे क्यों किसी को चारी करनी पड़े? कुछ दिनों में वह बहुत-न्सा रुपया जमा करके घर आयेगा, तो लाग किनने चकित हो जायेंगे!

उसने लिफाफे को फिर निकाला। उसमें कुल २००) के नोट थे। दा सौ में दूध की दूकान खूब चल नकरी है। आंबिव मुरारो के दूकान में दा-चार कढ़ाव और दो-चार पीलन के यालां के भिंवा और क्या है? लेकिन किसने टाट से रुपया है? रुपयां की चरस उड़ा देता है। एक-एक दाँव पर दस-दस रुपये रख देता है, नफा न होता, तो वह टाट कहीं से निभाना? इस आनन्द-कल्पना में वह इतना मग्न हुआ कि उसका मन उसके काषू से बाहर हो गया, जैसे प्रवाह में किसी के पौंछ उखड़ जायें और वह लहरों में बह जाय।

उसी दिन शाम को वह बम्बई चल दिया। दूसरे ही दिन मुशी भक्तिंह पर गवन का मुकदमा दायर हो गया।

(२)

बम्बई के किले के मैदान में बैंड बज रहा था और राजपूत रेजिमेंट के

सजोले सुन्दर जवान कवायद कर रहे थे जिस प्रकार हवा बादलों को नये-नये रूप में बनाती और बिगाढ़ती है, उम्री भौंति सेना का नायक सैनिकों को नये-नये रूप में बना और बिगाढ़ रहा था ।

जब कवायद खत्म हो गयी, तो एक छुरहरे ढील का युवक नायक के सामने आकर खड़ा हो गया । नायक ने पूछा—क्या नाम है? सैनिक ने कौजी सलाम करके कहा—जगतसिंह ।

‘क्या चाहते हो?’

‘कौज में भरती कर लीजिए ।’

‘मरने से तो नहीं डरते?’

‘बिलकुल नहीं—राजपूत हूँ ।’

‘बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी ।’

‘इसका भी डर नहीं ।’

‘अदन जाना पड़ेगा ।’

‘खुशी से जाऊँगा ।’

कसान ने देखा, बला का हाजिर-जवाब, मन चला, हिम्मत का धनी जवान है, तुरंत फौज में भरती कर लिया । तीसरे दिन रेजिमेंट अदन को रखाना हुआ । मगर ज्यों-ज्यों जहाज आगे चलता था । जगत का दिल पीछे रहा जाता था । जब तक जमीन का किनारा नजर आना रहा, वह जहाज के डेक पर खड़ा अनुरक्त नेत्रों से उसे देखता रहा । जब वह भूमि-तट जल में बिलीन हो गया तो उसने एक ठंडी माँस ली और मुँह दौंपकर रोने लगा । आज जीवन में पहली बार उसे प्रियजनों की याद आई । वह छोय-मा अपना कस्बा, वह गाँजे की दूकान, वह सैन्सपाटे, वह मुद्दद-मित्रों के जमघट औलों में फिरने लगे । कौन जाने, फिर कभी उनसे मैंट होगी या नहीं । एक बार वह इतना बैचैन हुआ कि जी में आया, पानी में कूद पड़े ।

(३)

जगतसिंह को अदन में रहते तीन महीने गुजर गये । भौंति-भौंति की नवीनताओं ने कई दिनों तक उसे मुख किये रखा; लेकिन पुराने संस्कार फिर जाग्रत होने लगे । अब कभी-कभी उसे स्लेहमयी माता की याद आने लगी, जो

पिता के कोध, बहनों के धिक्कार और स्वजनों के तिरस्कार में भी उसकी रक्षा करती थी। उसे वह दिन याद आया, जब एक बार वह बीमार पड़ा था। उसके बचने की कोई आशा न थी; पर न तो पिता को उसकी कुछ चिन्ता थी, न बहनों को। केवल माता थी, जो रात-की-रात उसके सिरहाने बैठी अपनी मधुर स्नेहमयी बातों से उसकी पीड़ा शान्त करती रही थी। उन दिनों कितनी बार उसने उस देवी को नीरव रात्रि में रोते देखा था। वह स्वयं रोगों से जीर्ण हो रही थी; लेकिन उसकी सेवा-शुश्रूषा में वह अपनी व्यथा को ऐसी भूल गयी थी मानो उसे कोई कष्ट ही नहीं। क्या उसे माता के दर्शन फिर होंगे? वह इसी द्वौम और नैराश्य में समुद्र-तट पर चला जाता और घरटों अनन्त जल-प्रवाह को देखा करता। कई दिनों से उसे धर पर एक पत्र भेजने की इच्छा हो रही थी; किन्तु लज्जा और ग्लानि के कारण वह यालता जाता था। आखिर, एक दिन उससे न रहा गया। उसने पत्र लिखा और अपने अपराधों के लिए ज्ञामामौंगी। पत्र आदि से अन्त तक भक्ति से भरा हुआ था। अन्त में उसने इन शब्दों में अपनी माता को आश्वासन दिया था—माताजी, मैंने बड़े-बड़े उत्पात किये हैं, आप लोग मुझसे तंग आ गयी थीं, मैं उन सारी भूलों के लिए सच्चे दृढ़य से लंजित हूँ और आप को विश्वास दिलाता हूँ कि जीता रहा, तो कुछ-न-कुछ करके दिखाऊँगा। तब कदाचित् आपको मुझे अपना पुत्र कहने में संकोच न होगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सकूँ।

यह पत्र लिखकर उसने डाकखाने में छोड़ा और उसी दिन से उत्तर की प्रतीजा करने लगा; किन्तु एक महीना गुजर गया और कोई जवाब न आया। उसका जी धबड़ाने लगा। जवाब कर्या नहीं आता—कहीं माताजी बीमार तो नहीं है? शायद दादा ने कोधवश जवाब न लिखा होगा। कोई और आपत्ति तो नहीं आ पड़ी? कैम्प में एक बृन्द के नीचे कुछ सिपाहियां ने शालीग्राम की एक मूर्ति रख लोड़ी थीं। कुछ श्रद्धालु सैनिक रोज उस प्रतिमा पर जल चढ़ाया करते थे। जगतसिंह उनकी हँसी उड़ाया करता; पर आज वह विक्षितां की भाँति प्रतिमा के समुख जाकर बड़ी देर तक मस्तक झुकाये बैठा रहा। वह इसी अ्यानावस्था में बैठा था कि किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा, यह दफ्तर का

चपरासी या और उसके नाम की चुट्टी लेकर आया था। जगतसिंह ने पत्र हाथ में लिया, तो उसकी सारी देह कौप उटी। ईश्वर की स्तुति कर रु उसने लिफाफा लोला और पत्र पढ़ा। लिखा था—‘तुम्हारे दादा को गबन के अभियोग में ५ वर्ष का सजा हो गयी है। तुम्हारी माता इस शोक में मरणासन है। छुट्टी मिले, तो घर चले आओ।’

जगतसिंह ने उसी वक्त कसान के पास जाकर कहा—हुजूर, मेरी माँ बीमार है, मुझे छुट्टी दे दीजिए।

कसान ने कठार आँखों से देखकर कहा—अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।
‘तो मेरा इस्तीफा ले लीजिए।’

‘अभी इस्तीफा भी नहीं लिया जा सकता।’

‘मैं अब यहाँ एक चूण भी नहीं रह सकता।’

‘रहना पड़ेगा। तुम लोगों को बहुत जल्द लाम पर जाना पड़ेगा।’

‘लड़ाई छिड़ गयी है! आह, तब मैं घर नहीं जाऊँगा। हम लोग कब तक यहाँ से जायेंगे?’

‘बहुत जल्द, दो ही चार दिनों में।’

(४)

चार वर्ष बीत गये। कैप्टन जगतसिंह का-न्सा योद्धा। उस रेजिमेंट में नहीं है। कठिन अवस्थाओं में उसका साहस और भी उत्तेजित हो जाता है! जिस मुहिम में सबकी हिम्मतें जवाब दे जाती हैं, उसे सर करना उसी का काम है। हल्ले और धावे में वह सदैव सबसे आगे रहता है, उसकी त्योरियों पर कभी मैल नहीं आता; इसके साथ ही वह इतना विनम्र, इतना गम्भीर, इतना प्रसन्न चिन्त है कि सारे अफसर और मातहत उसकी बढ़ाई करते हैं। उसका पुनर्जीवन सा हो गया है। उस पर अफसरों को इतना विश्वास है कि अब वे प्रत्येक विषय में उससे परामर्श करते हैं जिससे पूछिए, वही बीर जगतसिंह की विरुद्धा बली सुना देगा—कैसे उसने जर्मनों की मेगजीन में आग लगायी, कैसे अपने कसान को मैशीनगनों की मार से निकाला, कैसे अपने एक मातहत सियाही को कम्बे पर लेकर निकल आया। ऐसा जान पक्का है, उसे अपने प्राणों का मोह ही नहीं, मानो वह काल को खोजता फिरता है।

लेकिन नित्य रात्रि के समय, जब जंगतसिंह को अवकाश मिलता है, वह अपनी छाँलदारी में अकेले बैठकर घरवालों की याद कर लिया करता है—दा-न्चार आँधू की खुँदे अवश्य गिरा देता है। वह प्रति मास अपने बेतन का बड़ा भाग घर भेज देता है, और ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता जब कि वह माता को पत्र न लिखता हो। सबसे बड़ी चिन्ता उसे अपने पिता की है, जो आज उसी के दुष्कर्मों के कारण कारावास की यातना फेल रहे हैं। हाय ! वह कौन दिन होगा, जब कि वह उनके चरणों पर सिर रखकर अपना अपराध ज्ञामा करायेगा, और वह उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देंगे ?

(५)

सवा चार वर्ष बीत गये। संध्या का समय है। नैनी जेल के द्वार पर भोड़ लगी हुर्इ है। उक्तने हां कोटियों की भीआद पूरी हो गयी है। उन्हें लिवा जाने के लाए उनके घरवाले ग्राम हुए हैं; किन्तु बूढ़ा भक्तसिंह अपनी आँधेरी कोठरी में सिर झुकाय उदास बैठा हुआ है। उसकी कमर झुककर कमान हो गयी है ! दह ग्राम्य-प्रभाव रह गयो हैं। ऐसा जान पड़ता है, किसी चतुर शिल्पी ने एक ग्रन्थालय-भवन का मूर्ति बनाकर रख दी है। उसको भी भीआद पूरी हो गयी है; लाकेन उसके घर स काइ नहीं आया। कौन आये ? आनन्दाला था ही कान !

एक बूढ़े मेन्तु हृष्ट-पुष्ट कैदा ने आकर उसका कन्धा हिलाया और बोला—कहा भगत, कोइ घर से आया ?

‘घर ता चलोगे ही !’

‘मरं घर कहो है ?’

‘तो क न यहां पड़ रहोगे !’

‘अगर ये लोग निकाल न देंगे, तो यहीं पड़ा रहूँगा।’

आज चार साल के बाद भक्तसिंह का अपने प्रताङ्गत, निर्वासित पुत्र की याद आ रही थी। जिसके कारण जीवन का सर्वनाश हो गया, आबरू मिट गयी, घर बरबाद हो गया, उसकी सूति भी उन्हें असद्ग थी ; किन्तु आज नेहश्य और दुख के अथाह सागर में छूबते हुए उसी तिनके का सहारा

लिया । न-जाने उस बेचारे की क्या दशा हुई ? लाख बुरा है, तो भी अपना लड़वा है । खानदान की निशानी तो है । मरुँगा तो चार आँखें बहायेगा, दो चरखूं पानी तो देगा । हाय ! मैंने उससे साथ कभी प्रेम का व्यवहार नहीं किया । जरा भी शारात करता, तो यमदूत की भाँति उसकी गर्दन पर सवार हो जाता । एक बार रसोई में बिना पैर धोये चले जाने के दण्ड में मैंने उसे उल्टा लटका दिया था । (कतनी बार केवल जार से बोलने पर मैंने उसे तभाजे लगाये थे । पुत्र-सा रख पाकर मैंने उसका आदर न किया । यह उसी का दण्ड है । जहाँ प्रेम का बन्धन शांथल हो, वहाँ परिवार की रक्षा कैसे हो सकती है ?

(८)

सबेरा हुआ : आशा का सूर्य नकला । आज उसकी रश्मयाँ कितनी कोमल और मधुर थीं, वायु कितनी सुखद, आकाश कितना मनोहर, वृक्ष कितने हरे-भरे, पांचयां का भल-रव इकतना मीठा ! सारी प्रकृति आशा थे, रङ्ग में रँगी हुई थी; पर भक्तासह के लिए चारों ओर धोर अन्धकार था ।

जेल के अफसर आया । कैदी एक पांक में खड़े हुए । अफसर एक-एक का नाम लेकर रहड़ी का परवाना देने लगा । कैदियों के चंहरं आशा से प्रकुप्त हैं । जिसका नाम आता, वह खुश-खुश अफसर के पास जाता, पर-वाना लेता, भुक्कर सलाम करता आर तब अपने विपांतकाल के संगीयां से गले मलकर बाहर निकल जाता । उसके घरवाले दोढ़कर उससे लिपट जाते । कोई पैसे लुटा रहा था, कहाँ निटाढ़वों बौद्धी जा रही थी, कहाँ जेल के कर्म-चारियों को इनाम दिया जा रहा था । आज नरक के पुलले विनम्रता के देवता बने हुए थे ।

अन्त में भक्तासह का नाम आया । वह सिर झुकाये, आहिस्ता-आहिस्ता जेलर के पास गये और उदासीन भाव से परवाना लेकर जेल के द्वार की ओर चले, मानो समने काई समुद्र लहरें मार रहा हो । द्वार से बाहर निकलकर वह जमीन पर बैठ गये । कहाँ जायें ?

सहसा उन्होंने एक सैरिनक अफसर को घोड़े पर सवार, जेल की ओर आते देखा । उसकी देह पर खाकी वरदी थी, सिर पर कार्तोबी साफा । अजीब शान से घोड़े पर बैठा हुआ था । उसके पीछे-पीछे एक फिल्म आ रही थी ।

जेल के सिपाहियों ने अफसर को देखते ही बन्दूकें सुंभालीं। और लाइन में खड़े होकर सलाम किया।

भक्तसिंह ने मन में कहा—एक भाग्यवान वह है, जिसके लिए फिरन आ रही है; और एक अभागा मैं हूँ, जिसका कहीं डिकाना नहीं।

फौजी अफसर ने इच्छर-उच्छर देखा और थोड़े से उतरकर सीधे भक्तसिंह के सामने आकर खड़ा होगया।

भक्तसिंह ने उसे ध्यान से देखा और तब चौंककर उठ खड़े हुए और बोले—अरे ! बेटा जगतसिंह !

जगतसिंह रोता हुआ उनके पैरों पर गिर पड़ा।

इस्तीफा

(१)

दफ्तर का बाबू, एक बेजबान जीव है। मजदूर को आँखें दिखाओ, तो वह योरियाँ बदलकर खड़ा हो जायगा। कुली को एक डॉट बताओ, तो सिर से बोझ फेंककर अपनी राह लेगा। किसीं भिखारी को दुतकारो, तो वह तुम्हारी ओर गुस्से की निगाह से देखकर चला जायगा। यहाँ तक कि गधा भी कभी-कभी तकलीफ पाकर दो-लस्तियाँ भाङ्ने लगता है; मगर बेचारे दफ्तर के बाबू को आप चाहे आँखें दिखायें, डॉट बतायें, दुल्कारैं या ठोकरैं मारें, उसके माथे पर बल न आयेगा। उसे अपने विकारों पर जो आधिपत्य होता है, वह शायद किसी संयमी सातु में भी न हो। सन्तोष का पुतला, सब की मूर्ति, सच्चा आशा कारी, गरज उसमें तमाम मानवी अच्छाइयाँ मौजूद होती हैं। हँड्हर के भी एक दिन भाग्य जगते हैं। दीवाली के दिन उस पर भी रोशनी होती है, बरसात में उस पर इरियाली छाती है, प्रकृति की दिलचस्पियों में उसका भी हिस्सा है। मगर इस गरीब बाबू के नसीब कभी नहीं जागते। इसकी आँधेरी तकदीर में रोशनी का जलवा कभी नहीं दिलाई देता। इसके पीले चेहरे पर कभी मुस्किराहट की रोशनी नजर नहीं आती। इसके लिए सूखा सावन है, कभी भरा भादौं नहीं। लाला फतहचन्द ऐसे ही एक बेजबान जीव थे।

कहते हैं, मनुष्य पर उसके नाम का भी कुछ असर पढ़ता है। फतहचन्द की दशा में यह बात यथार्थ सिद्ध न हो सकी। यदि उन्हें 'हारचन्द' कहा जाय, तो कदाचित् यह अत्युक्ति न होगी। दफ्तर में हार, जिन्दगी में हार, मित्रों में हार, जीवन में उनके लिए चारों ओर हार और निराशाएँ ही थीं। लड़का एक भी नहीं, लड़कियाँ तीन; भाई एक भी नहीं, भौजाइयाँ दो; गाँठ में कोँड़ी नहीं, मगर दिल में दया और मुरब्बत; सच्चा मित्र एक भी नहीं—जिससे मित्रता हुई, उसने घोखा दिया, इस पर तन्दुरस्ती भी अच्छी नहीं—बत्तीस साल की अवस्था में बाल लिचड़ी हो गये थे। आँखों में ज्योति नहीं, हाजरा चौपट, चेहरा पीला,

गाल पिचड़े, कमर मुकी हुई, न दिल में हिम्मत, न कलेजे में लाकत । नौ बजे दफ्तर जाते और छः बजे शाम को लौटकर घर आते । फिर घर से बाहर निकलने की हिम्मत न पढ़ती । दुनिया में क्या होता है; इसकी उन्हें बिल्कुल खबर न थी । उनकी दुनिया, लोक-परलोक जो कुछ था, दफ्तर था । नौकरी की खैर मनाते और जिन्दगी के दिन पूरे करते थे । न धर्म से वास्ता था, न दीन से नहता । न कोई मनोरंजन था, न खेल । ताश खेले हुए भी शायद एक मुहत गुजर गयी थी ।

(२)

जाड़ों के दिन थे । आकाश पर कुछ-कुछ बादल थे । फतहचन्द साढ़े पाँच बजे दफ्तर से लौटे तो चिराग जल गये थे । दफ्तर से आकर वह किसी से कुछ न बोलतः ; चुपके से चारपाईं पर लेट जाते और पन्द्रह-बीस मिनट तक बिना हिले-झुले पढ़े रहते । तब कहीं जाकर उनके मुँह से आवाज निकलती । आज भी प्रति दिन की तरह वे चुपचाप पढ़े थे तिक एक ही मिनट में बाहर से किसी ने पुकारा । छोटी लड़की ने जाकर पूछा तो मालूम हुआ कि दफ्तर का चपरासी है । शारदा पांत के मुँह-हाथ धोने के लिए लोटार्गलास मौंज रही थी । बोली— उससे कह दे, क्या काम है । अभी तो दफ्तर से आये ही हैं, और अभी फिर बुलावा आ गया ।

चपरासी ने कहा—साहब ने कहा है, अभी बुलालाओ । कोई बड़ा जरूरी काम है ।

फतहचन्द की खामोशी टूट गयी । उन्होंने सिर उठाकर पूछा—क्या बात है ?

शारदा—कोइं नहीं, दफ्तर का चपरासी है ।

फतहचन्द ने सहम कर कहा—दफ्तर का चपरासी ! क्या साहब ने बुलाया है ?

शारदा—हों, कहता है, साहब बुला रहे हैं । यह कैसा साहब है तुम्हारा, जब देखो, बुलाया करता है ? सबंधे के गये-गये अभी मकान को लौटे हो, फिर भी बुलावा आ गया ।

फतहचन्द ने संभलकर कहा—जरा सुन लूँ, ऐस स्लिए बुलाया है । मैंने सब काम खत्म कर दिया था, अभी आता हूँ ।

शारदा—जरा जलपान तो करते जाओ, चपरासी से बांट करने लगोगे, तो तुम्हें अन्दर आने को याद भी न रहेगी ।

यह कहकर वह एक प्याली में योड़ी-सी दालमोट और सेव लायी । फतेह-बन्द उठकर खड़े हो गये; किन्तु खाने की चीज़ देखकर चारपाई पर बैठ गये और प्याली की ओर चाव से देखकर डरते हुए बाले—लड़कियाँ को दे दिया है न ?

शारदा ने ओंखें चढ़ाकर कहा—इँ-हों, दे दिया है, तुम तो जाओ !

इतने में छोटी लड़की आकर सामने लड़ी हो गयी । शारदा ने उसकी ओर कोघ से देखकर कहा—तू क्या आकर सिर पर सवार हो गयी, जा बाहर खेल !

फतहचन्द—रहने दो, क्यों डॉईती हो ? यहाँ आओ चुन्नी, यह लो, दालमोट ले जाओ !

चुन्नी माँ की ओर देखकर डरती हुई बाहर भाग गयी !

फतहचन्द ने कहा—क्यों बेचारी को भगा दिया ? दो-चार दाने दे देता, तो खुश हो जाती ।

शारदा—इसमें है हो कितना कि सबको बौंटते फिरांगे ? इसे देते तो बाकी दोनों न आ जातीं ? किस-किसको देते ?

इतने में चपरासी ने फिर पुकारा—बाबूजी, हमें बड़ी देर हो रही है ।

शारदा—कह क्यों नहीं देते कि इस वक्त न आयेंगे ।

फतहचन्द—ऐसा कैसे इ दूँ माई; रोज़ी का मामला है !

शारदा—तो क्या प्राण देकर काम करागे ? सूरत नहीं देखते अपनी ! मालूम होता है, छः महीने के बीमार हो ।

फतहचन्द ने जलदी-जलदी दालमोट की दो-तीन फंकियाँ लगायी, एक गिलास पानी पिया और बाहर की तरफ दौड़े । शारदा पान बनानी ही रह गयी ।

चपरासी ने कहा—बाबूजी ! आपने बड़ी देर कर दी । अब जरा लपके चलिए, नहीं तो जाते हों डॉई बतायेगा ।

फतहचन्द ने दो कदम दौड़कर कहा—चलेंगे ता भाई आदमी ही की तरह, चाहे डॉई बतायें या दौंत दिखायें ! हमसे दौका नहीं जाता । बँगले ही पर है न ?

चपरासी—भला, वह दफ्तर क्यों आने लगा । बादशाह है कि दिल्ली !

चपरासी तेज चलने का आदी था । बेचारे बाबू, फतहचन्द धीरे-धीरे जाते थे । योझी ही दूर चलकर हाँफ उठे । मगर मर्द तो ये ही, यह कैसे कहते कि भाई जरा और धीरे चलो । हिम्मत करके कदम उठाते जाते थे, यहाँ तक कि खाँधों में दर्द होने लगा और आवा रास्ता खतम होते-होते पैरों ने उठने से इनकार कर दिया । सारा शरीर पसीने में तर हो गया । सिर में चक्र आ गया । आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगीं ।

चपरासी ने ललकारा—जरा कदम बढ़ाये चलो, बाबू !

फतहचन्द बड़ी मुश्किल से बोले—तुम जाओ, मैं आता हूँ ।

वे सड़क के किनारे पटरी पर बैठ गये और सिर को दोनों हाथों से आमंकर दम मारने लगे । चपरासी ने इनकी यह दशा देखी, तो आगे बढ़ा । फतहचन्द ढरे कि यह शैतान जाकर न-जाने साहब से क्या कह दे, तो गजब ही हो जायगा । जमीन पर हाय टेककर उठे और फिर चले । मगर कमज़ोरी से शरीर हाँफ रहा था । इस समय कोई बच्चा भी उन्हें जमीन पर गिरा सकता था । बेचारे लकड़ी उरह गिरते-पड़ते साहब के बँगले पर पहुँच । साहब बँगले पर झलक रहे थे । बार-बार फाटक की तरफ देखते थे और किसी को आंत न देखकर मन-ही-मन में भझाते थे ।

चपरासी का देखते ही आँखें निकालकर बोले—इतनी देर कहाँ था ?

चपरासी ने बरामदे की सीढ़ी पर घुड़े-घुड़े कहा—हुनर ! जब वह आये तब तो, मैं दाँड़ा चला आ रहा हूँ ।

साहब ने पैर पटककर कहा—बाबू क्या बोला ?

चपरासी—आ रहे हैं, हुजूर घरेय-भर में तो घर में से निकले ।

इतने में फतहचन्द अहाते के तार के अन्दर से निकलकर वहाँ आ पहुँचे और साहब का सिर मुकाकर सलाम किया ।

साहब ने कड़ककर कहा—अबतक कहाँ था ?

फतहचन्द ने साहब का तमतमा चेहरा देखा, तो उनका खून सूख गया । बोले—हुजूर अभी-अभी तो दफ्तर हे गया हूँ, ज्योंही चपरासी ने आवाज दी, हाजिर हुआ ।

साहब —झूठ बोलता है, झूठ बोलता है, हम जगद्देर से खड़ा है।

फतहचन्द—हुजूर, मैं झूठ नहीं बोलता। आने में जितनी देर हो गयी हो; मगर घर से चलने में मुझे बिलकुल देर नहीं हुई।

साहब ने हाथ की छुड़ी तुमकर कहा—तुप रह, सूअर, हम जगद्देर से खड़ा है, अपना कान पकड़ो।

फतहचन्द ने खून का बूँद पीकर कहा—हुजूर, मुझे दस साल काम करते हो गये, कर्मी...।

साहब—तुप रह, सूअर, हम कहता है कि अपना कान पकड़ो।

फतहचन्द—जब मैंने कोई कुसर किया हो ?

साहब—चपरासी ! इस सूअर, का कान पकड़ो।

चपरासी ने दबी जबान से कहा—हुजूर, यह भी मेरे अफसर है, मैं इनका कान कैसे पकड़ूँ ?

साहब—हम कहता है, इसका कान पकड़ो, नहीं हम तुमको हरणर्ती से मारेगा।

चपरासी—हुजूर, मैं यहाँ नौकरी करने आया हूँ, मार लाने नहीं। मैं भी इज्जतदार आदमी हूँ। हुजूर अपनी नौकरी ले लें। आप जो हुक्म दें, वह बजा लाने को हाजिर हूँ; लेकिन किसी की इज्जत नहीं बिगाढ़ सकता। नौकरी तो चार दिन की है। चार दिन के लिए क्यों जगने-भर से बिगाढ़ करें ?

साहब अब कोध को न बर्दाश्त कर सके। हश्टर लेकर दाँड़े। चपरासी ने देखा, यहाँ खड़े रहने में खैरियत नहीं है, तो भाग खड़ा हुआ। फतहचन्द अभी तक त्रुपचाप लड़े थे। साहब चपरासी को न पाकर उनके पास आया और उनके दोनों कान पकड़कर हिला दिया। बोला—तुम सूअर, गुस्ताखी करता है ? जाकर आफिस से फाइल लाओ।

फतहचन्द ने कान सहलाते हुए कहा—कौन-सा फाइल लाऊँ, हुजूर ?

साहब—फाइल-फाइल और कौन-सा फाइल ? तुम बहरा है, सुनता नहीं ! इम फाइल माँगता है !

फतहचन्द ने किसी तरह दिलेर होकर कहा—आप कौन-सा फाइल माँगते हैं ?

साहब—वही फाइल जो हम माँगता है। वही फाइल लाओ। अभी लाओ। बेचारे फतहचन्द को अब और कुछ पूछने की हिम्मत न हुई। साहब

बहादुर एक तो यों ही तेज-भिजाज थे, इसपर हुक्मत का घमगड़ और सबसे बढ़कर शराब का नशा। हण्डर लेकर पिल पड़ते, तो बेचारे क्या कर लेते। चुपके से दफ्तर की तरफ चल पड़े।

साहब ने कहा—दौड़कर जाओ—दौड़ो।

फतहन्द ने कहा—हुक्म, मुझसे दौड़ा नहीं जाता।

साहब—ओ, तुम बहुत सुस्त हो गया है। हम तुमको दौड़ना सिखायेगा। दाढ़ा (पीछे में धक्का देकर) तुम अब भी नहाँ दौड़ेगा ?

यह कहकर साहब हण्डर लेने चले। फतहचन्द दफ्तर के बाबू होने पर मां मनुष्य ही थे। यदि वह बलवान् होते, तो उस बदमाश का खून पी जाते। अगर उनक पास कोई हथियार हाता, तो उसपर जरूर चला देते; लेकिन उस छालत में तो मार खाना ही उनकी तकदीर में लिखा था। वे बेतहाशा भागे और फाटक से बाहर निकलकर सड़क पर आ गये।

(३)

फतहचन्द दफ्तर न गये। जाकर करत ही क्या ! साहब ने फाइल का नाम तक न बताया। शायद नशा में भूल गया। धीरे-धीरे पर की ओर चले, मगर इस बेइजती ने पैरों में बेइयाँ-सी डाल दी थीं। माना कि वह शारीरेक बल में साहब से कम थे, उनके हाथ में कोई चीज भी न थी; लेकिन क्या वह उसकी बातों का जवाब न दे सकते थे ? उनके पैरों में जूते तो थे। क्या वह जूते से काम न ले सकते थे। किर क्यों उन्होंने इतनी ज़िल्हत बर्दाशत की ?

मगर इलाज ही क्या था ? यदि वह कोध में उन्हें गोली मार देता, तो उसका क्या बिगड़ता। शायद एक-दो महीने की सादी कैद हो जाती। सम्भव है, दो-चार सौ रुपये जुर्माना हो जाता। मगर इनका परिवार तो मिट्टी में मिल जाता। संसार में कोन था, जो इनके छां-बच्चा का नवर लेता। वह किसके दरनाजे हाथ फैलाते। यदि उनके पास इतने रुपये होते, जिनसे उनके कुदुम्ब का गलन हो जाता, तो वह आज इतनी ज़िल्हत न सहते। या तो मर ही जाते, या उस शैतान को कुछ सबक ही दे देते। अपनी जान का इन्हें डर न था। जिन्दगी में ऐसा कौन सुख था, जिसके लिए वह इस तरह डरते ? ख्याल या सिर्फ परिवार के बरबाद हो जाने का।

आज फतहचन्द को अपनी शारीरिक कमज़ोरी पर जितना दुख हुआ, उतना और कभी न हुआ था। अगर उन्होंने शुरू ही से तन्दुरस्ती का ख्याल रखा होता, कुछ कंसरत करते रहते, लकड़ी चलाना जानते होते, तो क्या इस शैतान की इतनी हिम्मत होती कि वह उनका कान पकड़ता। उसकी आँखें निकाल लेते। कम-से-कम इन्हें घर से एक कुर्ती लेकर चलना था। और न होता, तो दो-चार हाथ जमाते ही—पीछे देखा जाता, जेलखाना ही तो होता था और कुछ !

वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों उनकी तबीयत अपनी कायरता और बोद्धेपन पर और भी भस्ताती थी। अगर वह उचककर उसके दो-चार थप्पड़ लगा देते, तो क्या होता—यही न कि साहब के खानसामे, बहरे, सब उनपर पिल पड़ते और मारते-मारते बेदम कर देते। बाल-बच्चों के सिर पर जो कुछ पड़ती—पड़ती। साहब को इतना तो मालूम हो जाता कि किसी गरीब को बेगुनाह जलील करना आसान नहीं। आखिर आज मैं मर जाऊँ तो क्या हो ? तब कौन मेरे बच्चों का पालन करेगा ? तब उनके सिर जा कुछ पड़ेगी, वह आज ही पड़ जाती, तो क्या हर्ज़ या ?

इस अनितम विचार ने फतहचन्द के हृदय में इतना जोश भर दिया कि वह लौट पड़े और साहब से ज़िल्लत का बदला लेने के लिए दो-चार कदम चले, मगर फिर ख्याल आया, आखिर जो कुछ ज़िल्लत होनी थी; वह तो हो ही ली। कौन जाने, बँगले पर हो या क्लब चला गया हो। उसी समय उन्हें शारदा की बेकसी और बच्चों का बिना बाप के हो जाने का ख्याल भी आ गया। फिर लंटे और घर चले।

(४)

घर में जाते ही शारदा ने पूछा—किसलिए बुलाया था, बड़ी देर हो गयी ?

फतहचन्द ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—नशे की सनक थी, और क्या ? शैतान ने मुझे गालियाँ दीं, जलील किया। बस, यही रट लगाये हुए था कि देर क्यों की ? निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा।

शारदा ने गुर्से में आकर कहा—तुमने एक जूता उतारकर दिया नहीं सूअर को !

फतहचन्द—चपरासी बहुत शरीक है। उसने साफ कह दिया—हुजूर, मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इच्छत उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी। वह उसी वक्त सलाम करके चला गया।

शारदा—यही बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यां नहीं फटकारा?

फतहचन्द—फटकारा क्यों नहीं—मैंने भी खूब सुनायी। वह छुड़ी लेकर दौँड़ा—मैंने भी जूता सँभाला। उसने मुझे कई छुड़ियाँ जमायी—मैंने भी कई जूते लगाये।

शारदा ने खुश होकर कहा—सच ! इतना-सा मुँह हो गया उसका !

फतहचन्द—चेहरे पर भाड़-सी फिरी हुई थी।

शारदा—बड़ा अच्छा किया तुमने, और मारना चाहिए था। मैं होती, तो बिना जान लिये न छोड़ती।

फतहचन्द—मार तो आया हूँ; लेकिन अब खैरियत नहीं है। देखो, क्या नतीजा होता है ? नौकरों तो जायगी ही, शायद सजा भी काटनी पड़े।

शारदा—सजा क्यों काटनी पड़ेगी ? क्या कोई इन्साफ करनेवाला नहीं है ? उसने क्यों गालियाँ दी, क्यों छुड़ी जमायी ?

फतहचन्द—उसके सामने मेरी कौन मुनेगा ? अदालत भी उमी की तरफ हो जायगी।

शारदा—हो जायगी, हो जाय; मगर देख लेना, अब किसी साहब की यह हँस्मत न होगी कि किसी बाढ़ को गालियाँ दे चैठे। तुम्हें चाहिए था कि ज्याही उसके मुँह न गालियाँ निकला, लपककर एक जूता रसीद कर देते।

फतहचन्द—तों फर इधर वक्त जन्दा लॉट भी न सकता। जरूर मुझे गोली मार देता।

शारदा देखी जाती।

फतहचन्द ने मुम्कराकर कहा—फिर तुम लांग कहाँ जातीं ?

शारदा—जहाँ ईश्वर की मरजी होती। आदमी के लिए सबसे बड़ी नीज ई-त है। इजन गवाँहर बाज-बच्चों की परवरिश नहीं की जाती। तुम उस शैतान को मारकर आये होते तो मैं गरूर से फूली नहीं समाती। मार खाकर आते, तो शायद मैं तम्हारी सूरत से भी धृण करती। यों जबान से चाहे कुछ

न रहती, मगर दिल से दुम्हारी इज्जत आती रहती। अब जो कुछ सिर पर आयेगी, खुशी से मेल लूँगी ..। कहाँ जाते हो, मुनो मुनो, कहाँ जाते हो !

फतहचन्द दीवाने होकर जोश में घर से निकल पड़े। शारदा पुकारती रह गयी। वह फिर साहब के बँगले की तरफ जा रहे थे। डर से सहमे हुए नहीं; बल्कि गर्लर से गर्दन उठाये हुए। उसका इरादा उनके चेहरे से भलक रहा था। उनके पैरों में वह कमजोरी, आँखों में वह बेकसी न थी। उनकी कायापलट-सी हो गयी थी। वह कमजोर बदन, पाला मुखड़ा, दुबले बदन वाला, दफ्तर के बाबू की जगह अब मर्दाना चेहरा, हिम्मत से भरा हुआ, मजबूत गड़ा और जवान था। उन्होंने पहले एक दांस्ट के घर जाकर उसका डरडा लिया और अकड़ते हुए साहब के बँगले पर जा पहुँचे।

इस वक्त नी बजे थे। साहब लाने को मेज पर थे। मगर फतहचन्द ने आज उनके मेज पर से उठ जाने का इन्तजार न किया। लानसामा कमरे से बाहर निकला और वह चिक उठाकर अन्दर गया। कमरा प्रकाश से जगमगा रहा था। जमोन पर देसी कालीन बिल्ली हुई थी, जैसी फतहचन्द की शादी में भी नहीं बिल्ली होगी। साहब बहादुर ने उसकी तरफ कोधित दृष्टि से देखकर कहा—
तुम क्यों आया ? बाहर जाओ, क्यों अन्दर चला आया ?

फतहचन्द ने खड़े-खड़े डरडा सँभलकर कहा—
तुमने मुझसे अभी फाइल माँगा था, वही फाइल लेकर आया हूँ। खाना खा लो, तो दिखाऊँ। तब तक मैं बैठा हूँ। इतमीनान से खाओ, शायद यह तुम्हारा आखिरी खाना होगा। इसी कारण खूब पेट भर खा लो।

साहब सबाटे में आ गये। फतहचन्द की तरफ डर और कोध की दृष्टि से देखकर कौप उठे। फतहचन्द के चेहरे पर पक्का इरादा भलक रहा था। साहब भमभ गये, यह मनुष्य इस समय मरने-मारने के लिए तैयार होकर आया है। नाकत में फतहचन्द उनके पासंग भी नहीं था। लेकिन यह निश्चय था कि वह ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, बल्कि लोहे से देने को तैयार है। यदि वह फतहचन्द को बुरा-भला कहते हैं, तो क्या आश्चर्य है कि वह डरडा लेकर पिल पड़े। हाथापांड करने में यथापि उन्हें जीतने में जरा भी सन्देह नहीं था; लेकिन बैठे-

बिठाये डण्डे खाना भी तो कोई बुद्धिमानी नहीं है। कुत्ते को आप डण्डे से मारिए, डुकराइए, जो चाहे कीजिए; मगर उसी समय तक, जब तक वह गुराँता नहीं। एक बार गुराँकर दौड़ पढ़े, तो फिर देखें, आपकी हिम्मत कहाँ जाती है ? यही हाल उस वक्त साहब बहादुर का था। जब तक यकीन था कि फतहचन्द बन्द छुकी, गाली, हण्टर, ठोकर सब कुछ खामोशी से सह लेगा, तब तक आप शेर थे; अब वह त्योरियाँ बदले, डण्डा सँभाले, बिल्ली की तरह घाट लगाये खड़ा है। जबान से कोई कड़ा शब्द निकला और उसने डण्डा चलाया। वह अधिक-से-अधिक उसे बरवास्त कर सकते हैं। अगर मारते हैं, तो मार खाने का भी ढर। उस पर फौजदारी में मुकदमा दायर हो जाने का अंदेशा—माना कि वह अपने प्रभाव और ताकत से अन्त में फतहचन्द को जेल में ड़लवा देंगे; परन्तु परेशानी और बदनामी से किसी तरह न बच सकते थे। एक बुद्धिमान और दूरन्देश आदमी की तरह उन्होंने यह कहा—ओहो, हम समझ गया, आप हमसे नाराज हैं। हमने क्या आपको कुछ कहा है ? आप क्यों हमसे नाराज हैं ?

फतहचन्द ने तनकर कहा—तुमने अभी आध-पश्य पहले मेरें कान पकड़े थे, और मुझे सैकड़ों ऊल-जलूल बातें कही थीं। क्या इतनी जलदी भूल गये ?

साहब—मैंने आपका कान पकड़ा, आ-हा-हा-हा-हा ! मैंने आपका कान पकड़ा, आ-हा-हा-हा ? क्या मजाक है ? क्या मैं पागल हूँ या दीवाना ?

फतहचन्द—तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ ? चपरासी गवाह है। आपके नौकर-चाकर भी देख रहे थे।

साहब—कब का बात है ?

फतहचन्द—अभी-अभी, कोई आध घण्टा हुआ, आपने मुझे बुलवाया था और बिना कारण मेरे कान पकड़े और धक्के दिये थे।

साहब—ओ बाबूजी, उस वक्त हम नशा में था। बेहरा ने हमको बहुत दे दिया था। हमको कुछ खबर नहीं, क्या हुआ माई गाड़ ? हमको कुछ खबर नहीं।

फतहचन्द—नशा में अगर तुमने मुझे गोली मार दी होती, तो क्या मैं मर न जाता ? अगर तुम्हें नशा था और नशा में सब कुछ मुआफ है, तो मैं भी नशा में हूँ। सुनो मेरा कैसला, या तो अपने कान पकड़ो कि फिर कभी किसी

भले आदमी के साथ ऐसा बर्ताव न करोगे, या मैं आकर तुम्हारे कान पकड़ूँगा। समझ गये कि नहीं ! इधर-उधर हिलो नहीं, तुमने जगह छोड़ी और मैंने डण्डा चलाया। फिर खोपड़ी टूट जाय, तो मेरी खता नहीं। मैं जो कुछ कहता हूँ, वह करते चलो; पकड़ो कान !

साहब ने बनावटी हँसी हँसकर कहा—वेल बाबूजी, आप बहुत दिल्लगी करता है। अगर हमने आपको बुरा बात कहा है, तो हम आप से माफी माँगता है !

फतहचन्द—(डण्डा तौलकर) नहीं, कान पकड़ो !

साहब आसानी से इतनी ज़िल्लत न सह सके। लपककर उठे और नाहा कि फतहचन्द के हाथ से लकड़ी छीन लें; लेकिन फतहचन्द गाफिल न थे। साहब मेज पर से उठने भी न पाये थे कि उन्होंने डण्डे का भरपूर और तुला हुआ हाथ चलाया। साहब तो नंगे सिर थे ही, चोट सिर पर पढ़ गयी। खोपड़ी भन्ना गयी। एक मिनट तक सिर को पकड़े रहने के बाद बोले—हम तुमको बरखास्त कर देगा।

फतहचन्द—इसकी मुझे परवाह नहीं; मगर आज मैं तुम से बिना कान पकड़ाये नहीं जाऊँगा। कान पकड़कर बादा करो कि फिर किसी भले आदमी के साथ ऐसी बेश्रदबी न करोगे, नहीं तो मेरा दूसरा हाथ पढ़ना ही चाहता है।

यह कहकर फतहचन्द ने फिर डण्डा उठाया। साहब को अभी तक पहली चोट न भूली थी। अगर कहीं यह दूसरा हाथ पढ़ गया, तो शायद खोपड़ी खुल जाय। कान पर हाथ रखकर बोले—अब आप खुश हुआ ?

‘फिर तो कभी किसी को गोली न दोगे ?’

‘कभी नहीं !’

‘अगर फिर कभी ऐसा किया, तो समझ लेना, मैं कहीं बहुत दूर नहीं हूँ।’

‘अब किसी को गाली न देगा !’

‘अच्छी बात है। अब मैं जाता हूँ, आज से मेरा इस्तीफा है। मैं कल इस्तीफा में यह लिखकर भेज़ूँगा कि तुमने मुझे गालियाँ दीं; इसलिए मैं नौकरी नहीं करना चाहता, समझ गये !’

साहब—आप इस्तीफा क्यों देता है ! हम तो बरखास्त नहीं करता।

फतहचन्द—अब तुम जैसे पाजी आदमी की मातहती नहीं करेंगा ।

यह कहते हुए फतहचन्द कमरे से बाहर निकले और बड़े इतमीनान से घर चले । आज उन्हें सच्ची विजय की प्रसन्नता का अनुभव हुआ । उन्हें ऐसी खुशी कभी नहीं प्राप्त हुई थी । यही उनके जीवन की पहली जीत थी ।

नान बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library

मसूरी
MUSSOORIE

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।
This book is to be returned on the date last stamped.

GL H
PRE V.5



120449
LBSNAA

H
प्रैमिक
गांग 5

PPC

120449

अवालिसं० 16052
ACC. No.....

वर्ग सं. पुस्तक सं.
Class No..... Book No.....

लेखक पे॒रयन
Author.....

शीर्षक रानतरोऽर ।
Title.....

प्रैमिक PRE LIBRARY 16052
गांग 5 LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 120449

- Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
- An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
- Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
- Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
- Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving